UGEC-103 (N)

भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण

परामर्श–समिति

आचार्य सत्यकाम	**कुलपति–अध्यक्ष**
प्रो. सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा– कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार	कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

प्रो0 (डॉ.) विश्वनाथ कुमार — प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी.सी.एस.के. पी.जी. कालेज, मऊ, उत्तर प्रदेश

डॉ. राकेश कुमार सिंह — सह आचार्य, अर्थशास्त्र आर.डी.एस., कॉलेज मुजफ्फरपुर, बिहार

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक

डॉ. अनिल कुमार यादव — **खण्ड–3** इकाई–04
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

डॉ. वेद प्रकाश मिश्रा, सहा0 आचार्य, (अर्थशास्त्र) ईश्वर शरण पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज
खण्ड–2 इकाई–01,02,03,04,05
खण्ड–3 इकाई–01,02,03,05
खण्ड–4 इकाई–01,02,03
खण्ड–5 इकाई–01,02,03,04

डॉ. गरिमा मौर्या, सहा0 आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
खण्ड–1 इकाई–01,02,03,04,05,06,07,08

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)

ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

UGEC-103(N)
भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण

खण्ड 1 – भारत की आर्थिक नीति एवं भारतीय कृषि

इकाई–01 औद्योगिक नीति
इकाई–02 भारतीय कृषि नीति : कृषि विकास की व्यूह रचना
इकाई–03 वैश्वीकरण एवं बाजार व्यवस्था
इकाई–04 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता
इकाई–05 भू धारण प्रणाली एवं भूमि सुधार
इकाई–06 सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा
इकाई–07 पंचायती राज व्यवस्था
इकाई–08 वर्तमान कृषि संकट एवं कृषि मूल्य, प्राकृतिक कृषि

खण्ड 2 – भारतीय उद्योग एवं औद्योगिक मजदूर

इकाई–01 लघु एवं कुटीर उद्योग : महत्व, वर्तमान स्थिति, MSME
इकाई–02 भारत के प्रमुख उद्योग : चीनी उद्योग, वस्त्र उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग आदि
इकाई–03 व्यवस्थित उद्योग : औद्योगिक मजदूरी, मजदूरी नियमन
इकाई–04 सामाजिक सुरक्षा व श्रमकल्याण
इकाई–05 औद्योगिक विवाद एवं औद्योगिक शान्ति

खण्ड 3 – गरीबी एवं बेरोजगारी

इकाई–01 भारत में निर्धनता : निरपेक्ष एवं सापेक्ष गरीबी, गरीबी मापन की विधियाँ, अमर्त्य सेन का समानता माप
इकाई–02 गरीबी निवारण की विधियाँ : अवसर, सशक्तीकरण एवं सुरक्षा
इकाई–03 भारत में बेरोजगारी : अदृश्य बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी
इकाई–04 रोजगार योजनाएँ, MANREGA आदि
इकाई–05 बाजार व्यवस्था एवं आर्थिक विषमताएँ

खण्ड 4 – भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान समस्याएँ

इकाई–01 समान्तर अर्थव्यवस्था, कालाधन एवं भ्रष्टाचार
इकाई–02 वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था एवं वैचारिक खालीपन
इकाई–03 समावेशी विकास

खण्ड 5 – जनसंख्या एवं संपोषित विकास

इकाई–01 भारत की जनसंख्या : वृद्धिदर, संरचना, जनसंख्या लाभांश
इकाई–02 जनसंख्या एवं उसके गुणात्मक पहलू
इकाई–03 प्रदूषण, वैश्विक उष्मीकरण
इकाई–04 संपोषित विकास

खंड -01भारत की आर्थिक नीति एवं भारतीय कृषि

इकाई 01 औद्योगिक नीति

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 औद्योगिक नीति

1.4 भारतीय कृषि नीति: कृषि विकास की व्यूह रचना

1.5 वैश्वीकरण एवं बाजार व्यवस्था

1.6 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता

1.7 भू धारण प्रणाली एवं भूमि सुधार

1.8 सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा

1.9 पंचायती राज व्यवस्था

1.10वर्तमान कृषि संकट एवं कृषि मूल्यसमष्टि अर्थशास्त्र

1.11सरांश

1.12शब्दावली

1.13कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्देश्य

इस खंड का मुख्य उद्देश्य है भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का विस्तारपूर्ण और गहरा विश्लेषण करना, विशेष रूप से भारतीय कृषि नीति के संदर्भ में। इस खंड के माध्यम से, हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि भारत की आर्थिक नीति कृषि क्षेत्र को कैसे महत्वपूर्ण बनाती है और यह कैसे देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में योगदान करती है। इस अध्याय के माध्यम से हम भारत की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को गहराई से समझेंगे, जैसे कि औद्योगिकीकरण, वैश्विकरण, बाजार व्यवस्था, कृषि उत्पादन, भू-धारण प्रणाली, सामुदायिक विकास, पंचायती राज व्यवस्था, और वर्तमान कृषि संकट। इसके अलावा, हम यह भी देखेंगे कि इन पहलुओं के संदर्भ में भारत की अर्थव्यवस्था में कैसे परिवर्तन हुआ है और किस तरह कृषि नीति द्वारा इसे प्रभावित किया गया है। आजकल, भारत की अर्थव्यवस्था के विकास के साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि हम उसकी सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा की सुनिश्चित करें, विशेष रूप से किसानों और ग्रामीण आवास के क्षेत्र में। इस अध्याय के माध्यम से हम इस समस्या को भी देखेंगे और कैसे सार्वजनिक नीतियाँ किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने में मदद कर सकती हैं, इस पर विचार करेंगे।

प्रस्तावना 1.1

भारत, अपने विविधता और समृद्धि के साथ, एक विशाल और गहरा अर्थव्यवस्था वाला देश है। यह विविधता न केवल जनसंख्या, भाषा, और संस्कृति में है, बल्कि यह भी अर्थव्यवस्था

के क्षेत्र में दिखाई देती है। भारत की अर्थव्यवस्था व्यापक है और विविधता में समृद्ध है, जिसमें कृषि, उद्योग, सेवाएँ, और वित्तीय सेक्टर शामिल हैं। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है, और यह आज भी देश की आर्थिक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। कृषि उत्पादन, किसानों की आर्थिक स्थिति, और ग्रामीण विकास के साथ ही, यह कृषि क्षेत्र भारत के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि नीति भारतीय सरकार की एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसका उद्देश्य देश के कृषि क्षेत्र को सुधारना और उसकी समृद्धि को बढ़ावा देना है। यह नीति किसानों के लिए उपयोगी योजनाएं बनाती है, उन्हें तकनीकी सहायता प्रदान करती है, और उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारती है। कृषि नीति द्वारा भारत के कृषि क्षेत्र को आवश्यक साधनों से लबालब करने का प्रयास किया जाता है ताकि किसान अधिक उत्पादन कर सकें और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो। कृषि नीति के तहत, विभिन्न क्षेत्रों को विकसित करने के लिए योजनाएं बनाई जाती हैं, जैसे कि जलवायु और आर्थिक क्षेत्र, औद्योगिक नीति, और किसानों के लिए सशक्त आवास। इस प्रस्तावना के माध्यम से हम इस खंड के मुख्य विषय का परिचय प्राप्त करते हैं, जिसमें हम भारतीय कृषि नीति के महत्व और उसके प्रमुख उद्देश्यों को समझने का प्रयास करेंगे। यह खंड हमें यह भी दिखाएगा कि कृषि नीति कृषि क्षेत्र के साथ अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को कैसे जोड़ती है और उसके विकास में कैसे योगदान करती है।

इस अध्याय के माध्यम से हम यह समझेंगे कि कृषि नीति कृषि क्षेत्र के विकास के लिए कैसे एक महत्वपूर्ण उपाय हो सकती है और कृषि क्षेत्र के अधिक समृद्धि और उत्पादकता को कैसे प्रोत्साहित कर सकती है। इसके अलावा, हम देखेंगे कि यह नीति किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए कैसे सुनिश्चिती प्रदान करती है और विभिन्न क्षेत्रों को विकसित करने में कैसे मदद करती है। इस प्रस्तावना के माध्यम से हम इस खंड के महत्वपूर्ण विषय का आधार रखते हैं और विस्तार से जानकारी प्राप्त करने के लिए तैयार होते हैं, जिसमें हम कृषि नीति के प्रमुख उद्देश्यों को गहराई से समझते हैं और इसके महत्व को समझते हैं।

1.2 औद्योगिक नीति

किसी देश की सरकार अपने देश के औद्योगिक विकास के लिए जो नीति बनाती हैउसे , ,तथा कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को ,श्रम अतिरिक्त ,औद्योगिक नीति कहते हैं। एक पिछड़ी हुई देश की ,रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करने ,कृषि उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि करने जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने तथा देश की अर्थव्यवस्था के स्वावलंम्बी विकास को सुनिश्चित करने के लिएऔद्योगिक स्तर पर विकसित किए जाने की आवश्यकता होती है। , जानकारी ,इस तरह की अर्थव्यवस्थाएँ इसलिए पिछड़ी तथा कृषि प्रधान हैं क्योंकि पर्याप्त पूँजी तथा जोश खरोश से भरानिजी औद्योगिक उद्यमियों का एक वर्ग विकसित नहीं हुआ या विकसित नहीं होने दिया गया है। इसके परिणामस्वरूपदेश में औद्योगिक विकास लाने के , लिए सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा है। औद्योगिक विकासदेश की अर्थव्यवस्था तथा समाज , के आम विकास से गहन रूप से परस्पर जुड़ा हुआ होता है। अतः इन प्रश्नों के जवाब कि ,

राज्यों के मध्य आय तथा धन का लगभग समान वितरण /क्या देश में व्यक्तियों अथवा क्षेत्रों हुआ है अथवा क्या देश में पूंजी मालों अथवा उपभोक्ता मालों का अधिक उत्पादन किया जाता है अथवा उपभोक्ता मालों में उजरती माल अधिक हैं अथवा ऐश के समानअथवा क्या देश , ये ,पूंजीवादी अथवा अन्य प्रकार के समाज के रूप में विकसित होने जा रहा है ,समाजवादी औद्योगीकरण ,सभी देश में औद्योगीकरण के प्रकार एवं गति पर निर्भर करते हैं। इसीलिए की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते समय सरकार को इन सभी मसलों को ध्यान में रखना होता है। औद्योगिक नीति विनिर्माण क्षेत्र की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित मानकों और उपायों का समूह है जो अंततः देश की आर्थिक वृद्धि और विकास को बढ़ाता है। सरकार विभिन्न फर्मों की प्रतिस्पर्धात्मकता और क्षमताओं को प्रोत्साहित करने और उनमें सुधार करने के लिए उपाय करती है।

औद्योगिक नीति के उद्देश्य

एक औद्योगिक नीति के अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्य होते हैं। जिन्हे दी गयी समय सीमा में प्राप्त करना होता है औद्योगिक नीति के कुछ सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है

1. उत्पादकता में निरंतर वृद्धि बनाए रखना।
2. रोजगार के अधिक अवसर पैदा करना।
3. उपलब्ध मानव संसाधन का बेहतर उपयोग करें
4. विभिन्न माध्यमों से देश की प्रगति को गति देना
5. अंतरराष्ट्रीय मानकों और प्रतिस्पर्धात्मकता के स्तर से मेल खाने के लिये

उपरोक्त नीतिगत फैसलों के अलावाऔद्योगिक नीति को हस्तक्षेप किए जाने योग्य विशिष्ट , जिनके जरिए इन क्षेत्रों ,को भी (साधनों) क्षेत्रों की पहचान भी करनी चाहिए तथा उन विधियों ,इसे ,अपने नीति गत लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ,में उसे हस्तक्षेप करना हो। अतः ,सार्वजनिक बनाम निजी क्षेत्र लघु उद्योग बनाम बड़े उद्योग ,विदेशी निवेश ,इजारेदारियों , अपने उपायों को सहिताबद्ध करना होगा। ,इत्यादि के विषय में ,उद्योग लाइसेंस नीति संक्षेप मेंसरकार के नीतिगत लक्ष्यों तथा उन साधनों को भी जिनके जरिए ,औद्योगिक नीति , सरकार इन नीतिगत लक्ष्यों को प्राप्तकरने की आशां करती हो सामने रखती है। ये लक्ष्य तथा उपायन तो शून्य में तैयार किए जाते हैं और न ही ये स्थिर होते हैं। कोई देश ,हालांकि , यह इस बात का परिणाम है कि भूतकाल में वह क्या था। इसी तरह भविष्य ,आज नया है कि ,वर्तमान पर निर्भर रहता है। यह जानने के लिएवर्तमान में देश के लिए कैसी औद्योगिक नीति की आवश्यकता हैयदि भूतकाल ,भूतकाल के बारे में जानना बहुत जरूरी है। इस तरह , तो उद्योगों के विकास ,में अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान रही हो अथवा कुछ क्षेत्र पिछड़े हुए रहे हों तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर अधिक ध्यान देना होगा। यदि निजी पूंजी के पास भारी परिव्ययों की क्षमता न हो अथवा निवेशों के प्रतिफलों के लिए लम्बे समय तक इंतजार करने की इच्छा न होतो सरकार को ऐसे निवेशों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की शरण में जाना होगा। , श्रम की बहुतायत वाले देश में रोजगार के लक ,इसी तरह्ष्य की अनदेखी नहीं की जा

सकती। अतः औद्योगिक नीति को देश के सामाजिकआर्थिक माहौल का ध्यान रखना चाहिए। -विकास की प्रक्रिया में इस माहौल में आने वाले परिवर्तनों के साथ मेल ,औद्योगिक नीति को बैठाने के लिए पर्याप्त रूप से लचीला होना चाहिए। ऐसे आर्थिक कानून हैंजो औद्योगिक नीति पर कुछ तकनीकी निषेध लागू करते हैं। अतः कुछ ऐसे उद्योग हैं ,जैसे रेल उपस्कर) सघन है तथा बड़े स्तर पर उत्पादन का -जो निश्चित रूप से पूंजी (लोहा तथा इस्पात आदि -लाभ उठाने के लिए उन्हें बड़े आकार का होना पड़ेगा। ऐसे मामलों में लघु उद्योग अथवा धम सघन उत्पादन को प्रोत्साहन देना दुस्साहस माना जाएगा।

1.2.1 भारत में औद्योगिक नीति

भारत सरकार द्वारा शुरू की गई विभिन्न औद्योगिक नीतियाँ इस प्रकार हैं:

औद्योगिक नीति संकल्प, 1948: भारत ने अपनी पहली औद्योगिक नीति 6 अप्रैल 1948 को घोषित की। इस नीति का प्रमुख विशेषता यह थी की राज्य को उद्योगों के विकास मे उत्तरोत्तर सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। यह निर्धारित किया गया की हथियार और गोला बारूद , परमाणु ऊर्जा और रेलवे परिवहन पर सरकार का एकाधिकार होगा। छह बुनियादी उद्योगों के लिए राज्य राज्य विशेष रूप से जिम्मेदार होगा । यदि राज्य को राष्ट्रीय हित में निजी उद्योगों के सहयोग को सुरछित करने का अनुभव होता है तो राज्य ऐसा कर सकता है। शेष औद्योगिक क्षेत्र को निजी उद्यमों के लिए खुला छोड़ दिया गया था। यद्यपि यह स्पष्ट कर दिया गया था की राज्य भी इस क्षेत्र मे उत्तरोत्तर भाग लेगा इस संकल्प के कुछ महत्वपूर्ण बिंदु कुछ इस प्रकार थे

भारत की अर्थव्यवस्था को **मिश्रित अर्थव्यवस्था** घोषित किया गया, जिसका अर्थ है कि इसमें निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों का समावेश है। इसके अंतर्गत, **लघु एवं कुटीर उद्योगों** को विशेष महत्व दिया गया, ताकि देश में स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा मिले और छोटे उद्यमियों को प्रोत्साहित किया जा सके। इसके साथ ही, सरकार ने **विदेशी निवेश** पर प्रतिबंध लगा दिया, जिससे घरेलू उद्योगों की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके और राष्ट्रीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके।

उद्योगों को 4 श्रेणियों में बांटा गया. इसने उद्योगों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया:

प्रथम श्रेणी में तीन महत्वपूर्ण उद्योगों को रखा गया 1 अस्त्र शास्त्र का निर्माण २. अणु शक्ति का उत्पादन तथा ,। तेल यातायात का स्वामित्व और नियंत्रण। इन उद्योगों पैर सरकार नियंत्रण और एकाधिकार होगा।

दूसरी श्रेणी में छह उद्योगों को रखा गया १ कोयला २. लोहा और इस्पात ३.हवाई जहाज निर्माण ४. जलयान निर्माण ५. टेलीफोन तथा वायरलेस बनान ६.खनिज तेल उद्योग। यद्यपि सरकार ने इन इकाइयों को निजी क्षेत्र को छूट दी थी पर यदि आवश्यक हुआ तो सरकार इनका १० वर्ष बाद राष्ट्रीय करण कर सकती थी।

तीसरी श्रेणी मैं 18 उद्योगों को रखा गया था जिनमे भरी रासायनिक उद्योग, चीनी , सूती अवं ऊनी वस्त्र सीमेंट कागज आदि थे। इनके संबंध में यह घोषित किया गया की ये उद्योग निजी क्षेत्र द्वारा सरकारी नियंत्रण मे चलेंगे

चतुर्थ श्रेणी में शेष सभी उद्योगों को रखा गया तथा इस श्रेणी के संबंध मे खोलने तथा चलाने का संबंध मे निजी तथा सहकारी क्षेत्र को पूर्ण स्वतंत्रता दी गयी

लघु एवंम कुटीर उद्योग को उनके व्यापक प्रसार , श्रम गहन प्रकृति और कम पूंजी और कम कौशल आवश्यकताओं के करण महत्व दिया गया।

1948 में, स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद, सरकार ने उद्योग नीतिगत प्रस्ताव प्रस्तुत किया। घरेलू उद्यमियों की आकांक्षाओं तथा ब्रिटिश शासन द्वारा देश में पैदा किए गए प्रतिकूल आर्थिक वातावरण ने सरकार द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये जाने का मार्ग प्रशस्त किया। 1948 के औद्योगिक नीतिगत प्रस्ताव ने औद्योगिक प्रगति तथा विकास के दृष्टिकोण की रूपरेखा प्रस्तुत की। इसने उत्पादन में लगातार वृद्धि को सुनिश्चित करते हुए इसके समान वितरण को सुनिश्चित करने के महत्व पर बल दिया। ऐसे उद्योग जो अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना का निर्धारण करते थे, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखे गए। इनके अंतर्गत अधिरचनागत उद्योग, सामाजिक एवं आर्थिक अधिरचना, तथा भारी एवं बुनियादी पूंजी माल उद्योग शामिल किए गए। वैसे भी, इन क्षेत्रों में निवेश करने का निजी क्षेत्र का न तो कोई झुकाव ही था और न ही उसमें ऐसा करने की क्षमता थी। उपभोक्ता मालों के उद्योगों से सम्बद्ध औद्योगिक क्षेत्र निजी उद्यमियों के लिए खुला छोड़ दिया गया। विदेशी पूंजी तथा तकनीक को भी बढ़ावा देना था, किन्तु इस शर्त पर, कि प्रभावी नियंत्रण भारतीय हाथों में ही रहे और भारतीय कर्मियों को इस तरह से प्रशिक्षित किया जाय कि विदेशी उद्यमों का प्रगतिशील ढंग से भारतीयकरण किया जा सके। आई.पी.आर(IPR). 1948 के बाद भारत में कई महत्वपूर्ण विकास हुए, जिन्होंने एक नए औद्योगिक नीति वक्तव्य की आवश्यकता को जन्म दिया। इन विकासों में से प्रमुख थे:

1. भारत का नया संविधान, जिसने नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकारों की गारंटी दी और राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धांतों का प्रावधान किया।
2. प्रथम पंचवर्षीय योजना का समापन और द्वितीय योजना की शुरुआत।
3. समाजवादी समाज की अवधारणा को सामाजिक और आर्थिक नीति के उद्देश्य के रूप में संसद द्वारा स्वीकार किया जाना।

औद्योगिक नीति संकल्प, 1956 (आईपीआर 1956): उपर्युक्त औद्योगिक नीति 1948 ,के कार्यान्वयन पश्चात् आठ वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ये हैं प्रथ (1)म पंचवर्षीय योजना (ii) ;का समापन (56-1951)वर्ष में औद्योगिक 1951 (iv) ,विकास एवं विनियम अधिनियमद्वितीय पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था के भारी औद्योगिक आधार का निर्माण किए जाने पर जोर देने की शुरुआत हुई। इस पृष्ठभूमि के साथ औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 ,निम्नलिखित अभिलक्षणों के साथ स्वीकार किया

गया- इसे "भारत का आर्थिक संविधान" या "राज्य पूंजीवाद की बाइबिल" माना जाता था। 1956 की नीति ने सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने, एक बड़ा और बढ़ता हुआ सहकारी क्षेत्र बनाने और निजी उद्योगों में स्वामित्व और प्रबंधन के विभाजन को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पर जोर दिया और सबसे महत्वपूर्ण, निजी एकाधिकार के उदय को रोकने के लिए। यह जून 1991 तक उद्योगों के संबंध में सरकार की नीति के लिए बुनियादी ढांचा प्रदान करता था। आईपीआर, 1956 ने उद्योगों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया:

1) शेड्यूल ए में 17 उद्योग शामिल थे जो राज्य की विशेष जिम्मेदारी थी। इन 17 उद्योगों में से चार उद्योग, अर्थात् हथियार और गोला-बारूद, परमाणु ऊर्जा, रेलवे और हवाई परिवहन पर केंद्र सरकार का एकाधिकार था; शेष उद्योगों में नए इकाइयों का विकास राज्य सरकारों द्वारा किया गया था।
2) शेड्यूल बी में 12 उद्योग शामिल थे, जो निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के लिए खुले थे; हालांकि, ऐसे उद्योग धीरे-धीरे राज्य के स्वामित्व वाले हो गए।
3) शेड्यूल सी - इन दो शेड्यूलों में शामिल नहीं किए गए अन्य सभी उद्योग तीसरी श्रेणी का गठन करते थे जिसे निजी क्षेत्र के लिए खुला छोड़ दिया गया था। हालांकि, राज्य ने किसी भी प्रकार के औद्योगिक उत्पादन को अपने अधीन करने का अधिकार सुरक्षित रखा।

1956 की नीति ने रोजगार के अवसरों का विस्तार करने और आर्थिक शक्ति और गतिविधि के व्यापक विकेंद्रीकरण के लिए कुटीर और लघु उद्योगों के महत्व पर जोर दिया। 1956 की औद्योगिक नीति वक्तव्य ने भारत में औद्योगिक विकास के लिए 1991 तक अपनाई जाने वाली नीतियों की नींव रखी। इस नीति में कुछ प्रमुख सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया जो भारत की औद्योगिक संरचना को मजबूत करने के लिए आवश्यक थे। सबसे पहले, **सार्वजनिक क्षेत्र की भागीदारी** बढ़ाने पर जोर दिया गया। इसका मतलब था कि सरकार ने महत्वपूर्ण और बुनियादी उद्योगों को अपने अधीन रखा, जिससे इन उद्योगों में सरकार का नियंत्रण मजबूत हुआ। उदाहरण के लिए, इस्पात, भारी मशीनरी, और बिजली जैसे क्षेत्रों में सरकार की सीधी भागीदारी को प्रोत्साहित किया गया, जिससे आर्थिक आधार को स्थिरता मिले और संसाधनों का उचित वितरण हो सके। दूसरा, **सहकारी क्षेत्र** को मजबूत करने की वकालत की गई। सहकारी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था कि छोटे और मध्यम स्तर के उद्यमी मिलकर उद्योग स्थापित करें, जिससे न केवल आर्थिक विकास हो, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता भी सुनिश्चित हो। उदाहरण के लिए, डेयरी उद्योग में अमूल जैसी सहकारी संस्थाओं का विकास हुआ, जिसने लाखों किसानों को सीधे तौर पर आर्थिक लाभ पहुंचाया। तीसरा, **निजी उद्योगों में स्वामित्व और प्रबंधन के बीच विभाजन** को प्रोत्साहित किया गया। इसका उद्देश्य था कि निजी उद्योगों में प्रबंधन का कार्य पेशेवर और कुशल प्रबंधकों द्वारा किया जाए, जबकि स्वामित्व और वित्तीय नियंत्रण मालिकों के पास रहे। यह कदम उद्योगों में पारदर्शिता, दक्षता और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक था। उदाहरण के लिए, बड़े कॉर्पोरेट

घरानों में प्रबंधन विशेषज्ञों की नियुक्ति करके बेहतर निर्णय लेने की प्रक्रिया को अपनाया गया। इस प्रकार, 1956 की औद्योगिक नीति वक्तव्य ने भारत के औद्योगिक विकास के लिए एक विस्तृत और सुविचारित ढांचा प्रदान किया, जिसने देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संकल्प ने औद्योगिक शांति बनाए रखने के प्रयासों का भी आह्वान किया; उत्पादन की आय का एक उचित हिस्सा मेहनतकश जनता को लोकतांत्रिक समाजवाद के घोषित उद्देश्यों के अनुरूप दिया जाना था। 1956 की नीति ने रोजगार के अवसरों का विस्तार करने और आर्थिक शक्ति और गतिविधि के व्यापक विकेंद्रीकरण के लिए कुटीर और लघु उद्योगों के महत्व पर जोर दिया। संकल्प ने औद्योगिक शांति बनाए रखने के प्रयासों का भी आह्वान किया; उत्पादन की आय का एक उचित हिस्सा मेहनतकश जनता को लोकतांत्रिक समाजवाद के घोषित उद्देश्यों के अनुरूप दिया जाना था। आलोचना: आईपीआर 1956 को निजी क्षेत्र से तीखी आलोचना मिली क्योंकि इस संकल्प ने निजी क्षेत्र के विस्तार के लिए गुंजाइश को काफी हद तक कम कर दिया था। इस क्षेत्र को लाइसेंस प्रणाली के माध्यम से राज्य नियंत्रण में रखा गया था।

औद्योगिक लाइसेंस नई उद्योग खोलने या उत्पादन बढ़ाने के लिए, सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना एक आवश्यक शर्त थी। आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में नए उद्योग खोलने को आसान लाइसेंसिंग और बिजली और पानी जैसे महत्वपूर्ण इनपुट की सब्सिडी के माध्यम से प्रोत्साहित किया गया था। यह देश में मौजूद क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए किया गया था। उत्पादन बढ़ाने के लिए लाइसेंस तभी जारी किए जाते थे जब सरकार इस बात से संतुष्ट होती थी कि अर्थव्यवस्था को उन वस्तुओं की अधिक आवश्यकता है।

i) **औद्योगिक क्षेत्र का विभाजक**- औद्योगिक क्षेत्र को तीन अनुसूचियों में वर्गीकृत किया गया। प्रथम श्रेणी (अनुसूची-A) में ऐसे 17 उद्योगों को शामिल किया गया जिनके विकास का अनन्य दायित्व केंद्र सरकार पर था (यथा (1) हथियार एवं गोला-बारूद तथा रक्षा उपरकर की संबद्ध मदें. (ii) आणविक ऊर्जा, (iii) लौह एवं इस्पात, (iv) यंत्र-समूह एवं उपकरण: (v) गुरु विद्युत संयंत्र, (vi) ताँबा, सीसा, जस्ता, राँगा आदि का खनन एवं प्रसंस्करण, (vii) बायुयान वायु एवं रेल परिवहनः (viii) जहाज निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ व बेतार उपकरण; (ix) विद्युत का उत्पादन एवं वितरणः आदि) इनमें से बार उद्योगों, यथा हथियार एवं गोला-बारूद, आणविक ऊर्जा, रेलवे एवं बायु परिवहन, पर सरकार का ही एकाधिकार निश्चित हुआ। शेष तेरह उद्योगों में सभी नई इकाइयों को सरकार अर्थात सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा स्थापित किया जाना था, परंतु निजी क्षेत्र में विद्यमान इकाइयों को बने रहने और विस्तार करने की अनुमति दे दी गई। दूसरी श्रेणी (अनुसूची-B) में ऐसे उद्योग शामिल किए गए जो सरकार के स्वभाव वाले थे और जिनमें निजी क्षेत्र उद्यमों से अपेक्षा की गई थी कि वे सरकार के प्रयासों के संपूरक सिद्ध होंगे। सभी खनिज (जो अनुसूची-A में शामिल नहीं हुए). प्रतिजैविकी, उर्वरक, कृत्रिम रबड, सड़क एवं सागर परिवहन, आदि भी यहाँ शामिल किए गए। केंद्र सरकार इन उद्योगों में अपनी भागीदारी बढ़ाते हुए नई इकाइयी स्थापित ही नहीं करेगी, बल्कि निजी क्षेत्र

को नई इकाइयों लगाने अथवा विद्यमान इकाइयों का विस्तार करने की अनुमति भी देगी। तीसरी श्रेणी (अनुसूची-C) में, अनुसची-A और B में सूचीबद्ध नहीं किए गए उद्योगों को शामिल किया गया। इन उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खुला छोड़ा गया। यद्यपि सरकार (या सार्वजनिक क्षेत्र) भी भागीदारी कर सकती थी। उद्देश्य यह था कि निजी क्षेत्र के लिए अनुकूल वातावरण और अवसर प्रदान किए जाएँ।

ii) सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की परस्पर निर्भरता- सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र को अलग-अलग अनन्य रहने की बजाय एक-दूसरे पर निर्भर रहना था। चारक्षेत्रों यथा हथियार एवं गोला-निजी क्षेत्र राज्य के लिए आरक्षित ,रेलवे एवं परिवहन को छोड़कर ,आणविक ऊर्जा ,बारूद में प्रवेश कर सकती थी। C किसी भी अन्य क्षेत्र में कारगर हो सकते थे। सरकार भी श्रेणी उत्पादों से और निज-सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों की जरूरतें निजी क्षेत्र के सहायी क्षेत्र के संस्थानों की जरूरतें सरकारी क्षेत्र के सहउत्पादों से पूरी की जा सकती थीं।-

iii) लघु उद्योगों का महत्त्व- सन् 1956 के प्रस्ताव ने भी रोज़गार अवसर पैदा करने में आय एवं धन-संपत्ति आदि का एक अधिक न्यायोचित वितरण सुनिश्चित करने लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्त्व को पहचाना। राज्य एक विभेदीय कराधान नीति अपनाकर इस क्षेत्र की मदद करेगा। वह प्रत्यक्ष अनुदानों के माध्यम से भी लघु उद्योग क्षेत्र की मदद करेगा और अपनी तकनीकों को आधुनिक बनाने में उनको सहायता प्रदान करेगा।

iv) क्षेत्रीय विषमताओं का निवारण-इस दृष्टि से कि औद्योगीकरण समग्र देश को लाभ पहुंचाए, सन् 1966 के प्रस्ताव में क्षेत्री विषमताओं को दूर करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों में परिवहन सुविधाओं एवं बिजली में सुधार का प्रस्ताव किया गया। राज्य परिवहन, बिजली व अन्य सेवाओं तथा समुचित राजकोषीय व अन्य नीतियों के माध्यम से निजी क्षेत्र के उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करेगा। सहकारी समितियों के रूप में संगठित उद्यमों को विशेष सहायता दी जाएगी।

v) औद्योगिक शांति-यह स्वीकार किया गया कि समाजवादी लोकतंत्र में श्रमिक विकास प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण सहभागी है और औद्योगिक शांति कायम रखने व श्रमिक की जीवन एवं कार्य-दशाओं को सुधारने के लिए आवश्यक कदम चठाने होंगे।

vi) कौशल निर्माण-उक्त प्रस्ताव में यह स्वीकार किया गया कि देश में कुशल तकनीकी एवं प्रबंधकीय कार्मिकों का अभाव है और इसलिए तकनीकी संस्थान एवं विश्वविद्यालयों में प्रबंधन पाठ्यक्रम आरंभ किए जाने की आवश्यकता है।

vii) विदेशी पूँजी-सन 1948 के प्रस्ताव की ही भीति 1956 के प्रस्ताव में भी विदेशी पूँजी के संबंध में वही नीति अपनाए जाने का सुझाव दिया गया।सन् की औद्योगिक नीति 1956 प्रस्ताव के प्रति निजी उद्योगपतियों की ओर से कोई बहुत अनुकूल प्रत्युत्तर नहीं आया क्योंकि वे प्रमुख भूमिका सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा ही निभाए जाने के प्रति आशंकित थे। तथापिउक्त , प्रस्ताव की समालोचना में समय की उन आवश्यकताओं को विचारार्थ नहीं रखा गया जी

औद्योगिक विकास को आगे ले जाने में एक सशक्त एवं गतिमान सार्वजनिक क्षेत्र को आवश्यक बनाती थीं।

औद्योगिक नीति वक्तव्य, 1977औद्योगिक अनुज्ञापन 1967 लाइसेंस नीति जाँच समिति))सुबिमल दत्त समितिने कार्यान्वयन में उन गंभीर समस्याओं इंगित करते हुए अपनी रिपोर्ट (1970 फरवरी ,में प्रस्तुत की 1960 सन्में निजी क्षेत्र हेतु औद्योगिक नीति प्रस्ताव के 1986 अंतर्गत राज्य के लिए अनारक्षित सभी क्रियाकलापों को खोलते हुए एक नई औद्योगिक अनुज्ञापन नीति एवं प्रक्रियाही प्रस्तुत की गई। इसमें भी लघु नद्योगों की भूमिका पर बल दिया गया था। निजी एकाधिकारों पर नियंत्रण हेतु एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार आयेन मतित किया गया तथा विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम में भी विदेशी अंश पूँजी भागीदारी के साथ कंपनियों के लिए नए नियम प्रस्तुत किए गए। इस घटनाक्रम के आलोक में एक नई औद्योगिक नीति दिसम्बर में पोषित की गई जिसके मुख् 1977य घटक निम्नवत थे

1) लघु उद्योग क्षेत्र का विकास-उक्त नीति में सुझाव दिया गया कि लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र में जिसका भी उत्पादन हो सके केवल उसी के द्वारा उत्पादन किया जाए। इस क्षेत्र को तीन श्रेणियों में बाँटा गया (1) कुटीर एवं घरेलू उद्योग, जो कि एक व्यापक स्तर पर स्वयं रोज़गार प्रदान करते हैं; (ii) औद्योगिक इकाइयों में यंत्र-समूह एवं उपस्कर पर एक लाख रुपये तक निवेश करने वाले तथा 50,000 से कम आबादी वाले करबों में स्थित अति लघु उद्योग क्षेत्र; तथा (iii) 10 लाख रुपये के निवेश एवं अनुषंगियों के मामले में 15 लाख रुपये की स्थिर पूँजी में निवेश वाली औद्योगिक इकाइयों वाले लघु उद्योग (SSIS)। लघु उद्यमियों द्वारा वांछित सभी प्रकार का सहयोग एवं सेवाएँ प्रदान करने के लिए एक जिला उद्योग केंद्र ' संबंधी अपेक्ष-स्थापित करने का प्रस्ताव किया गया। लघु उद्योग क्षेत्र की ऋणाओं को पूरा करने के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की एक अलग प्रशाखा खोली गई। (IBDI) अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत करने के लिए खादी एवं ग्राम उद्योग समिति के पुनरुद्धार का सुझाव चप्पल एवं साबुनों में लघु उद्योग का अंश बढ़ाने का प्रस्ताव किया गय -दिया गया। जूतेा। इस क्षेत्र में उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकसित एवं प्रयोग किए जाने पर बल दिया गया ताकि उसकी उत्पादकता बढ़े और उसके श्रमिक वर्ग की धनोपार्जन क्षमता में सुधार हो।

2) वृहद् उद्योग-बड़े पैमाने के उद्योग इस क्षेत्र में आएँगे (1) आधारिक संरचना प्रदान करने व लघु एवं ग्राम उद्योगों के विकास में सहायतार्थ इस्पात, अलौह धातुएँ, सीमेंट, तेल शोधन कारखाने आदि मूल उद्योग, (ii) मूल एवं लघु उद्योग दोनों के लिए यंत्र-समूह आपूर्ति संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पूँजीगत माल उद्योग; (iii) बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए और कृषि व लघु उद्योग क्षेत्रों के प्रयोग हेतु वांछित उर्वरक, तथा (iv) यंत्र उपकरण एवं कार्बनिक व अकार्बनिक रसायन आदि उद्योग जो कि लघु उद्योगों हेतु आरक्षित सूची में नहीं थे परंतु आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य थे।

3) वृहद् व्यापार-गृहों के प्रति दृष्टिकोण-बड़े उद्योग-गृहों की संवृद्धि को उनके आंतरिक रूप से जनित संसाधनों की राशि के प्रति असंगत माना गया। लोक वित्त संस्थानों एवं बैंकों से लिए

गए ऋणों के साथ जो कि उनकी अधिकांश परिसंपत्तियों का निर्माण करते थे, उक्त नीति के अंतर्गत प्रयास किया गया कि कोई भी बड़ा व्यापार-गृह बाज़ार में एकाधिकारी न बन बैठे।

4) सार्वजनिक क्षेत्र भूमिका विस्तार- सार्वजनिक क्षेत्र आवश्यक के साथ-साथ सामरिक महत्त्व की मूलभूत वस्तुओं का भी उत्पादक होगा। वह उपभोक्ता को अनिवार्य संभार कायम रखने में एक स्थायित्वकारी शक्ति के रूप में काम करेगा और लघु-उद्योग क्षेत्र को तकनीकी / प्रबंधकीय विशेषज्ञता उपलब्ध कराकर अनुषंगी उद्योगों को बढ़ावा देगा।

5) प्रौद्योगिकीय स्वावलंबन को प्रोत्साहन- प्रौद्योगिकी के अंतर्वाह का सुझाव केवल ऐसे परिष्कृत एवं उच्च पूर्णता क्षेत्रों के लिए ही दिया गया जहाँ भारतीय प्रौद्योगिकी पर्याप्त रूप से विकसित न हुई हो। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ विदेशी प्रौद्योगिकी की और अधिक आवश्यकता न हो , विदेशी सहयोग के नवीकरण को हतोत्साहित किया गया।

6) रुग्ण इकाइयों के प्रति दृष्टिकोण- यद्यपि सरकार ने स्वीकार किया कि रुग्ण-इकाइयों में रोज़गार को संरक्षण प्रदान करना आवश्यक है, उसकी रखरखाव लागत को भी ध्यान में रखा गया। दूसरे शब्दों में, स्वीकार किया गया कि बीमार इकाइयों में पैसा लगाने की प्रक्रिया अनवरत नहीं चल सकती।आलोचकों का कहना है कि बिस्कुटआदि ,चर्म उत्पाद ,चप्पल-जूते , अनेक उत्पाद जिनका उत्पादन लघु उद्योग क्षेत्र द्वारा किया जाना ही आरक्षित था-बहु , गृह इस प्रस्ताव से -गृहों द्वारा बनाए जा रहे हैं। बड़े उद्योग-राष्ट्रीय कंपनियों एवं बड़े व्यापार असंतुष्ट थे कि उन्हें वित्तीय संस्थानों पर निर्भर रहने की बजाय आंतरिक रूप से ही संसाधन उत्पन्न करने होंगे। कोई भी ठोस कदमबहुराष्ट्रीय कंपनियों की गतिविधियों कम ,बहरहाल , के (FERA) बल्कि उन्हें विदेशी मुदा विनिमय अधिनियम ,करने के लिए नहीं उठाए गए अंतर्गत अपने शेयर घटाने के लिए ही कहा गया।

औद्योगिक नीति वक्तव्य, 1980: 1980 की औद्योगिक नीति ने **आर्थिक महासंघ** की अवधारणा को बढ़ावा देने का समर्थन किया, जिससे राज्यों और केंद्र के बीच आर्थिक नीतियों में अधिक समन्वय और सहयोग स्थापित हो सके। इसके अलावा, इस नीति ने **सार्वजनिक क्षेत्र की दक्षता बढ़ाने** पर जोर दिया, ताकि यह क्षेत्र अपने संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सके और देश के औद्योगिक विकास में अधिक योगदान दे सके। नीति का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य **पिछले तीन वर्षों के औद्योगिक उत्पादन में गिरावट** के रुझान को उलटने का था। इसके माध्यम से, सरकार ने औद्योगिक उत्पादन को फिर से पटरी पर लाने और आर्थिक विकास को गति देने का प्रयास किया। अंत में, इस नीति ने **मोनोपॉलीज एंड रिस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रैक्टिसेज (MRTP) अधिनियम** और **फॉरेन एक्सचेंज रेगुलेशन एक्ट (FERA)** में अपने विश्वास को दोहराया। MRTP अधिनियम का उद्देश्य देश में एकाधिकार और अनुचित व्यापार प्रथाओं पर रोक लगाना था, जबकि FERA का उद्देश्य विदेशी मुद्रा के नियमन और नियंत्रण में सुधार करना था। इन दोनों अधिनियमों के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता से यह स्पष्ट होता है कि 1980 की औद्योगिक नीति ने न केवल औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी, बल्कि इसे एक उचित और संतुलित ढांचे में ढालने का भी प्रयास किया। सन् की औद्योगिक 1980

नीति में प्रयुक्त क्षमता के समुचित उपयोग एवं उद्योगों के विस्तार के माध्यम से औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने को लक्ष्य बनाया गया ताकि भारतीय जनता को और अधिक वस्तुएँ उचित कीमतें उपलब्ध कराई जा सकें। उक्त नीति में प्रस्तावित विशिष्ट उपाय ये हैं-

1) सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभावी संक्रियात्मक प्रबंधन- सार्वजनिक क्षेत्र की लुप्त होती विश्वसनीयता पुनस्र्थापित करने हेतु प्रयास ताकि उसकी वक्षता पुनरुजीवित की जा सके।

2) आर्थिक संघवाद को प्रोत्साहन- छोटे पैमाने के और बड़े पैमाने के उद्योगों के बीच विभाजन समाप्त कर एकीकृत औद्योगिक विकास का प्रस्ताव किया गया। इस उद्देश्य से, पिछड़े जिलों में केंद्रीय संयंत्र स्थापित करने का सुझाव दिया गया ताकि उनके आस-पास अनुषंगी, लघु वृहद् उद्योग विकसित हो सकें।

3) लघु इकाइयों की पुनर्परिभाषा- अति लघु इकाइयों में निवेश की सीमा रुपये एक लाख से बढ़ाकर रुपये दो लाख, लघु उद्योगों के लिए रुपये दस लाख से बढ़ाकर रुपये रुपये बीस लाख और अनुषंगी इकाइयों के लिए रुपये पंद्रह लाख से बढ़ाकर रुपये पच्चीस लाख कर दी गई।

4) क्षेत्रीय विषमताओं का निराकरण- सभी प्रकार के क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने के लिए उद्योगों का विसर्जन पिछड़े ग्रामीण एवं शहरी इलाकों की ओर करने का सुझाव दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में हथकरघा, हस्तशिल्प व खादी को प्रोत्साहन दिया गया ताकि उच्चतर रोज़गार के साथ-साथ उच्चतर प्रतिव्यक्ति आय भी सृजित की जा सके।

5) निजी क्षेत्र में अनाधिकृत अतिरिक्त स्थापित क्षमता का विनियमन- उक्त नीति ने अनाधिकृत अतिरिक्त क्षमता के विनियम की प्रक्रिया को सरल बना दिया। मूलभूत वस्तुओं एवं व्यापक उपयोग की वस्तुओं समेत उद्योगों में पंजीकृतक्षमताओं से अधिक में प्रयुक्त क्षमताओं को नियमित किया गया। तथापि एकाधिकार एवं प्रतिबंधक व्यापार प्रक्रिया , (FERA) अधिनियम तथा विदेशी मुद्रा विनिमय विनियमन अधिनियम (MRTP) के दायरे में आने वाली फर्मों पर यह लागू नहीं हुआ।

6) निर्यात प्रोत्साहन- निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए उक्त (MRTP) अधिनियम से निर्यातोन्मुखी इकाइयों को छूट देने तथा पूँजीगत माल व कच्चे माल के शुल्क-मुक्त आयात की अनुमति देने की कल्पना की गई।

7) वैकल्पिक ऊर्जा को प्रोत्साहन- सौर ऊर्जा, पवन विद्युत्, बायोगैस, ज्वारीय विद्युत् आदि वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के विनिर्माण को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया।

8) औद्योगिक रुग्णता- इस शर्त पर कि जान-बूझकर कुप्रबंधन एवं वित्तीय अनौचित्य को सहन नहीं किया जाएगा, प्रामाणिक रुग्ण इकाइयों का जहाँ कहीं भी संभव हो, स्वस्थ इकाइयों में विलय कर दिए जाने का प्रस्ताव किया गया।

इस प्रकार निर्देश में रोजगार-की नीति के दिशा 1980 सन् ,सृजन वाली पूँजीगहन संवृद्धि - संबंधी सरोकारों को कुछ पीछे ही रखा गया। यह पूर्णतः आलोचनाओं से परे रहा। परंतु अनेक अप्रामाणिक मामलों में भी अप्रयुक्त क्षमता के विनियमन का लाभ उठाया गया। लघु उद्योग निम' क्षेत्र में पैठ के बावजूद उसके साथ कच्चे माल के वितरण मेंन वर्गीय व्यवहार ही हुआ।

परिणामतउद्योग पिछड़े इलाकों में विसर्जित होने की बजाय विकसित क्षेत्रों में ही संकेंद्रित , रहे। **नई औद्योगिक नीति, 1991 :** 1991 का वर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था मैं एक नए चरण के शुरुआत के रूप मे चिन्हित किया जाता है। जहाँ से वास्तव मे शुरुआत होती है उदारीकरण , वैश्वीकरण तथा निजीकरण पर आधारित एक ने स्ट्रैटेजी जिसे हम भारत मई नव आर्थिक सुधार के नाम से जानते है जिसे राव मनमोहन स्ट्रैटेगी भी कहते हैं। ।नई औद्योगिक नीति, 1991 का मुख्य उद्देश्य बाजार शक्तियों को सुविधाएं प्रदान करना और दक्षता बढ़ाना था। द्वारा बड़ी भूमिकाएँ प्रदान की गईं 1991 की औद्योगिक नीति ने भारत की आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण बदलाव लाए। इस नीति के तहत **सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों** का **आरक्षण समाप्त** कर दिया गया, जिससे पहले केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों में निजी क्षेत्र को भी भाग लेने की अनुमति मिल गई। यह कदम निजी निवेश को प्रोत्साहित करने और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए उठाया गया था। इसके अलावा, इस नीति के अंतर्गत **औद्योगिक लाइसेंसिंग** की प्रणाली को भी लगभग समाप्त कर दिया गया, केवल कुछ चुनिंदा उद्योगों को छोड़कर। इससे उद्यमियों के लिए नए उद्योग स्थापित करना आसान हो गया और अर्थव्यवस्था में नई ऊर्जा का संचार हुआ। नीति का एक और महत्वपूर्ण पहलू **सार्वजनिक क्षेत्र के विनिवेश** की योजना थी। इस योजना के तहत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में अपनी हिस्सेदारी को कम करने का निर्णय लिया, ताकि इन उपक्रमों की दक्षता और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाई जा सके। इसने निजी निवेशकों को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भागीदारी का अवसर प्रदान किया, जिससे उद्योगों में पेशेवर प्रबंधन और नवाचार को बढ़ावा मिला। इसके साथ ही, **विदेशी तकनीकों** के लिए **स्वचालित स्वीकृतियां** प्रदान की गईं, जिससे विदेशी निवेश को आकर्षित करने और भारतीय उद्योगों में आधुनिक तकनीकों के समावेश को बढ़ावा मिला। इस नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक बाजार के लिए अधिक खुला और प्रतिस्पर्धी बनाया।

- **एल(L)** - उदारीकरण (Liberalisation),
- **पी(P)** - निजीकरण(Privatisation,)
- **जी(G)** - वैश्वीकरण (Globalisation)

हम संक्षेप मे इन तीन आधारस्तंभों लेते है तथा देखते है की कैसे नए स्ट्रैटेगी ने निजी क्षेत्र ने निजी क्षेत्र के विस्तार को गति दी

आर्थिक उदारीकरण वस्तुतः अर्थव्यवस्था को विभिन्न प्रकार के नियमों को तथा नियंत्रण के संबंधों में उदार होना है यह मुख्यतः उद्योगों तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं सरकारी नियंत्रण को समाप्त करना या काम करने से संबंधित है जिसे सरकार ने 1991 के पूर्व कठोर और औद्योगिक निर्णय के अंतर्गत किया और जिनके कारण न केवल निजी क्षेत्र का विस्तार पारित हुआ बल्कि जिनकी कारक अनेक भ्रष्ट व्यवहारबढे थे आर्थिक उदारीकरण की नीति लंबी अवधि से चली आ रही एक नियामक प्रणालियों के स्थान पर नहीं आर्थिक प्रणाली लानी थी जिसमें सरकारी हस्तक्षेप तथा नियमन न्यूनतम हो हो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र नियंत्रण लाइसेंस परमिट आदि से मुक्त हो इस स्ट्रेटजी के तहत 1991 के पूर्व से उद्योगों के लिए चली आ रही लाइसेंसिंग प्रणाली को कुछ अनावश्यक क्षेत्र के लिए छोड़कर उदार किया गया था या समाप्त कर दिया गया

निजीकरण निजीकरण मूलतः एक ऐसी प्रक्रिया से संबंधित है जिसके परिणाम स्वरुप सार्वजनिक उद्योगों के स्वामित्व का हस्तांतरण सरकार से हटकर निजी क्षेत्र को होता है इसके अंतर्गत या तो सार्वजनिक उद्यम किसी निजी क्षेत्र की कंपनी को भेज दिया जा सकता है इसे हम पूर्ण निजीकरण का सकते हैं या सरकार द्वारा सार्वजनिक उद्यम में अपनी धारिता के कुछ भाग को निजी लोगों के हाथ में भेज दिया जाता है जिसे हम टेक्निकल विनिवेश कह सकते हैं तथा इसे हम आंशिक निजीकरण सकते हैं तरीका चाहे जो सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका में कमी होगी और निजी क्षेत्र का विस्तार होगा

वैश्वीकरण वैश्वीकरण नहीं आर्थिक नीति का एक अन्य अत्यंत ही महत्वपूर्ण पहलू रहा टी ग्लोबलाइजेशन देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्थाओं के साथ व्यापार पूंजी तथा टेक्नोलॉजी के माध्यम से जोड़ना है इसका अर्थ हुआ देश की अर्थव्यवस्था का विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के लिए खोलना अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुओं सेवाओं टेक्नोलॉजी तथा पूंजी की व्याप्त अवरोधों तथा सरकारी हस्तक्षेप को समाप्त करना विदेशी निवेश का उदारीकरण जिस देश में प्रत्यक्ष विधि निवेश में वृद्धि हो तथा देश के औद्योगिकरण में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भागीदारी का बढ़ना वैश्वीकरण के लिए आवश्यक है

एलपीजी के कारण पुरानी घरेलू कंपनियों को नई घरेलू कंपनियों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और आयातित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है । सरकार ने घरेलू कंपनियों को दक्षता में सुधार और बेहतर प्रौद्योगिकी तक पहुंच के लिए बेहतर प्रौद्योगिकी आयात करने की अनुमति दी। चयनित क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा 40% से बढ़ाकर 51% कर दी गई। बुनियादी ढांचा क्षेत्रों जैसे चयनित क्षेत्रों में अधिकतम एफडीआई सीमा 100% है। विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड की स्थापना की गई। यह एक एकल-खिड़की एफडीआई मंजूरी एजेंसी है। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण समझौते को स्वचालित मार्ग के तहत अनुमति दी गई थी। चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रम विदेशी कंपनियों के लिए आयातित इनपुट को कम करने और घरेलू इनपुट का उपयोग करने की एक शर्त थी, इसे 1991 में समाप्त कर दिया गया था। अनिवार्य परिवर्तनीयता खंड के तहत, फर्मों को ऋण देते समय, यदि बैंक एक निर्दिष्ट समय में ऋण चाहते हैं तो ऋण का हिस्सा कंपनी की इक्विटी में परिवर्तित किया जा सकता है। इसे भी ख़त्म कर दिया गया. 18 उद्योगों को छोड़कर औद्योगिक लाइसेंसिंग समाप्त कर दी गई। एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार आचरण अधिनियम - उसके तहत एमआरटीपी आयोग की स्थापना की गई। एकाधिकार को रोकने के लिए एमआरटीपी अधिनियम पेश किया गया था। 1991 में एमआरटीपी अधिनियम में ढील दी गई। एसवीएस राघवन समिति की सिफारिश पर प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2000 पारित किया गया। इसका उद्देश्य एक सक्षम वातावरण बनाकर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना था।

1991 के आर्थिक सुधारो के अंतर्गत जितने भी क्षेत्र में परिवर्तन किए गए उनमें सबसे अधिक परिवर्तन औद्योगिक नीति के अंतर्गत किया गया है क्योंकि उदारीकरण निजीकरण वैश्वीकरण तथा बाजारीकरण जो नई आर्थिक नीति के आधार स्तंभ थे वे सभी प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक

नीति से जुड़े हुए 24 जुलाई 1991 को प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की इसमें मुख्ता औद्योगिक लाइसेंसिंग एकाधिकार तथा प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार सार्वजनिक क्षेत्र विदेशी निवेश तथा विदेशी प्रौद्योगिकी के संबंध में नीतिगत निर्णय की घोषणा यहां हम प्रत्येक के संबंध में संक्षिप्त संख्यात्मक विवेचन प्रस्तुत करेंगे औद्योगिक लाइसेंसिंग की लगभग समाप्ति औद्योगिक लाइसेंसिंग 1951 से ही शुरू हुई वैसे 1991 में आर्थिक औद्योगिक सुधार तथा उदारीकरण की प्रक्रिया अपनाई गई पर अब भी अधिनियम 1951 के तहत एक उद्योग खोलने की अनुमति लेनी पड़ती है अभी लाइसेंसी प्रणाली का यही आधार बना रहा है 1991 की औद्योगिक नीति में 18 उद्योगों की एक सूची जारी की गई जो या तो सुरक्षा की दृष्टि से महत्व है या सामाजिक कारण या पर्यावरण तथा प्रदूषण की दृष्टि से अलग थे जिसके लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य किया गया पर धीरे-धीरे या सूची सिमटी गई यह सीमा 1985 से चली गई आ रही थी अब केवल पांच मध्य ही है जिनके लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य है यह है अल्कोहल तंबाकू के शिकार एवं सिगरेट इलेक्ट्रॉनिक एयरोस्पेस तथा रक्षा सच सामान और औद्योगिक विस्फोटक,

24 जुलाई 1991 को घोषित नहीं औद्योगिक नीति में बहुत से उदारवादी कदम उठाए गए लाइसेंसिंग व्यवस्था को लगभग समाप्त कर दिया गया है बहुत से आरक्षित उद्योगों के द्वारा निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए हैं एकाधिकार और प्रबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अधीन उद्योगों की पारित संपत्ति सीमा समाप्त कर दी गई है इस नीति की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं

औद्योगिक लाइसेंसिंग से मुक्ति 1991 की नई औद्योगिक नीति में 18 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया समय के साथ इनमें से भी बहुत से उद्योगों को अलग-अलग समय पर लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया है अब केवल पांच उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग अनिवार्य है यह उद्योग है शराब सिगरेट खतरनाक रसायन सुरक्षा का सामान तथा औद्योगिक विस्फोटक

सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व में कमी 1956 की औद्योगिक नीति में 17 उद्योग सामाजिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रखे गए थे नई नीति में इनकी संख्या घटकर आ**ज** कर दी गई है बाद में कुछ और उद्योगों को आरक्षण से मुक्त कर दिया गया अब केवल दो उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रह गए हैं यह उद्योग है परमाणु ऊर्जा तथा रेलवे से संबंधित गतिविधियां\ जहां इस बात की चर्चा करना आवश्यक है कि रेलवे से संबंधित कुछ पदों को भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है

एमआरटीपी(MRTP) पर संपत्ति सीमा समाप्त नई औद्योगिक नीति में एकाधिकार एवं प्रतिबंधित व्यापार अधिनियम की अंतर्गत आने वाली कंपनियों की परिसंपत्ति सीमा को समाप्त कर दिया गया है इसलिए अब नई इकाइयों की स्थापना विस्तार बिलियन सम मिलान तथा आधुनिकरण के लिए तथा निर्देशकों की नियुक्ति के लिए केंद्र सरकार से पूर्व अनुमति लेना आवश्यक नहीं रहा है

उद्योग स्थान निर्धारण नीति में उदारीकरण उद्योगों की स्थान निर्धारण नीति में भी परिवर्तन किया गया नई नीति में यह व्यवस्था की गई कि इन उद्योगों के अलावा जिनमे अनिवार्य रूप से लाइसेंस लेने की आवश्यकता है अन्य उद्योगों की स्थापना के लिए केंद्र सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है यदि यह उद्योग 10 लाख से कम जनसंख्या वाले शहरों में स्थापित किया जा रहे हैं अधिक जनसंख्या वाले शहरों में शहरी सीमा से 25 किलोमीटर बाहर प्रतिस्थापित करना होगा ग्रामीण और पिछड़े हुए क्षेत्र में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने की दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार की रियासत व सुविधाएं दी जाती रहेगी

विदेशी निवेश एवं विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रस्थान घरेलू औद्योगिक निवेश की तरह ही भारत में विदेशी निवेश पर भी नियंत्रण लगाए जाते रहेभारतीय फर्मो द्वारा विदेशी प्रौद्योगिकी की खरीद का प्रश्न हों अथवा विदेशी निवेश का प्रश्न हर परियोजना के लिए सरकारी अनुमति लेना अनिवार्य शर्त रही है इस नीति क़े विरोध में यह कहा जाता रहा है कि इसकी परिणाम स्वरुप परियोजनाओं को लागू करने में बेवजहदेर होती थी और व्यावसायिक निर्णय समय लेने पर कठिनाई होती है इसलिए नई औद्योगिक नीति में उच्च प्रौद्योगिकी व उच्च निवेश के आधार पर कुछ प्राथमिक उद्योगों की सूची बनाई गई इन उद्योगों में बिना सरकार के अनुमति लिए 51% तक विदेशी इक्विटी की इजाजत दी गई जिन उद्योगों में यह स्वतः अनुमोदित की सुविधा दी गई उनमें से बहुत से पूंजीगत वस्तु उद्योग, उपभोक्ता मनोरंजन उद्योग खाद्य संसाधन उद्योग इत्यादि शामिल है इनमें भी उद्योग भी शामिल किए गए हैं जो अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के लिए आवश्यक है इसके अलावा उन सेवा क्षेत्र को भी शामिल किया गया है जिनमें काफी निर्यात संभावनाएं हैं

इस नई औद्योगिक नीति, 1991 के तहत सार्वजनिक क्षेत्र की समीक्षा इस प्रकार है:

1. सार्वजनिक क्षेत्र निवेश (सार्वजनिक क्षेत्र का विनिवेश)
2. आरक्षण-विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों को कम कर दिया गया
3. पीएसयू के प्रबंधन का व्यावसायीकरण
4. बीमार सार्वजनिक उपक्रमों को औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (बीआईएफआर) के पास भेजा जाएगा।
5. एमओयू का दायरा मजबूत किया गया (एमओयू एक पीएसयू और संबंधित मंत्रालय के बीच एक समझौता है)।

1.2.2 आगे का रास्ता

अब 30 साल पुरानी औद्योगिक नीति को बदलने और दुनिया के साथ बेहतर रणनीतिक जुड़ाव के लिए एक नई नीति का मसौदा तैयार करने का समय आ गया है। सरकार एक नई औद्योगिक नीति पर काम कर रही है जो देश के सभी व्यावसायिक उद्यमों के लिए एक रोड मैप होगी। 1991 की नई औद्योगिक नीति, जिसे 1991 की औद्योगिक नीति संकल्प के रूप में भी जाना जाता है, भारत के आर्थिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इसने भारतीय

अर्थव्यवस्था को बदलने और औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए व्यापक सुधार और उदारीकरण उपायों को पेश किया। इस ब्लॉग में, हम 1991 की नई औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताओं और उद्देश्यों का पता लगाएंगे। सरकार द्वारा उद्योग के स्वामित्व और संरचना और इसके प्रदर्शन को प्रभावित करने के लिए की जाने वाली कार्रवाई। यह सब्सिडी देने या अन्य तरीकों से वित्त प्रदान करने या विनियमन के रूप में होती है। इसमें प्रक्रियाएं, सिद्धांत (यानी, दी गई अर्थव्यवस्था का दर्शन), नीतियां, नियम और विनियम, प्रोत्साहन और दंड, टैरिफ नीति, श्रम नीति, विदेशी पूंजी के प्रति सरकार का दृष्टिकोण आदि शामिल हैं।

औद्योगिक नीतियों की खामियां : सरकार द्वारा समय-समय पर औद्योगिक नीतियों को लागू करने के बावजूद, विनिर्माण क्षेत्र में अपेक्षित विकास नहीं हो सका। उदाहरण के लिए, 1991 के बाद से विनिर्माण क्षेत्र का जीडीपी में योगदान लगभग 16% पर स्थिर बना हुआ है। इस क्षेत्र में निवेश की गति में कमी देखी गई है, खासकर बुनियादी और रणनीतिक उद्योगों जैसे इंजीनियरिंग, पावर, मशीन टूल्स आदि में। इसके अलावा, उद्योगों के पुनर्गठन और आधुनिकीकरण से विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में मानव संसाधन का विस्थापन हुआ है। 1991 की नई औद्योगिक नीति ने उद्योगों के प्रदूषण-मुक्त विकास पर भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया।

निष्कर्ष

जैसा कि दुनिया ने वित्तीय संकट के दौरान सीखा, बिना नियंत्रण के बाजार अराजक हो सकते हैं। इस स्थिति से बचने के लिए सरकार का विनियमन आवश्यक है। हालांकि, भारत 'इंजीनियर-नियंत्रित' औद्योगिक नीति मॉडल पर वापस नहीं लौटना चाहेगा, क्योंकि यह एक गतिशील और सीखने की प्रक्रिया के लिए उपयुक्त नहीं है। इसके बजाय, 'जटिल स्व-संवेदनशील प्रणालियों' का तीसरा मॉडल भारत में औद्योगिक प्रगति के लिए सबसे उपयुक्त है, क्योंकि यह अधिक अनुकूलनीय और लचीला है, जो उद्योगों को विकसित और विकसित होते रहने में मदद करेगा।

1.12 शब्दावली

1. **कृषि (Agriculture)**: फसलों की खेती , पशुपालन, मछलीपालन, वानिकी आदि गतिविधियों का समूह, जो खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार होता है।
2. **आर्थिक नीति (Economic Policy)**: सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों का समुच्चय, जो देश की आर्थिक दिशा, विकास और नियमन को निर्धारित करता है। इसमें वित्तीय, मौद्रिक, व्यापार, और औद्योगिक नीतियाँ शामिल होती हैं।

1.13

3. **उद्योग (Industry)**: विनिर्माण, खनन, निर्माण और अन्य उत्पादन गतिविधियाँ , जो आर्थिक विकास और रोजगार सृजन के लिए महत्वपूर्ण होती हैं।
4. **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)**: सरकार द्वारा स्वामित्व और संचालन किए जाने वाले उद्यम और उद्योग , जो समाज के सामूहिक लाभ के लिए कार्य करते हैं , जैसे रेलवे, बिजली, और रक्षा।
5. **निजी क्षेत्र (Private Sector)**: निजी व्यक्तियों या कंपनियों द्वारा संचालित उद्यम और उद्योग, जिनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

कुछ उपयोगी पुस्तके

2. "भारतीय अर्थव्यवस्था: संक्षेपण" - रमेश चंद्र द्वारा लिखित, यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को संक्षेपित रूप में प्रस्तुत करती है।

- **बोध प्रश्न**

भारत की आर्थिक नीति के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

2. 1991 में शुरू किए गए आर्थिक सुधारों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा?
3. उदारीकरण, निजीकरण, और वैश्वीकरण (LPG) नीतियों का संक्षेप में वर्णन करें।

खंड 01- भारत की आर्थिक नीति एवं भारतीय कृषि

इकाई 02 भारतीय कृषि नीति : कृषि विकास की व्यूह रचना

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भारतीय कृषि नीति कृषि विकास की व्यूह रचना
2.3 भारत में कृषि का महत्व:
2.4 कृषि उपज मूल्य निर्धारण नीति (AGRICULTURE PRODUCE PRICING POLICY)
2.5 किसानों की आय बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम:
2.6 उपभोक्ता उन्मुखी नीतियाँ
2.7 त्रुटिपूर्ण कृषि विपणन नीतियाँ:
2.8 किसानों की आय बढ़ाने के उपाय
2.9 भारत में कृषि विपणन: एक अवलोकन
2.10 हाल के कृषि कानून और उनके उद्देश्य
2.11 कृषि कानूनों के खिलाफ तर्क
2.12 कृषि विपणन सुधार
2.13 भारतीय कृषि में कम उत्पादकता के कारण
2.14 शब्दावली
2.15 कुछ उपयोगी पुस्तके

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्नलिखित कार्य कर सकेंगे:

1. 'कृषि नीति' शब्द को परिभाषित कर सकेंगे;
2. 'कृषि नीति' के उद्देश्य बता सकेंगे;
3. कृषि क्षेत्र के क्षेत्रीय आयाम को इंगित कर सकेंगे और इसके आलोक में नीति एकीकरण की आवश्यकता को बता सकेंगे;
4. 'कृषि नीति' के साधनों पर चर्चा कर सकेंगे;
5. 'किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति' की मुख्य विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे;
6. भारत में हाल ही में किए गए कृषि नीति सुधारों की समीक्षा कर सकेंगे; और

2.1 प्रस्तावना

कृषि उत्पादकता, मूल्य और जोखिम महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन्हें कृषि नीति द्वारा संबोधित करने की आवश्यकता है। जैसा कि इकाई 7 में चर्चा की गई है, अन्य देशों की तुलना में भारतीय कृषि में उत्पादकता काफी कम है। इसलिए, कृषि उत्पादन और उत्पादकता में सुधार

और उसे बनाए रखना एक प्रमुख नीतिगत मुद्दा है। इसी तरह, कृषि वस्तुओं के लाभकारी मूल्य कैसे सुनिश्चित किए जाएं और किसानों और उपभोक्ताओं दोनों के कल्याण की रक्षा कैसे की जाए, यह एक और मुद्दा है। चूंकि कृषि बाजार, प्रौद्योगिकी और मौसम संबंधी जोखिमों के अधीन है, इसलिए इन जोखिमों से किसानों की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण नीतिगत मुद्दा बन जाती है। इन मुद्दों से निपटने के लिए आपूर्ति पक्ष और मांग पक्ष दोनों नीतिगत साधनों की आवश्यकता है। आपूर्ति पक्ष के साधनों में भूमि सुधार, नई कृषि प्रौद्योगिकियों का प्रसार, मूल्य समर्थन, संस्थागत ऋण, इनपुट सब्सिडी, बुनियादी ढांचा सेवाओं में सार्वजनिक निवेश और फसल बीमा शामिल हैं। मांग पक्ष के साधनों में कृषि बाजारों में राज्य का हस्तक्षेप, खाद्यान्नों की सार्वजनिक खरीद, खाद्य सब्सिडी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संचालन और कृषि व्यापार प्रबंधन शामिल हैं। इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत इकाई में कृषि नीति की अवधारणा और उसके उद्देश्यों, नीतिगत साधनों और हालिया नीति सुधारों पर चर्चा की गई है।

2.2 भारतीय कृषि नीति कृषि विकास की व्यूह रचना : भारत की कृषि नीतियों में **कई अधिदेश हैं,** जिनमें एक **उत्पादन अनिवार्यता** (राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा), **एक उपभोक्ता अनिवार्यता** (एक बड़ी कम आय वाली आबादी के लिए खाद्य कीमतें कम रखना), और **एक किसान कल्याण अनिवार्यता** (किसानों की आय बढ़ाना) शामिल हैं। इन अधिदेशों के बीच तनाव के परिणामस्वरूप महंगी, विरोधाभासी नीतियां सामने आई हैं जिनकी लागत किसानों, सरकारी धन और प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा तेजी से वहन की गई है। **भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में कृषि के महत्व को** महसूस करते हुए , सरकार ने उत्पादकता बढ़ाकर और लागत में कटौती करके और उच्च मूल्य वाली कृषि की दिशा में विविधीकरण करके **किसानों की आय को दोगुना करने का एजेंडा निर्धारित किया है।** हालाँकि, भारतीय कृषि को कई मूलभूत सुधारों की आवश्यकता है।

2.3 भारत में कृषि का महत्व: उच्चतम रोजगार प्रदाता: किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना में **अधिक भारतीय रोजगार के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं । कुपोषण को संबोधित करता है और खाद्य सुरक्षा प्रदान करता है: कृषि भारत की कुपोषण समस्या को कम करने** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है , जो सीधे सार्वजनिक स्वास्थ्य और श्रमिक उत्पादकता को प्रभावित करती है। **आर्थिक विकास को बढ़ाना: कृषि में भारत के समग्र सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की** वृद्धि को बढ़ावा देने **की** क्षमता है । 4% की कृषि वृद्धि, सकल घरेलू उत्पाद में कम से कम एक प्रतिशत अंक जोड़ेगी, निर्यात बढ़ाएगी और भारत के व्यापार घाटे में सुधार करेगी। **विकासशील देशों में आर्थिक परिवर्तन** औद्योगिक विकास को रेखांकित करने वाली कृषि आय में वृद्धि से प्रेरित होता है। उदाहरण के लिए, चीन की आर्थिक वृद्धि। भारत के महत्वपूर्ण भूमि और जल संसाधन, जिनका उपयोग किसान कृषि उत्पादन के लिए करते हैं, विशेष रूप से बढ़ती कमी, पर्यावरणीय गिरावट और जलवायु परिवर्तन के कारण अधिक महत्व रखते हैं। भारत में कृषि का अर्थव्यवस्था में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह

न केवल खाद्य सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि यह एक प्रमुख रोजगार सृजन क्षेत्र भी है। भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आज भी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है।

1. रोजगार और ग्रामीण जीवन: भारत की लगभग 58% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का प्रमुख स्रोत कृषि ही है। खेती से जुड़े काम जैसे बुआई, सिंचाई, कटाई, और प्रसंस्करण, ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के प्रमुख साधन हैं। इसके अलावा, पशुपालन, डेयरी उद्योग, और मत्स्य पालन जैसे क्षेत्र भी कृषि के सहायक हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाते हैं।

2. खाद्य सुरक्षा: कृषि, देश की खाद्य सुरक्षा को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में चावल, गेहूं, दालें, सब्जियां, और फल जैसी प्रमुख फसलें उगाई जाती हैं। कृषि उत्पादन का प्रभाव देश की कुल खाद्य आपूर्ति पर पड़ता है। हरित क्रांति के बाद, भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बन गया है और यहां तक कि विभिन्न फसलों के निर्यातक के रूप में भी उभरा है।

3. अर्थव्यवस्था में योगदान: कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। यह देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का लगभग 17-18% हिस्सा है। कृषि से उत्पन्न उत्पाद जैसे चाय, कॉफी, मसाले, और अन्य फसलें वैश्विक बाजार में निर्यात की जाती हैं, जिससे विदेशी मुद्रा की आमद होती है।

4. ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन: कृषि, ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। सरकार की विभिन्न योजनाओं, जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, किसान क्रेडिट कार्ड, और कृषि बीमा योजनाओं का उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाना और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी को कम करना है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण सड़कों, बिजली, और सिंचाई परियोजनाओं के विकास से भी कृषि उत्पादन और किसानों की आय में वृद्धि होती है।

5. जलवायु परिवर्तन और चुनौतियाँ: हालांकि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है, यह कई चुनौतियों का सामना कर रही है। जलवायु परिवर्तन, अनियमित मानसून, मिट्टी का क्षरण, और जल संसाधनों की कमी से कृषि क्षेत्र प्रभावित हो रहा है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार और किसान दोनों को मिलकर प्रयास करना होगा, जैसे कि टिकाऊ कृषि पद्धतियों का अपनाना, जल संसाधनों का संरक्षण, और बेहतर बीज और तकनीकों का उपयोग।

भारत में कृषि का महत्व बहुत बड़ा है और यह भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती है। यह न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है, बल्कि लाखों लोगों को रोजगार और आजीविका भी प्रदान करती है। कृषि क्षेत्र में सुधार और नवाचार, भारत के आर्थिक विकास और ग्रामीण समृद्धि के लिए आवश्यक हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थिर और सशक्त बनाने के लिए कृषि के सतत विकास और उसमें आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार और समाज को मिलकर काम करना होगा।

2.4कृषि उपज मूल्य निर्धारण नीति (AGRICULTURE PRODUCE PRICING POLICY)

कृषि मूल्य नीति भारतीय अर्थव्यवस्था में सामान्य रूप से और विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में विकास और समानता प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकार की मूल्य नीति का मुख्य उद्देश्य उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों की सुरक्षा करना है। राष्ट्रीय और घरेलू दोनों स्तरों पर खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना आज भारत में प्रमुख चुनौतियों में से एक है। वर्तमान में, खाद्य सुरक्षा प्रणाली और मूल्य नीति में मूल रूप से तीन साधन शामिल हैं: खरीद मूल्य/न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), बफर स्टॉक और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS)। कृषि मूल्य नीति उत्पादन, रोजगार और किसानों की आय में सुधार करके खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने में महत्वपूर्ण साधनों में से एक है। खाद्य सुरक्षा बनाए रखने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए किसानों को लाभकारी मूल्य प्रदान करने की आवश्यकता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) भारत सरकार द्वारा कृषि उत्पादकों को खेत की कीमतों में किसी भी तेज गिरावट के खिलाफ बीमा करने के लिए बाजार में हस्तक्षेप का एक रूप है। कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) की सिफारिशों के आधार पर कुछ फसलों के लिए बुवाई के मौसम की शुरुआत में भारत सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है। एमएसपी भारत सरकार द्वारा उत्पादक - किसानों - को बम्पर उत्पादन के वर्षों के दौरान कीमत में अत्यधिक गिरावट के खिलाफ सुरक्षा देने के लिए तय की गई कीमत है। न्यूनतम समर्थन मूल्य सरकार की ओर से उनके उत्पाद के लिए एक गारंटी मूल्य है। प्रमुख उद्देश्य किसानों को संकटग्रस्त बिक्री से समर्थन देना और सार्वजनिक वितरण के लिए खाद्यान्न खरीदना है। यदि बम्पर उत्पादन और बाजार में अधिकता के कारण वस्तु का बाजार मूल्य घोषित न्यूनतम मूल्य से नीचे चला जाता है, तो सरकारी एजेंसियां किसानों द्वारा दी जाने वाली पूरी मात्रा को घोषित न्यूनतम मूल्य पर खरीद लेती हैं।

सीएसीपी तीन प्रकार की उत्पादन लागतों पर विचार करता है

1. A2
2. A2+FL
3. C2

A2 किसानों द्वारा किए जाने वाले प्रत्यक्ष खर्चों को कवर करता है, जिसमें बीज, उर्वरक, कीटनाशक, श्रम और अन्य पर होने वाले खर्च शामिल हैं।

A2+FL में A2 लागत और अवैतनिक पारिवारिक श्रम का मूल्य शामिल है।

C2 एक अधिक व्यापक लागत है जो A2+FL के अलावा, स्वामित्व वाली भूमि और पूंजीगत परिसंपत्तियों पर किराए और छूटे हुए ब्याज पर भी विचार करती है।

राष्ट्रीय किसान आयोग जिसे स्वामीनाथन आयोग के नाम से भी जाना जाता है, ने सिफारिश की है कि एमएसपी भारित औसत सीओपी से कम से कम 50 प्रतिशत अधिक होना चाहिए, जिसे वह सी2 लागत के रूप में संदर्भित करता है। सरकार का कहना है कि एमएसपी अखिल

भारतीय भारित औसत सीओपी के कम से कम 1.5 गुना के स्तर पर तय किया गया था, लेकिन यह इस लागत की गणना ए2+एफएल के 1.5 गुना के रूप में करता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) के अंतर्गत, कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP) 22 विशिष्ट फसलों के लिए कीमतों और गन्ने के लिए उचित एवं लाभकारी मूल्य की सिफारिश करता है। CACP कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय का एक विभाग है।

बफर स्टॉक और खाद्य सुरक्षा बफर स्टॉक किसी वस्तु के उस भंडार को कहते हैं जिसका उपयोग मूल्य में उतार-चढ़ाव और अप्रत्याशित आपात स्थितियों से निपटने के लिए किया जाता है। इसे आम तौर पर खाद्यान्न, दालें आदि जैसी आवश्यक वस्तुओं और आवश्यकताओं के लिए बनाए रखा जाता है। बफर स्टॉक की अवधारणा को पहली बार चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) के दौरान पेश किया गया था। वर्तमान में, भारत सरकार खाद्यान्न भंडारण मानदंड शब्द का उपयोग करना पसंद करती है, जो केंद्रीय पूल में स्टॉक के उस स्तर को संदर्भित करता है जो किसी भी समय खाद्यान्नों की परिचालन आवश्यकता और आपात स्थितियों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है। पहले इस अवधारणा को बफर मानदंड और रणनीतिक रिजर्व कहा जाता था।

भारत में बफर स्टॉक के उद्देश्य

I. खाद्य सुरक्षा के लिए निर्धारित न्यूनतम बफर स्टॉक मानदंडों को पूरा करने के लिए
II. लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) और अन्य कल्याणकारी योजनाओं (ओडब्ल्यूएस) के माध्यम से आपूर्ति के लिए खाद्यान्नों की मासिक रिलीज के लिए
III. अप्रत्याशित फसल विफलता, प्राकृतिक आपदाओं आदि से उत्पन्न आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए
IV. आपूर्ति बढ़ाने के लिए मूल्य स्थिरीकरण या बाजार हस्तक्षेप के उद्देश्य से, ताकि खुले बाजार की कीमतों को नियंत्रित करने में मदद मिल सके।
V. फसलों की खरीद एमएसपी पर की जाती है ताकि किसानों को अधिक उत्पादन करने के लिए नकारात्मक रूप से नुकसान न उठाना पड़े।
VI. घाटे के समय, सरकार चरणबद्ध तरीके से बफर स्टॉक जारी करती है ताकि उपभोक्ताओं के हितों को नुकसान न पहुंचे और वे उचित मूल्य पर अपनी पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

2.5 कृषि मूल्य निर्धारण नीतियों का विकास (EVOLUTION OF AGRICULTURE PRICING POLICIES)

भारत में कृषि मूल्य नीतियाँ और संबद्ध साधन स्वतंत्रता-पूर्व युग में विकसित किए गए थे। प्रमुख खाद्यान्नों की खरीद और वितरण शुरू किया गया था और वैधानिक अधिकतम मूल्य तय किए गए थे, लेकिन उन्हें सख्ती से लागू नहीं किया गया था। स्वतंत्रता-उत्तर युग में, खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य पर्यावरण स्थिरता से जुड़ा हुआ था। कृषि-उत्पादों के लिए

सरकार की मूल्य नीति का उद्देश्य उच्च निवेश और उत्पादन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से लाभकारी मूल्य निर्धारित करना है। हालाँकि सरकार ने बाजार की कीमतों में अचानक गिरावट आने पर निश्चित कीमतों पर खाद्यान्न खरीदने का फैसला किया, लेकिन 1954 तक खाद्य कीमतों में कोई तेज गिरावट नहीं आई। बढ़ती आबादी और बढ़ती आय के परिणामस्वरूप खाद्यान्नों, विशेषकर चावल और गेहूँ की माँग साल दर साल बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार खपत के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ मक्का, ज्वार आदि मोटे अनाजों की जगह गेहूँ और चावल की ओर रुझान विकसित हुआ। परिणामस्वरूप, मामूली प्रकृति की भी कमी बनी रहती थी और माँग और आपूर्ति को संतुलित करने के लिए कीमतों के स्तर में लगातार वृद्धि होती रहती थी।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न वितरण और आपात स्थितियों के प्रबंधन के लिए एक प्रणाली के रूप में विकसित हुई। पिछले कुछ वर्षों में, पीडीएस शब्द 'खाद्य सुरक्षा' शब्द का पर्याय बन गया है और यह देश में खाद्य अर्थव्यवस्था के प्रबंधन के लिए सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है।

1992 तक, पीडीएस सभी उपभोक्ताओं के लिए बिना किसी विशिष्ट लक्ष्य के एक सामान्य पात्रता योजना थी। लेकिन 1992 में, पीडीएस आरपीडीएस (पुनर्निर्मित पीडीएस) बन गया, जिसका ध्यान गरीब परिवारों, खासकर दूर-दराज, पहाड़ी, दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्रों पर केंद्रित था। 1997 में आरपीडीएस टीपीडीएस (लक्षित पीडीएस) बन गया, जिसने सब्सिडी दरों पर खाद्यान्न के वितरण के लिए उचित मूल्य की दुकानें स्थापित कीं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के उद्देश्य हैं:

- आबादी के कमज़ोर वर्गों को सस्ती कीमतों पर आवश्यक खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराना।
- बाज़ार में आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को स्थिर करना।
- खाद्यान्नों की जमाखोरी और कालाबाज़ारी को रोकना।
- आर्थिक रूप से वंचित समुदायों में भूख और कुपोषण को कम करना।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) कैसे काम करती है?

इसमें शामिल चरण हैं (1) खाद्यान्न की खरीद (2) खाद्यान्न का भंडारण (3) परिवारों के लिए आवंटन (4) खाद्यान्न का परिवहन।

खाद्यान्नों की खरीद

केंद्र किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर खाद्यान्न खरीदने के लिए जिम्मेदार है।MSP वह मूल्य है जिस पर FCI किसानों से सीधे फसल खरीदता है; आम तौर पर, MSP बाजार मूल्य से अधिक होता है। इसका उद्देश्य किसानों को मूल्य समर्थन प्रदान करना और उत्पादन को प्रोत्साहित करना है। कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) MSP निर्धारित करता है

खरीद(Procurement): खरीद के दो प्रकार, केंद्रीकृत खरीद और विकेंद्रीकृत खरीद(Centralised Procurement, and decentralized procurement).। केंद्रीकृत खरीद FCI (भारतीय खाद्य निगम) द्वारा की जाती है, जहाँ FCI सीधे किसानों से फसल खरीदता है। विकेंद्रीकृत खरीद एक केंद्रीय योजना है जिसके तहत 10 राज्य/केंद्र शासित प्रदेश FCI की ओर से केंद्रीय पूल के लिए MSP पर खाद्यान्न खरीदते हैं।

विकेंद्रीकृत खरीद क्यों? इसका उद्देश्य खाद्यान्नों की स्थानीय खरीद को प्रोत्साहित करना और लंबी दूरी पर अधिशेष से घाटे वाले राज्यों में अनाज ले जाने पर होने वाले खर्च को कम करना है।

खाद्यान्नों का भंडारण

एफसीआई के भंडारण दिशा-निर्देशों के अनुसार, खाद्यान्नों को आम तौर पर ढके हुए गोदामों और साइलो में संग्रहित किया जाता है। यदि एफसीआई के पास भंडारण के लिए अपर्याप्त जगह है, तो वह केंद्रीय और राज्य भंडारण निगमों (सीडब्ल्यूसी, एसडब्ल्यूसी), राज्य सरकार की एजेंसियों और निजी पार्टियों जैसी विभिन्न एजेंसियों से जगह किराए पर लेती है।

खाद्यान्न का आवंटनAllocation of foodgrains केंद्र सरकार केंद्रीय पूल से राज्य सरकारों को एक समान केंद्रीय निर्गम मूल्य (सीआईपी) पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से वितरण के लिए खाद्यान्न आवंटित करती है। गरीब लोगों की पहचान- प्रत्येक राज्य में पात्र परिवारों की पहचान करने की जिम्मेदारी राज्य सरकार की है। राज्य के भीतर खाद्यान्न के आवंटन के अलावा, राशन कार्ड जारी करना और उचित मूल्य की दुकानों (एफपीएस) के कामकाज की निगरानी आदि का काम राज्य सरकारों के पास है। बीपीएल और एएवाई (अंत्योदय अन्न योजना-बीपीएल परिवारों में सबसे गरीब) परिवारों के लिए आवंटन पहचाने गए परिवारों की संख्या के आधार पर किया जाता है।

खाद्यान्नों को उचित मूल्य की दुकानों तक पहुँचाना

खाद्यान्नों के वितरण की जिम्मेदारी केंद्र और राज्यों के बीच साझा की जाती है। केंद्र, विशेष रूप से FCI, खाद्यान्नों को खरीद करने वाले राज्यों से लेकर उपभोक्ता राज्यों तक पहुंचाने के साथ-साथ राज्य के गोदामों तक पहुँचाने के लिए जिम्मेदार है। एक बार जब FCI राज्य के डिपो तक अनाज पहुँचा देता है, तो अंतिम उपभोक्ताओं तक खाद्यान्नों का वितरण राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होती है

2.6किसानों की आय बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम: भारत में कृषि क्षेत्र की चुनौतियों को देखते हुए, सरकार ने किसानों की आय बढ़ाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। ये उपाय न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि उन्हें कृषि उत्पादन में भी सशक्त बनाते हैं। आइए इन उपायों को विस्तार से समझें:

1. इनपुट लागत पर सब्सिडी: किसानों की उत्पादन लागत को कम करने के लिए सरकार द्वारा कई प्रकार की सब्सिडी प्रदान की जाती हैं। **पानी:** सिंचाई के लिए आवश्यक जल संसाधनों पर सरकार द्वारा सब्सिडी दी जाती है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसानों को

उचित दरों पर पानी उपलब्ध हो सके, विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं का संचालन किया जाता है। इससे किसानों की लागत में कमी आती है और उत्पादन क्षमता बढ़ती है। **बिजली:** कृषि के लिए उपयोग की जाने वाली बिजली पर भी सब्सिडी प्रदान की जाती है। कई राज्यों में किसानों को मुफ्त या कम दरों पर बिजली उपलब्ध कराई जाती है, जिससे उनके लिए सिंचाई और अन्य कृषि गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाना आसान होता है। **उर्वरक:** उर्वरकों की लागत को कम करने के लिए सरकार द्वारा सब्सिडी दी जाती है। इससे किसानों को उचित मूल्य पर उर्वरक मिलते हैं, जिससे उनकी फसल उत्पादन की लागत कम होती है और वे बेहतर उत्पादन कर पाते हैं।

2. हरित क्रांति: हरित क्रांति के तहत किसानों को नई और उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए प्रेरित किया गया। **उन्नत कृषि पद्धतियाँ:** सरकार ने किसानों को उन्नत कृषि तकनीकों के बारे में जागरूक किया और उन्हें अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। इन पद्धतियों में मशीनीकरण, रोटेशन क्रॉपिंग, और अन्य नवीन कृषि तकनीकों का उपयोग शामिल है। **उच्च उपज वाले बीज:** किसानों को उच्च उपज देने वाले बीज प्रदान किए जाते हैं, जो फसलों की पैदावार को बढ़ाते हैं। इसके लिए सरकार ने विभिन्न योजनाएं चलाईं, जिसमें बीज वितरण और प्रशिक्षण शामिल है। **रासायनिक उर्वरक और सिंचाई:** सरकार ने रासायनिक उर्वरकों और पानी की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित की, जिससे फसलों की पैदावार में बढ़ोतरी हुई। इसके लिए विशेष योजनाओं के तहत सिंचाई की सुविधा और रासायनिक उर्वरकों का वितरण किया गया।

3. आउटपुट कीमतों को स्थिर करना: किसानों के उत्पादों की कीमतों में स्थिरता लाने के लिए सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और सार्वजनिक खरीद जैसी नीतियों को लागू किया। **न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP):** MSP के तहत, सरकार ने विभिन्न फसलों के लिए न्यूनतम मूल्य निर्धारित किए हैं। यदि बाजार में इन फसलों की कीमत MSP से कम हो जाती है, तो सरकार उन फसलों को MSP पर खरीदती है। इससे किसानों को अपने उत्पादों के लिए न्यूनतम मूल्य सुनिश्चित होता है, जिससे उन्हें नुकसान नहीं होता। **सार्वजनिक खरीद:** सरकार, विशेष रूप से अनाज जैसी आवश्यक वस्तुओं की सार्वजनिक खरीद करती है। यह खरीद सरकारी एजेंसियों द्वारा की जाती है और इसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के माध्यम से वितरित किया जाता है। इससे न केवल किसानों को उनकी फसल का उचित मूल्य मिलता है, बल्कि यह देश की खाद्य सुरक्षा को भी सुनिश्चित करता है।

4. गैर-फसल संबंधी कृषि आय बढ़ाना: फसल के अलावा, अन्य कृषि गतिविधियों से किसानों की आय बढ़ाने के लिए भी कदम उठाए गए हैं। **कुसुम योजना:** इस योजना के तहत किसानों को सोलर पंप सेट और सोलर पैनल लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इससे किसान अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं और यदि अतिरिक्त बिजली उत्पन्न होती है, तो उसे बेचकर आय भी कमा सकते हैं। इस योजना से किसानों को न केवल लागत में बचत होती है, बल्कि अतिरिक्त आय का स्रोत भी मिलता है। **पशुपालन और डेयरी:** सरकार ने

पशुपालन, मुर्गी पालन, और डेयरी जैसे गैर-फसल आधारित कृषि व्यवसायों को भी प्रोत्साहित किया है। इससे किसानों को अतिरिक्त आय के स्रोत मिलते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

5. किसानों को प्रत्यक्ष आय हस्तांतरण: किसानों की आय को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा प्रत्यक्ष आय हस्तांतरण योजनाएं चलाई जा रही हैं।**प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-Kisan):** इस योजना के तहत, किसानों को प्रत्यक्ष रूप से बैंक खातों में वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। प्रत्येक पात्र किसान को सालाना 6,000 रुपये की राशि तीन किस्तों में दी जाती है। इस योजना का उद्देश्य किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारना और उन्हें कृषि में आवश्यक आदान सामग्री खरीदने में मदद करना है। सरकार द्वारा किसानों की आय बढ़ाने के लिए किए गए ये प्रयास अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इन योजनाओं और नीतियों के माध्यम से किसानों को न केवल आर्थिक सहायता मिलती है, बल्कि उनके उत्पादन और जीवन स्तर में भी सुधार होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, इन उपायों का सही ढंग से कार्यान्वयन किसानों की आर्थिक सशक्तिकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

सब्सिडी वाले यूरिया के कारण नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का बड़े पैमाने पर अत्यधिक उपयोग हुआ है, जिससे मिट्टी क्षतिग्रस्त हो गई है और स्थानीय जल निकाय प्रदूषित हो गए हैं। इसी तरह, **बिजली सब्सिडी के** कारण न केवल भूजल का चिंताजनक रूप से अत्यधिक उपयोग हुआ है, बल्कि इसने बिजली वितरण कंपनियों के स्वास्थ्य को भी गंभीर नुकसान पहुंचाया है। **ऋण माफी जैसी क्रेडिट सब्सिडी ने** भारतीय बैंकिंग प्रणाली को कमजोर कर दिया है (बढ़े हुए एनपीए के कारण), जिसका अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। **न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के रूप में आउटपुट मूल्य समर्थन** मूल रूप से केवल कुछ मुट्ठी भर फसलों पर लागू होता है, विशेष रूप से गेहूं और चावल जो मुट्ठी भर राज्यों में सरकार द्वारा खरीदे जाते हैं।

2.7 उपभोक्ता उन्मुखी नीतियाँ : जब भी किसी कृषि वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, तो **सरकार भारतीय उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए निर्यात पर प्रतिबंध लगा देती है।** यह विदेशी बाजारों में ऊंची कीमतों का फायदा उठाने वाले किसानों के लिए बाधाएं पैदा करता है। **आवश्यक वस्तु अधिनियम (ईसीए)** के साथ मिलकर , इसका मतलब गोदामों और कोल्ड स्टोरेज सिस्टम जैसे निर्यात बुनियादी ढांचे में कम निजी निवेश है। भंडारण के बुनियादी ढांचे की कमी किसानों को संकटकालीन बिक्री के लिए मजबूर करती है।

2.8 त्रुटिपूर्ण कृषि विपणन नीतियाँ: विभिन्न राज्यों द्वारा पारित **कृषि उपज बाजार समिति अधिनियमों** द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के कारण , **भारतीय किसान आज अपनी उपज केवल** फार्मगेट या स्थानीय बाजार (हाट) से ग्राम एग्रीगेटर्स, एपीएमसी मंडियों और सरकार को न्यूनतम **समर्थन मूल्य (एमएसपी) पर बेच सकते हैं।** इलेक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-एनएएम) की शुरूआत - भारत में कृषि वस्तुओं के लिए एक ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म - सही

दिशा में एक कदम है। हालाँकि, तीन प्रमुख बाधाओं के कारण इसका प्रभाव बहुत कम रहा है: लेन-देन की समय लागत ,गुणवत्ता मूल्यांकन चुनौतियाँ, परिवहन रसद.

- **सीमांत भूमि जोत**

भारत में किसानों की आय में दीर्घकालिक वृद्धि के लिए कृषि उत्पादकता बढ़ाना महत्वपूर्ण है, क्योंकि भूमि विखंडन का मतलब है कि कई भारतीय किसान इतने छोटे आकार के भूखंडों पर खेती कर रहे हैं कि उनकी आय दोगुनी होने पर भी उनकी आय बहुत कम रह जाएगी। भारत में, **लगभग 85% कृषि भूमि जोत छोटी और सीमांत** (2 हेक्टेयर से कम) है।

- **धीमी कृषि विकास दर**

किसानों की आय दोगुनी करने पर अशोक **दलवई समिति की रिपोर्ट में** अनुमान लगाया गया है कि किसानों की आय दोगुनी करने के लिए 2022-23 तक प्रति वर्ष 10-11% की कृषि विकास दर की आवश्यकता होगी। हालाँकि, कृषि विकास दर और किसानों की आय वृद्धि दर स्थिर और आवश्यक विकास दर से काफी नीचे रही है।

2.9 किसानों की आय बढ़ाने के उपाय: यह इसके द्वारा किया जा सकता है: इनपुट कीमतों को बाजार स्तर तक मुक्त करना, या उर्वरक, बिजली, कृषि-ऋण और नहर जल शुल्क के लिए इष्टतम लागत मूल्य निर्धारण करना।कृषि अनुसंधान एवं विकास, सिंचाई, विपणन बुनियादी ढांचे में निवेश पर व्यय के लिए परिणामी बचत को चैनलाइज़ करना, **किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) को** शामिल करके मूल्य श्रृंखला का निर्माण करना और खेतों को संगठित खुदरा, खाद्य प्रसंस्करण और निर्यात बाजारों से जोड़ना। **लीकेज और चोरी को कम करने के लिए जन धन-आधार-मोबाइल (JAM)** की त्रिमूर्ति का लाभ उठाकर किसानों को प्रत्यक्ष आय हस्तांतरण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। **भूमि पट्टे की अनुमति**: **केंद्र सरकार को राज्य सरकारों के साथ मिलकर भूमि पट्टा बाजारों को** मुक्त करना चाहिए , जो संपत्ति सुरक्षा बनाए रखते हुए किसानों को स्थिर आय प्रदान करने में मदद कर सकता है। सुदूर शुष्क क्षेत्रों में, सौर या पवन ऊर्जा कंपनियों को भूमि पट्टे पर देने से किसानों को अपेक्षाकृत अधिक और स्थिर आय मिल सकती है। **मॉडल भूमि पट्टा अधिनियम, 2016** राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप अपने स्वयं के कानूनों का मसौदा तैयार करने और एक सक्षम अधिनियम अपनाने के लिए एक उपयुक्त टेम्पलेट प्रदान करता है।

गैर-कृषि आय के लिए बढ़ते रास्ते: सब्सिडी वाली बिजली को तर्कसंगत बनाया जाना चाहिए, क्योंकि आज **सौर जल पंप** परिचालन और वित्तीय रूप से टिकाऊ हैं। इससे सरकार पर बिजली सब्सिडी का बोझ कम होगा, साथ ही **सौर ऊर्जा पंपों से अधिशेष बिजली को ग्रिड में वापस बेचने की अनुमति मिलेगी।** निर्माण और अन्य अनुप्रयोगों के लिए बांस जैसे बायोमास के मूल्यवर्धित उपयोग, चावल की भूसी और खोई-आधारित मिनी-पावर प्लांट, और गन्ने और मकई से इथेनॉल को बढ़ावा देने से अधिक गतिशील स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं को विकसित करते हुए स्थायी तरीकों से किसानों की आय बढ़ाने में मदद मिल सकती है ।

कृषि निर्यात परिदृश्य में सुधार: भारत को **अपनी कृषि निर्यात टोकरी की संरचना पर ध्यान देने की आवश्यकता है।** वर्तमान में कृषि निर्यात देश के निर्यात का 10% है, लेकिन इसका अधिकांश निर्यात कम मूल्य, कच्चा या अर्ध-प्रसंस्कृत और थोक में विपणन किया जाता है। भारत की उच्च मूल्य और मूल्यवर्धित कृषि उपज का हिस्सा 15% से कम है। मजबूत कृषि निर्यात से भारत के कृषि उत्पादन (और इसलिए, किसानों की आय) की मांग में वृद्धि होगी। इसी कड़ी में सरकार ने **कृषि निर्यात नीति 2018** लॉन्च की है . इसका उद्देश्य कृषि निर्यात को दोगुना करना और भारतीय किसानों और कृषि उत्पादों को वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं के साथ एकीकृत करना है। **कृषि अवसंरचना में निवेश:** लंबी अवधि में किसानों की वास्तविक आय बढ़ाने का सबसे टिकाऊ तरीका **कृषि अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) से लेकर सिंचाई से लेकर ग्रामीण और विपणन बुनियादी ढांचे के विकास तक उत्पादकता बढ़ाने वाले क्षेत्रों में निवेश करना है। स्थानीय स्तर के निवेश** जो ग्रामीण स्तर पर भंडारण सुविधाएं, बेहतर सतह सिंचाई प्रबंधन, और ड्रिप सिंचाई, टाइल जल निकासी, जाल फसलों आदि में निवेश करना चाहते हैं, जो अपेक्षाकृत कम समय में परिणाम दे सकते हैं।

2.10 भारत में कृषि विपणन: एक अवलोकन

भारत में कृषि बाजारों के नियमन का इतिहास 1928 में कृषि पर रॉयल कमीशन की सिफारिशों से पता लगाया जा सकता है, जिसने 1938 के मॉडल बिल में अपना रास्ता खोज लिया। भारत की स्वतंत्रता के बाद, कृषि उपज विपणन विनियमन (APMR) अधिनियम का गठन किया गया, जो भारत में कृषि के राज्य विनियमन के लिए एक ऐतिहासिक विधायी साधन साबित हुआ। इसने भारत में राज्य सरकारों को कृषि उपज विपणन समितियों (APMC) के गठन का विकल्प प्रदान किया था, जिसे 1960 के दशक में कई राज्यों ने अपनाया था। उनके गठन के समय और उसके बाद के कई वर्षों में, APMC को नीलामी के माध्यम से कृषि उपज के बेहतर मूल्य सुनिश्चित करने और विपणन की उच्च लागत और उपज के नुकसान से किसानों की सुरक्षा के लिए एक अभिनव और लोकतांत्रिक समाधान के रूप में सराहा गया APMC, जिसे मंडी भी कहा जाता है, भौतिक बाजार का बुनियादी ढांचा है जो भारत के सभी राज्यों (जम्मू और कश्मीर, बिहार, केरल और मणिपुर को छोड़कर) में पाया जाता है। वे भौतिक संस्थाओं के रूप में कार्य करते हैं जो बाजार प्रथाओं जैसे कि वजन, बिक्री के तरीके, ग्रेडिंग के तरीके और भुगतान के तरीकों को विनियमित करते हैं। आज तक, भारत में 7,246 कार्यशील मंडियाँ हैं APMC में, सरकार को व्यापारियों और बिचौलियों (कमीशन एजेंट) के माध्यम से किसानों से कुछ 'अधिसूचित' कृषि वस्तुओं की खरीद करने का अधिकार है। इन व्यापारियों और एजेंटों को APMC द्वारा लाइसेंस दिया जाता है और वे किसानों से उनकी उपज की खरीद को सुविधाजनक बनाने के बदले में कमीशन लेते हैं। इसके अतिरिक्त, APMC किसानों और व्यापारियों से बाज़ार शुल्क लेता है, जिसका उपयोग भौतिक बुनियादी ढाँचे के निर्माण और रखरखाव के लिए किया जाता है। APMC की कल्पना किसानों के लिए विपणन गतिविधियों के लिए एक मंच के रूप में की गई थी, जो व्यापारियों और

व्यापारिक पूंजी द्वारा शोषण को रोकेगा। हालाँकि, समय के साथ, निहित स्वार्थों, अदूरदर्शी नीति निर्धारण और नौकरशाही की कमियों के कारण, APMC प्रणाली में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई। आवश्यक वस्तु अधिनियम और अन्य विनियमों के कार्यान्वयन ने बाज़ार प्रणाली की स्वतंत्रता और प्रतिस्पर्धी प्रकृति से समझौता किया। जैसे-जैसे राज्यों को APMC से राजस्व मिलता गया, राज्य सरकारों ने APMC के बोर्डों में अपने नामांकित लोगों को नियुक्त करना शुरू कर दिया, जिससे राजनीतिक वर्ग और APMC के व्यापारियों और बिचौलियों के बीच गठजोड़ बन गया। इसके अलावा, एपीएमआर ने एपीएमसी में व्यापारियों के लिए लाइसेंसिंग अनिवार्य कर दी, और उक्त लाइसेंस जारी करने के लिए, एपीएमसी की सीमाओं के भीतर एक दुकान/गोदाम की जगह का स्वामित्व होना अनिवार्य कर दिया। यह नए उद्यमियों के प्रवेश के लिए एक बड़ी बाधा बन गया और किराया-मांग व्यवहार को बढ़ावा दिया। साथ ही, लाइसेंस प्राप्त बिचौलियों/व्यापारियों ने खुद को संघों में संगठित कर लिया। इन दोनों कारकों ने नए उद्यमियों के प्रवेश को रोक दिया, जिससे किसानों की कीमत सौदेबाजी की शक्ति कम हो गई|

कृषि सुधारों के पिछले प्रयास प्रणालीगत चुनौतियों के बढ़ने और किसानों की कम आय को देखते हुए, 2000 के दशक की शुरुआत से भारत में कृषि क्षेत्र में सुधार के कई प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य व्यवस्था को नियंत्रणमुक्त करना और क्षेत्र में निवेश को प्रोत्साहित करना था। 10वीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (ईसीए) को भंडारण और गोदाम में निवेश को प्रोत्साहित करने की दिशा में एक प्रमुख बाधा के रूप में पहचाना। इसके बाद, कई कृषि वस्तुओं को ईसीए से हटा दिया गया। इन प्रयासों के बावजूद, अधिनियम के तहत बनाए गए कठोर नियम अभी भी मौजूद हैं। 2002-2003 के केंद्रीय बजट में कृषि विविधीकरण और खाद्य प्रसंस्करण के महत्व को मान्यता दी गई। इस उद्देश्य के लिए, एक अंतर-मंत्रालयी टास्क फोर्स का गठन किया गया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर, 2003 में मॉडल एपीएमसी अधिनियम पारित किया गया। मॉडल एपीएमसी अधिनियम के तहत प्रावधान इस प्रकार थे: • प्रत्यक्ष बिक्री के लिए निजी यार्ड और प्रत्यक्ष खरीद केंद्र स्थापित करना • कृषि बाजार के विकास के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी को सुविधाजनक बनाना • जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं के लिए विशेष बाजार विकसित करना • अनुबंध खेती का विनियमन और संवर्धन • कृषि उपज के लेन-देन में कमीशन एजेंटों पर प्रतिबंध। मॉडल एपीएमसी अधिनियम का जमीनी स्तर पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ा। कई राज्यों द्वारा फलों और सब्जियों को एपीएमसी के दायरे से छूट देने जैसे चुनिंदा प्रावधान किए गए। बिहार ने 2006 में एपीएमसी अधिनियम को निरस्त कर दिया, लेकिन इससे प्रतिस्पर्धी कृषि बाजार और किसानों के लिए उच्च मूल्य प्राप्ति नहीं हुई। इसके बजाय, ऐसा लगता है कि इससे बड़े थोक विक्रेताओं और आटा और चावल मिलों के मालिकों को लाभ हुआ। मध्य प्रदेश ने भी अपने एपीएमसी नियमों में सुधार किया, जबकि इसकी कई महत्वपूर्ण विशेषताओं को बरकरार रखा। इन सुधारों के कारण कृषि वस्तुओं की खरीद में बड़ी कंपनियों का प्रवेश

हुआ (उदाहरण के लिए, आईटीसी) और इसके साथ ही सहकारी बैंकों में भी वृद्धि हुई । इससे व्यापारियों और कमीशन एजेंटों द्वारा नियंत्रित ऋण और आउटपुट बाजार गठजोड़ कमजोर हो गया। यह मध्यम से बड़े किसानों के लिए फायदेमंद था, लेकिन छोटे किसान व्यापारियों, कमीशन एजेंटों और साहूकारों पर निर्भर रहे।

भारतीय राज्यों द्वारा मॉडल एपीएमसी अधिनियम के प्रति ठंडी प्रतिक्रिया को देखते हुए, भारत सरकार ने 2 मार्च 2010 को कृषि विपणन के प्रभारी राज्य मंत्रियों की अधिकार प्राप्त समिति की स्थापना की। समिति को राज्यों को मॉडल एपीएमसी अधिनियम अपनाने के लिए राजी करना था समिति द्वारा प्रस्तुत की गई व्यापक सिफारिशें इस प्रकार थीं:

- कृषि बाजारों में सुधार
- कृषि उपज के लिए विपणन अवसंरचना विकास में निवेश को बढ़ावा देना
- विपणन शुल्क/कमीशन एजेंटों का मानकीकरण
- अनुबंध खेती को प्रोत्साहित करना
- मुक्त बाजारों में बाधाओं को कम करना
- बाजार सूचना प्रणाली विकसित करना
- •कृषि उपज का वर्गीकरण और मानकीकरण
- किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) को मजबूत करना।

जबकि मॉडल एपीएमसी अधिनियम के कार्यान्वयन से भारत में वांछित परिणाम नहीं दिखे, सरकार के कुछ अन्य प्रयासों को बेहतर प्रतिक्रिया मिली है। उदाहरण के लिए, ग्रामीण कृषि बाजार (GeAMs) पहल के साथ, सरकार भारत के 'ग्रामीण हाट' (अनौपचारिक कृषि बाजार) को मजबूत करने में सफल रही है। यह योजना किसानों को सीधे बाजार से जोड़कर इन 'ग्रामीण हाटों' को एपीएमसी के व्यवहार्य विकल्प के रूप में विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करती है, जिसके परिणामस्वरूप बेहतर मूल्य प्राप्ति होती है (भारत सरकार, 2019)। यह विशेष रूप से आंतरिक ग्रामीण क्षेत्रों के उन किसानों के लिए फायदेमंद रहा है, जो एपीएमसी से काफी दूरी पर हैं और कृषि उपज के परिवहन की उच्च लागत और प्रवेश में अन्य बाधाओं का सामना करते हैं। यह पहल विशेष रूप से प्रभावशाली है क्योंकि सभी कृषि उपज के कुल विपणन योग्य अधिशेष का लगभग 42% और भारत के संसाधन-विहीन किसानों के विपणन योग्य अधिशेष का 90% इन 'ग्रामीण हाटों' में कारोबार किया जाता है (एनएसएसओ, 2014)। इसके अलावा, 2015 में, भारत सरकार ने ई-एनएएम (राष्ट्रीय कृषि बाजार) पोर्टल लॉन्च किया, जिसका उद्देश्य कृषि वस्तुओं के लिए एक अखिल भारतीय इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग पोर्टल विकसित करना था जो कृषि विपणन में व्यापार बाधाओं और प्रवेश प्रतिबंधों को हटा देगा (नाबार्ड, 2018)। ई-एनएएम पोर्टल भारत की सभी मौजूदा एपीएमसी मंडियों को जोड़कर एक एकीकृत ऑनलाइन कृषि बाजार बनाने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य व्यापार के लिए भौतिक प्रवेश बाधाओं और खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सूचना विषमता से संबंधित चुनौतियों का समाधान करना है। 17 जून 2018 तक, 16 राज्यों और दो केंद्र शासित प्रदेशों

के 585 विनियमित बाजारों को ई-एनएएम पोर्टल में एकीकृत किया गया था, 1.05 करोड़ किसानों ने ई-एनएएम पोर्टल पर पंजीकरण किया था इस मंच ने अपनी स्थापना के बाद से ₹91,000 करोड़ मूल्य के कृषि व्यापार को संभाला है

2.11 हाल के कृषि कानून और उनके उद्देश्य

देश की कृषि विपणन प्रणाली के साथ विभिन्न चुनौतियों का समाधान करने के प्रयास में, भारत सरकार ने 2020 के भारतीय कृषि अधिनियम पारित किए, जिन्हें लोकप्रिय रूप से कृषि कानून के रूप में जाना जाता है। इन कानूनों को भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया और सितंबर 2020 में भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। कृषि कानूनों का विवरण इस प्रकार है:

1. किसान उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सुविधा) अधिनियम, 2020: इसे APMC विनियमन अधिनियम के रूप में भी संदर्भित किया गया था, यह देखते हुए कि इसका मुख्य ध्यान निम्नलिखित प्रणालीगत परिवर्तन लाकर APMC प्रणाली में सुधार करना था (MoAFW, 2020)। उद्देश्य इस प्रकार हैं:

i. कृषि वस्तुओं के व्यापार में अंतरराज्यीय और अंतरराज्यीय बाधाओं को हटाना।

ii.APMC यार्ड के बाहर सभी कृषि वस्तुओं (केवल फल और सब्जियाँ नहीं) का व्यापार।

iii. किसानों या व्यापारियों द्वारा निर्दिष्ट बाज़ार यार्ड के बाहर व्यापार करने पर APMC द्वारा उपकर या बाज़ार शुल्क लगाने पर प्रतिबंध।

iv. ई-ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म के संचालन के लिए अनिवार्य लाइसेंस को खत्म करना।

v. ई-ट्रेडिंग मानदंडों में ढील देना और एफपीओ या किसी अन्य संगठन या व्यक्ति को पैन के साथ ई-ट्रेडिंग में शामिल होने की अनुमति देना।

2. किसान (सशक्तिकरण और संरक्षण) मूल्य आश्वासन और कृषि सेवा समझौता अधिनियम, 2020 (अनुबंध खेती अधिनियम) अनुबंध खेती के लिए एक सक्षम ढांचा प्रदान करने का इरादा रखता है। इसके लिए प्रस्तावित प्रमुख परिवर्तन हैं:

i.सीजन की शुरुआत से पहले किसान और खरीदार के बीच लिखित समझौता किया जाना चाहिए

ii. 'गारंटीकृत मूल्य' का उल्लेख करने की अनिवार्य आवश्यकता, संबंधित राज्य पंजीकरण प्राधिकरण के साथ पंजीकृत समझौता।

iii. डिलीवरी के समय पूरा भुगतान

iv. किसानों के लिए प्राकृतिक आपदा और कीट और कीट हमले के कारण फसल के नुकसान से देयता के खिलाफ प्रावधान

v. विकेंद्रीकृत विवाद निपटान।

3. आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 2020 (आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 का संशोधन) अधिसूचित वस्तुओं के लिए विनियमन और स्टॉक सीमा में ढील देता है:

i. केवल असाधारण परिस्थितियों (अकाल, प्राकृतिक आपदा, असाधारण मूल्य वृद्धि) के तहत खाद्य पदार्थों का विनियमन

ii. कुछ शर्तों के तहत कृषि मूल्य श्रृंखला के उच्च अंत में प्रोसेसर और अन्य पर स्टॉक सीमा लागू नहीं होगी। सार्वजनिक वितरण प्रणाली और लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए स्टॉक को छत से छूट दी गई है।

2.12 कृषि कानूनों के खिलाफ तर्क

दक्षता और प्रतिस्पर्धा के संबंध में कई कमियों के बावजूद, भारत की एपीएमसी अभी भी भारत के किसानों को महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करती हैं। भारत की एपीएमसी किसानों के लिए मूल्य संकेत की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए फसलों की बिक्री के संबंध में सूचित निर्णय लेने में सहायक है। वर्तमान में, कुल कृषि विपणन योग्य अधिशेष का केवल दो-पांचवां हिस्सा एपीएमसी में कारोबार किया जाता है। सुधारात्मक उपायों की शुरूआत के बाद यह मात्रा कम होने की संभावना है। यह छोटे और सीमांत किसानों को नुकसानदेह स्थिति में डाल देगा क्योंकि उचित संदर्भ मूल्य निर्धारित करने की उनकी क्षमता से समझौता हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, एपीएमसी कृषि उपज के बाजार में आने की तारीख, व्यापार की मात्रा और कृषि वस्तुओं की कीमतों के बारे में डेटा एकत्र और प्रकाशित करते हैं। एपीएमसी की अनुपस्थिति से सूचना विषमता पैदा होगी और भारत के छोटे और सीमांत किसानों के शोषण में योगदान हो सकता है (गाँव कनेक्शन, 2021)। यह मुद्दा बिहार राज्य में देखा गया है, जहां राज्य सरकार ने 2006 में एपीएमसी को खत्म कर दिया था। इसके बाद, राज्य का कृषि बाजार एक सरकारी विनियमित मॉडल से एक निजी और अनियमित हो गया। इससे वजन, छंटाई, भंडारण और उपज की खरीद से संबंधित बुनियादी ढांचे की कमी हो गई। यह राज्य के कृषि और संबद्ध क्षेत्रों की वृद्धि दर में परिलक्षित हुआ है, जो 2004-2005 में 14.9% (1999-2000 स्थिर कीमतों पर) से गिरकर 2018-2019 में 0.6% हो गया है (2011-2012 स्थिर कीमतों पर) (सिंह, 2014)। प्रस्तावित अनुबंध खेती विधेयक का उद्देश्य किसानों को गारंटीकृत मूल्य, फसल के नुकसान की स्थिति में सुरक्षा और डिलीवरी के समय पूर्ण भुगतान के प्रावधान के माध्यम से सुरक्षा प्रदान करना था। वर्तमान में, भारत में अनुबंध खेती कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित है जैसे चिप्स उत्पादन के लिए आलू की खेती, सुपरमार्केट चेन के लिए सब्जी उत्पादन और निर्यात के लिए खीरा की खेती। भारत में अनुबंध खेती की अलोकप्रियता को विनियामक ढांचे से ज़्यादा अलग-अलग ज़मीनी हकीकतों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। छोटे आकार की भूमि व्यवसायियों को किसानों के साथ सीधे अनुबंध करने से हतोत्साहित करती है। इसके बजाय यह व्यापारियों/एग्रीगेटर्स की भूमिका को बढ़ावा देता है। इसका परिणाम 'ढीली व्यवस्था' है, जहाँ उत्पादन और मूल्य निर्धारण की कुछ शर्तें वास्तविक औपचारिक अनुबंध की अनुपस्थिति में खरीदारों द्वारा निर्दिष्ट की जाती हैं। यह किसानों को एक असुरक्षित स्थिति में डालता है, क्योंकि अगर खरीदार खरीद को रोक देता है तो कोई सुरक्षा जाल नहीं होता है (सिंह, 2012)।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भारतीय कृषि में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों अर्थव्यवस्था के घटक हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि भारत में अधिकांश किसान एक हेक्टेयर से भी कम भूमि पर काम करते हैं; इसलिए, वे बाजारों के लिए सीमित अधिशेष उत्पादन करने में सक्षम हैं। इससे एकत्रीकरण, विपणन और प्रारंभिक मूल्य संवर्धन (ग्रेडिंग, छंटाई, आदि) के लिए कई अनौपचारिक बिचौलियों की आवश्यकता पैदा होती है। तीन कृषि कानूनों के परिणामस्वरूप भारत के कृषि बाजार में गैर-राज्य स्थानीय और क्षेत्रीय एकाधिकार या कुलीन वर्ग के कार्टेल का उदय हो सकता है। और, कृषि बाजारों में सौदेबाजी की शक्ति की गतिशीलता को देखते हुए, कानून समय के साथ छोटे और सीमांत किसानों को कमजोर स्थिति में डाल देंगे।

2.13कृषि विपणन सुधार: किसानों की आय में काफी सुधार हो सकता है यदि वे खेत से उपभोक्ता तक आपूर्ति श्रृंखला में अधिक हिस्सेदारी हासिल करने में सक्षम हों। ऐसा होने के लिए, किसानों को कृषि उपज की बिक्री, भंडारण, आवाजाही और निर्यात पर किसी भी प्रतिबंध के बिना जो चाहें, जहां चाहें और जब चाहें बेचने की आजादी होनी चाहिए। इसके लिए कानूनी और संस्थागत बदलाव, बाजार के बुनियादी ढांचे और भंडारण (कोल्ड-चेन स्टोरेज सहित) में बड़े निवेश और एफपीओ द्वारा बुनियादी ढांचे के निर्माण और संचालन के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता होगी। इस संदर्भ में, राज्य को **मॉडल कृषि उपज और पशुधन विपणन अधिनियम, 2017 को** अपनाने की आवश्यकता है । **सहकारी संघवाद की आवश्यकताकृषि एक राज्य का विषय है** और कई महत्वपूर्ण लीवर - पानी, बिजली, सिंचाई, विस्तार, आदि - राज्यों द्वारा नियंत्रित होते हैं। हालाँकि, केंद्र सरकार बड़ी भूमिका निभाती रहती है। इस प्रकार, सुधार तभी सफल हो सकते हैं जब केंद्र और राज्य सरकारें "सहकारी संघवाद" की भावना से मिलकर काम करें।

2.14 भारतीय कृषि में कम उत्पादकता के कारण

भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। लेकिन विकसित देशों की तुलना में भारत में उत्पादकता बहुत कम है। इस कम उत्पादकता के पीछे निम्नलिखित कारण हैं

सामान्य कारण

1. कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या को गैर-कृषि क्षेत्र में समाहित नहीं किया जा सकता है और इसलिए कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप,प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है और इसलिए प्रति हेक्टेयर उत्पादन में भी कमी आ रही है

2. अविकसित ग्रामीण परिवेश किसान भाग्य पर निर्भर रहते हैं और इसलिए वे कृषि के विकास में रुचि नहीं लेते हैं। इसके अलावा, उचित शिक्षा की कमी के कारण उन्हें उन्नत तकनीक पर भरोसा नहीं है जो उत्पादन बढ़ाने के लिए उपयोगी है

3. कृषि श्रमिकों के कौशल की कमी भारतीय कृषि श्रमिकों में कम वेतन, उचित आवास सुविधाओं की कमी, निम्न जीवन स्तर, सामाजिक चेतना की कमी, उचित शिक्षा की कमी आदि के कारण कौशल की कमी है।

4. वित्तीय समस्या भारत में अधिकांश किसान गरीब हैं और उनके पास भूमि विकास के लिए पर्याप्त धन नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि ऋण प्रदान करने वाली संस्थाएँ बहुत कम हैं। इसके अलावा, इन संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों से धनी किसान लाभान्वित होते हैं। गरीब किसान ग्रामीण साहूकारों पर निर्भर रहते हैं जो उच्च ब्याज दर लेते हैं। इसलिए, ब्याज दर के इस भारी बोझ के नीचे गरीब किसान कृषि में सुधार के लिए पैसा खर्च नहीं कर सकते हैं। उन्हें ऋण चुकाने के लिए फसल कटते ही अपनी उपज बहुत कम कीमत पर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

संस्थागत कारण

1. गैर-आर्थिक जोत संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार कानूनों का अस्तित्व, लघु और कुटीर उद्योगों का विनाश आदि के कारण भारत की कृषि भूमि छोटी और छोटी होती जा रही है। यह गैर-आर्थिक जोत बनती जा रही है। वे अलग-अलग जगहों पर बिखरी हुई हैं और इसलिए उन पर खेती करने के लिए आधुनिक तकनीक नहीं अपनाई जा सकती है। इसलिए, उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता है।

2. जमींदारी प्रथा भारत में, किसान जमीन पर खेती करते हैं लेकिन जमीन का मालिकाना हक जमींदारों के पास होता है। इसलिए, किसानों को हमेशा डर लगा रहता है कि कहीं उन्हें कभी भी जमीन से बेदखल न कर दिया जाए। इसलिए वे उत्पादन बढ़ाने में अनिच्छुक हैं।

3. खराब बुनियादी ढांचा कम ब्याज दर पर ऋण की उपलब्धता की कमी, उत्पादित वस्तुओं के लिए गोदाम की खराब व्यवस्था, कृषि उत्पादों के विपणन की सुविधा का अभाव, कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश की कमी आदि के कारण भारतीय कृषि कम उत्पादकता से ग्रस्त है।

4. व्यक्तिगत स्वामित्व वाली खेती भारतीय कृषि पारिवारिक आधार और निजी स्वामित्व वाली प्रणाली पर चलती है। वे कभी भी सामूहिक रूप से खेती करना पसंद नहीं करते थे और इसलिए सहकारी खेती की सुविधा का लाभ उठाना संभव नहीं था।

तकनीकी या प्रौद्योगिकीय कारण

1. अपर्याप्त सिंचाई प्रणाली भारतीय कृषि मुख्य रूप से अनिश्चित मानसून पर निर्भर है और इसलिए किसानों की भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में कोई रुचि नहीं है।

2. कृषि अनुसंधान में उपेक्षा भारत में कृषि अनुसंधान के लिए नगण्य हिस्सा खर्च किया जाता है। इसके अलावा, इन अनुसंधान प्रयोगशालाओं और किसानों के बीच एक खराब संबंध है। इसलिए, किसान कृषि अनुसंधान के मूल्यवान परिणामों से अनभिज्ञ हैं।

3.पुरानी उत्पादन प्रणाली अज्ञानता, पूंजी की कमी और रासायनिक खादों की कमी के कारण भारतीय किसान उत्पादन के आधुनिक तरीकों को अपनाने के बजाय पारंपरिक तरीकों पर

निर्भर हैं। हाल ही में रासायनिक खाद, कीटनाशकों, उच्च उपज वाले बीजों का उपयोग लोकप्रिय हुआ, लेकिन यह केवल पंजाब और हरियाणा तक ही सीमित था।

2.12शब्दावली

1. कृषि तकनीक (Agricultural Technology): कृषि उत्पादन में उपयोग होने वाली तकनीकें, जैसे मशीनरी, बीज, सिंचाई पद्धतियाँ, और जैविक खाद, जो कृषि उत्पादन में सुधार और कृषि कार्यों को आसान बनाती हैं।
2. कृषि नीति (Agricultural Policy): सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र के विकास, किसानों के कल्याण, और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई नीतियाँ और कार्यक्रम।
3. कृषि उत्पादकता (Agricultural Productivity): प्रति इकाई भूमि या श्रम से उत्पन्न होने वाली कृषि उत्पादन की मात्रा, जो कृषि के विकास और किसानों की आय का प्रमुख संकेतक होती है।
4. कृषि संकट (Agrarian Crisis): कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याएँ, जैसे उत्पादन में गिरावट, किसानों की आय में कमी, ऋण का बोझ, और आत्महत्याएँ, जो आर्थिक और सामाजिक स्थिरता के लिए गंभीर चुनौती हैं।
5. कृषि व्यापार (Agri-Trade): कृषि उत्पादों का घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार, जिसमें फसलों, पशुधन उत्पादों, और अन्य कृषि सामग्री का विनिमय शामिल होता है। यह व्यापार कृषि उत्पादों की मांग और आपूर्ति को प्रभावित करता है और किसानों की आय को सीधे प्रभावित करता है। इन शब्दों और उनके विवरणों से आपको भारतीय अर्थव्यवस्था और कृषि के विभिन्न पहलुओं की समझ में मदद मिलेगी और आप संबंधित विषयों पर गहराई से विचार कर सकेंगे।

2.15 कुछ उपयोगी पुस्तके

- "भारतीय अर्थव्यवस्था: संक्षेपण" - रमेश चंद्र द्वारा लिखित, यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को संक्षेपित रूप में प्रस्तुत करती है।

बोध प्रश्न

1. हरित क्रांति से भारतीय कृषि को क्या लाभ हुआ?
2. भारतीय कृषि के लिए जल संसाधन का क्या महत्व है?
3. मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का उद्देश्य क्या है?

इकाई 03 वैश्वीकरण एवं बाजार व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 वैश्वीकरण एवं बाजार व्यवस्था
3.3 भारत में वैश्वीकरण का प्रभाव
3.3.1 भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण
3.3.2 भारत में वैश्वीकरण के लाभ
3.3.3 वैश्वीकरण का प्रभाव
3.4 वैश्वीकरण पर बहस
3.5 वैश्वीकरण के खिलाफ
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे:

- वैश्वीकरण का एक वैचारिक ढांचा प्रदान करना;
- वैश्वीकरण की उत्पत्ति का पता लगाना;
- इसके विभिन्न दृष्टिकोणों की जांच करना; और

वैश्वीकरण, राज्य, बाजार और नागरिक समाज के बीच संबंधों का विश्लेषण करना

3.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण की अवधारणा में बहुविषयक परिप्रेक्ष्य है। एक अर्थशास्त्री इसे व्यापार बाधाओं को हटाने, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा देने, बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश आदि के रूप में देखता है। दूसरी ओर, समाजशास्त्री इसे बहुआयामी मानते हैं और अर्थशास्त्र, राजनीति, संस्कृति और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जटिल प्रक्रियाओं के ढांचे में जांच की जानी चाहिए। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप राष्ट्र-राज्यों और समाजों के बीच संबंधों और अंतर्संबंधों की बहुलता हो रही है। यह एक ऐसी प्रक्रिया भी है जिसके द्वारा दुनिया के एक हिस्से में होने वाली घटनाओं, निर्णयों और गतिविधियों से दुनिया के काफी दूर के हिस्सों में व्यक्तियों और समुदायों के लिए महत्वपूर्ण परिणाम सामने आते हैं। वैश्वीकरण ने राज्य, बाजार और नागरिक समाज को काफी हद तक प्रभावित किया है। इन पहलुओं पर इस इकाई में चर्चा की जाएगी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे:

- वैश्वीकरण का एक वैचारिक ढांचा प्रदान करना;
- वैश्वीकरण की उत्पत्ति का पता लगाना;
- इसके विभिन्न दृष्टिकोणों की जांच करना; और
- वैश्वीकरण, राज्य, बाजार और नागरिक समाज के बीच संबंधों का विश्लेषण करना

3.2 वैश्वीकरण एवं बाजार व्यवस्था

वैश्वीकरण शब्द का तात्पर्य राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण से है। यह एक बहुआयामी पहलू है. यह कई रणनीतियों के संग्रह का परिणाम है जो दुनिया को अधिक परस्पर निर्भरता और एकीकरण की दिशा में बदलने के लिए निर्देशित हैं। इसमें नेटवर्क का निर्माण और सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक बाधाओं को बदलने वाले कार्य शामिल हैं। वैश्वीकरण इस तरह से संबंध बनाने की कोशिश करता है कि भारत में होने वाली घटनाओं को दूर पर होने वाली घटनाओं से निर्धारित किया जा सके। दूसरे शब्दों में कहें तो, वैश्वीकरण सार्वभौमिक रूप से लोगों, निगमों और सरकारों के बीच बातचीत और मिलन का तरीका है।

3.3 भारत में वैश्वीकरण का प्रभाव : भारत उन देशों में से एक है जो वैश्वीकरण की शुरुआत और कार्यान्वयन के बाद महत्वपूर्ण रूप से सफल हुआ। देश में कॉरपोरेट, रिटेल और वैज्ञानिक क्षेत्र में विदेशी निवेश की वृद्धि जबरदस्त है। इसका सामाजिक, मौद्रिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों पर भी जबरदस्त प्रभाव पड़ा। हाल के वर्षों में परिवहन और सूचना प्रौद्योगिकी में सुधार के कारण वैश्वीकरण बढ़ा है। बेहतर वैश्विक तालमेल के साथ, वैश्विक व्यापार, सिद्धांतों और संस्कृति का विकास होता है।

वैश्वीकरण ने पिछले कुछ दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। 1991 में आर्थिक उदारीकरण के साथ, भारत ने वैश्वीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया। इसके परिणामस्वरूप, भारत उन देशों में शामिल हो गया जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया के बाद तेजी से विकसित हुए हैं।

1. आर्थिक क्षेत्र पर प्रभाव: विदेशी निवेश: वैश्वीकरण के बाद भारत में विदेशी निवेश में जबरदस्त वृद्धि हुई है। कॉरपोरेट, रिटेल, और वैज्ञानिक क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों ने भारत में निवेश करना शुरू किया, जिससे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली। विदेशी कंपनियों के आगमन से न केवल नई नौकरियां सृजित हुईं, बल्कि प्रौद्योगिकी और प्रबंधन के क्षेत्र में भी नवीनीकरण हुआ।

निजीकरण और उदारीकरण: वैश्वीकरण ने भारत में निजीकरण और उदारीकरण को बढ़ावा दिया। इससे निजी क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ी और कई सरकारी उद्यमों का निजीकरण किया गया, जिससे उनकी दक्षता और उत्पादकता में सुधार हुआ। साथ ही, उदारीकरण ने विदेशी कंपनियों के लिए भारतीय बाजार को खोल दिया, जिससे उपभोक्ताओं के लिए अधिक विकल्प उपलब्ध हुए।

व्यापार और निर्यात: भारत का वैश्विक व्यापार में हिस्सा बढ़ा है। वैश्वीकरण ने भारतीय कंपनियों को वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा करने का अवसर दिया। सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा क्षेत्र, और विनिर्माण जैसे क्षेत्रों में भारतीय कंपनियों ने वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाई। निर्यात में वृद्धि के साथ-साथ भारत ने वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनने की दिशा में कदम बढ़ाए हैं।

2. सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव:

सांस्कृतिक आदान-प्रदान: वैश्वीकरण ने भारतीय समाज में सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया। पश्चिमी संस्कृति, फैशन, भोजन, और जीवन शैली का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा है। इसके साथ ही, भारतीय संस्कृति और परंपराओं का भी वैश्विक स्तर पर प्रसार हुआ है। योग, आयुर्वेद, और भारतीय व्यंजन दुनिया भर में लोकप्रिय हो गए हैं।

शिक्षा और तकनीकी क्षेत्र: वैश्वीकरण ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। वैश्विक मानकों के अनुरूप शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण की मांग बढ़ी है। इसके परिणामस्वरूप, भारत में कई अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और संस्थान स्थापित हुए हैं। छात्र अब वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए तैयार हो रहे हैं।

3.3.1 भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण

शहरीकरण और वैश्वीकरण के बाद भारतीय समाज में भारी बदलाव आ रहा है। अर्थव्यवस्था के बुनियादी ढाँचे के निर्माण में आर्थिक नीतियों का सीधा प्रभाव पड़ा है। सरकार द्वारा स्थापित और प्रशासित आर्थिक नीतियों ने भी समाज में बचत, रोजगार, आय और निवेश के नियोजन स्तर में आवश्यक भूमिका निभाई। क्रॉस कंट्री संस्कृति भारतीय समाज पर वैश्वीकरण के महत्वपूर्ण प्रभावों में से एक है। इसने सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सहित देश के कई पहलुओं को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है। हालाँकि, आर्थिक एकीकरण ही मुख्य कारक है जो किसी देश की अर्थव्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अधिकतम योगदान देता है।

3.3.2 भारत में वैश्वीकरण के लाभ

1) **रोजगार में वृद्धि:** विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेड) के अवसर के साथ, उपलब्ध नई नौकरियों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारत में निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ईपीजेड) केंद्र को शामिल करना हजारों लोगों को रोजगार देने में बहुत उपयोगी है। भारत में एक और अतिरिक्त कारक सस्ता श्रम है। यह सुविधा पश्चिम की बड़ी कंपनियों को अन्य क्षेत्रों से कर्मचारियों को आउटसोर्स करने और अधिक रोजगार पैदा करने के लिए प्रेरित करती है।
2) **मुआवजे में वृद्धि:** वैश्वीकरण के बाद, विदेशी कंपनी द्वारा प्रदान किए जाने वाले कौशल और ज्ञान के कारण घरेलू कंपनियों की तुलना में मुआवजे का स्तर बढ़ गया है। यह अवसर प्रबंधन संरचना में बदलाव के रूप में भी उभरा।

3) **उच्च जीवन स्तर:** वैश्वीकरण के प्रकोप के साथ, भारतीय अर्थव्यवस्था और व्यक्ति के जीवन स्तर में वृद्धि हुई है। यह परिवर्तन किसी व्यक्ति के क्रय व्यवहार से अधिसूचित होता है, विशेषकर उन लोगों के साथ जो विदेशी कंपनियों से जुड़े होते हैं। इसलिए, कई शहर व्यवसाय विकास के साथ-साथ बेहतर जीवन स्तर के दौर से गुजर रहे हैं।

3.3.3 वैश्वीकरण का प्रभाव

आउटसोर्सिंग : यह वैश्वीकरण पद्धति के प्रमुख परिणामों में से एक है। आउटसोर्सिंग में, एक कंपनी बाहरी स्रोतों से नियमित सेवा की भर्ती करती है, अक्सर अन्य देशों से, जो पहले आंतरिक रूप से या देश के भीतर से लागू की जाती थी (जैसे कंप्यूटर सेवा, कानूनी सलाह, सुरक्षा, प्रत्येक निगम के व्यक्तिगत विभागों द्वारा प्रस्तुत की जाती है, और विज्ञापन) . एक प्रकार के आर्थिक उद्यम के रूप में, संचार के त्वरित तरीकों में वृद्धि, विशेष रूप से सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) के विकास के कारण, हाल के दिनों में आउटसोर्सिंग में वृद्धि हुई है। आवाज-आधारित व्यावसायिक प्रक्रियाओं (आमतौर पर बीपीएस, बीपीओ या कॉल सेंटर के रूप में जाना जाता है), अकाउंटेंसी, रिकॉर्ड कीपिंग, संगीत रिकॉर्डिंग, बैंकिंग सेवाएं, पुस्तक प्रतिलेखन, फिल्म संपादन, नैदानिक सलाह या शिक्षकों जैसी कई सेवाओं को आउटसोर्स किया जा रहा है। उन्नत देशों की कंपनियाँ भारत में।

3.4 वैश्वीकरण पर बहस

वैश्वीकरण के लिए

एक अरब लोग गरीबी से बाहर 1990 और 2010 के बीच, विकासशील देशों में कुल जनसंख्या के अनुपात में अत्यधिक गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या आधी रह गई, जो 43% से घटकर 21% रह गई - यानी लगभग 1 बिलियन लोगों की कमी।

दुनिया भर में मानव विकास संकेतकों में भी सुधार हो रहा है। हर जगह जीवन प्रत्याशा में लगातार वृद्धि हो रही है, और अधिकांश विकासशील देश अब तेजी से समृद्ध दुनिया के साथ जुड़ रहे हैं; हर जगह बाल मृत्यु दर में कमी आई है; साक्षरता दर, स्वच्छ जल, बिजली और बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओं तक पहुंच, ये सभी संकेतक बढ़ रहे हैं।

तुलनात्मक लाभ (COMPARATIVE ADVANTAGE) एडम स्मिथ ने द वेल्थ ऑफ नेशंस में प्रसिद्ध रूप से उल्लेख किया है कि वैश्विक मुक्त व्यापार प्रणाली देशों को अपने संसाधनों का अधिक कुशलता से उपयोग करने की अनुमति देती है, जो वे सबसे अच्छा उत्पादन करते हैं, जबकि अन्य देश जो बेहतर उत्पादन करते हैं उसे खरीदते हैं। 2011 के एक प्रकाशन में, OECD ने तर्क दिया कि तुलनात्मक लाभ खुली अर्थव्यवस्थाओं में उच्च आय वृद्धि के सबसे शक्तिशाली स्पष्टीकरणों में से एक है। देशों के बीच मतभेद, जिसमें व्यापक नीतिगत एजेंडे में अंतर शामिल हैं, उत्पादकता में सापेक्ष अंतर पैदा करते हैं, जिससे व्यापार से लाभ बढ़ता है।

बढ़ता अंतर्राष्ट्रीय सहयोग (INCREASED INTERNATIONAL COOPERATION) जगदीश भगवती जैसे कुछ अर्थशास्त्री तर्क देते हैं कि वैश्वीकरण द्वारा लाया गया व्यापार खुलापन

लोकतंत्र के प्रसार में योगदान दे सकता है, क्योंकि "व्यापार के लाभ समृद्धि लाते हैं, जो बदले में, मध्यम वर्ग का निर्माण या विस्तार करता है जो फिर अधिनायकवाद का अंत चाहता है।" प्रिंसटन के जॉन डोसेस ने पाया कि "वैश्वीकरण को अमेरिका को निर्यात में वृद्धि के रूप में मापा जाता है, जो निर्यातक देश में लोकतंत्र के स्तर को बढ़ाता है।"

3.5 वैश्वीकरण के खिलाफ

राज्य की संप्रभुता का क्षरण EROSION OF STATE SOVEREIGNTY एक और आम तर्क यह है कि वैश्वीकरण ने राज्य की संप्रभुता को खत्म कर दिया है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार राष्ट्र-राज्यों की घरेलू अर्थव्यवस्थाओं को नियंत्रित करने की क्षमता को सीमित करता है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय संगठन और कानून उनकी निर्णय लेने की क्षमताओं पर सीमाएँ लगाते हैं।
यूरोज़ोन संकट ने साबित कर दिया कि वित्तीय बाज़ार सरकारों को उतनी ही आसानी से गिरा सकते हैं जितनी आसानी से चुनाव। फिर भी वित्तीय बाज़ारों पर कोई लोकतांत्रिक नियंत्रण नहीं है।
बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ करों से बचने में मदद के लिए कानूनी खामियों का फायदा उठाती हैं (और अच्छे वेतन वाले वकीलों और एकाउंटेंट का इस्तेमाल करती हैं)। वे अपने परिचालन को कमज़ोर श्रम कानूनों और पर्यावरण संरक्षण वाले देशों में ले जाती हैं, जो विकसित दुनिया के उच्च मानकों को दरकिनार करते हैं (अपने उत्पाद वहाँ बेचने के बावजूद)।
बढ़ती असमानता(INCREASED INEQUALITY) वैश्वीकरण ने कुछ लोगों को बहुत अमीर बना दिया है। हालाँकि, अधिकांश लोगों को बहुत कम पैसे दिए गए हैं। 2018 की विश्व असमानता रिपोर्ट से पता चलता है कि दुनिया भर में असमानता बढ़ रही है (खासकर भारत और चीन जैसी तेज़ी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्थाओं में)।
अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिग्लिट्ज़ और हा-जून चांग जैसे मुक्त बाज़ार के आलोचकों का तर्क है कि वैश्वीकरण ने दुनिया में असमानता को कम करने के बजाय उसे और भी बढ़ा दिया है।
2007 में, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सुझाव दिया था कि विकासशील देशों में नई तकनीक और विदेशी निवेश की शुरूआत के कारण असमानता का स्तर बढ़ सकता है।

3.6 सारांश

वैश्वीकरण एक बहुआयामी घटना है जो विशेष रूप से आर्थिक अंतर्राष्ट्रीयकरण और मुक्त बाजार संबंधों के विस्तार से उभर रही है। वैश्वीकरण के समर्थक वादा करते हैं कि स्थानीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को संरक्षणवाद के बिना वैश्विक अर्थव्यवस्था में एकीकृत करने से अधिक आय संसाधन उत्पन्न होंगे, ज्ञान और प्रौद्योगिकी तक पहुँच बढ़ेगी और उपभोग शक्ति, जीवन स्तर और राजनीतिक आदर्शों में और वृद्धि होगी। हालाँकि, वैश्वीकरण के आलोचकों का तर्क है कि यह वादा एक गलत धारणा है क्योंकि यह स्थानीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं, समुदायों और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है और साथ ही गरीब और कमज़ोर लोगों को गरीब बनाता है (गुट्टल, op.cit.)। वैश्वीकरण ने वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं को विभिन्न तरीकों से प्रभावित किया है। इसने उदारीकरण, निजीकरण और विनियमन को लाया

है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसके परिणामस्वरूप बाजार में अस्थिरता आई है, निगमों के लिए संरक्षणवाद ने छोटे और मध्यम उत्पादकों को प्रभावित किया है ताकि वे इसके दुष्प्रभावों का मुकाबला कर सकें। इसने वैश्विक नागरिक समाज के निर्माण की दिशा में बड़े पैमाने पर लामबंदी को जन्म दिया, जिससे अंतरराष्ट्रीय आंदोलन और विरोध प्रदर्शन हुए। इस इकाई ने आपको इन पहलुओं की बुनियादी समझ प्रदान की है।

3.7 शब्दावली

1. प्रबंधन (Management): संगठनों या उद्योगों के कार्यों को नियोजित, संगठित, निर्देशित, और नियंत्रित करने की प्रक्रिया, जिससे उनके लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें।
2. नियंत्रण (Control): किसी संगठन, उद्योग, या आर्थिक गतिविधि पर शासन करने की प्रक्रिया, जिसमें नियमों और नीतियों के माध्यम से संचालन का मार्गदर्शन किया जाता है।
3. प्रौद्योगिकी (Technology): वैज्ञानिक ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग, जो उत्पादकता, नवाचार, और दक्षता को बढ़ाने में सहायक होता है।
4. आधुनिकीकरण (Modernization): पारंपरिक या पुरानी प्रणालियों, प्रक्रियाओं, या उपकरणों को उन्नत और आधुनिक तकनीकों के साथ प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया, जिससे उत्पादकता और प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हो।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण" - अमिता बट्टाचार्य द्वारा लिखित, यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण के विकास को समझने में मदद करती है।

➢ बोध प्रश्न

1. मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति में क्या अंतर है?
2. भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की भूमिका क्या है?
3. मौजूदा आर्थिक नीति में प्रमुख चुनौतियाँ क्या हैं?

इकाई 04 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भारतीय कृषि में फसल प्रवृत्तियाँ
4.3 रुझान और मूल्यांकन
4.4 भूमि की उत्पादकता में रुझान
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.4 कुछ उपयोगी पुस्तके

4.0: उद्देश्य

इस मॉड्यूल को पूरा करने के बाद छात्र निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे:

- भारतीय कृषि की अवधारणाओं को समझना।
- भारतीय कृषि में फसल की प्रवृत्तियों को समझना।
- भूमि की उत्पादकता में प्रवृत्तियों को समझना।
- भारत में पैटर्न और भूमि उपयोग को समझना।

4.1 प्रस्तावना

भारतीय प्राकृतिक संसाधनों का सबसे बड़ा हिस्सा भूमि है और अब तक इसके निवासियों की सबसे बड़ी संख्या कृषि में लगी हुई है। इसलिए देश के आर्थिक विकास की किसी भी योजना में कृषि का स्थान बुनियादी महत्व का है। यह मॉड्यूल भारत में कृषि की स्थिति की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में बताता है। यद्यपि भारतीय कृषि विकसित देशों के स्तरों की तुलना में बहुत पीछे है, फिर भी स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में कुछ उल्लेखनीय विकास हुए हैं। बार-बार बारिश की विफलता से पीड़ित बड़े क्षेत्रों में सिंचाई हो गई है; नई फसलों ने देश के उत्पादन और व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया है; देश में कृषि और औद्योगिक अर्थव्यवस्थाएँ अब एक-दूसरे पर शक्तिशाली प्रभाव डालती हैं; ग्रामीण ऋणग्रस्तता और गाँव के साहूकारों की शोषणकारी प्रथाओं की समस्याएँ बहुत कम हो गई हैं, और अंत में ग्रामीण इलाकों में पहले से ही जीवन स्तर को ऊपर उठाने की इच्छा और जागृति है।

4.2 भारतीय कृषि में फसल प्रवृत्तियाँ

भारत में कई तरह की फसलें उगाई जाती हैं। इन फसलों के अंतर्गत बोया गया शुद्ध क्षेत्रफल 142.3 मिलियन हेक्टेयर है। यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 46 प्रतिशत से अधिक है।

फसल पैटर्न से तात्पर्य देश में उगाई जाने वाली विभिन्न फसलों के बीच खेती की गई भूमि के वितरण से है। फसल पैटर्न से कृषि कार्यों की प्रकृति का पता चलता है। उदाहरण के लिए, खाद्य फसलों जैसे नकदी फसलों का महत्व। फसल पैटर्न कई कारकों से प्रभावित होता है जिन्हें मोटे तौर पर दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **भौतिक कारक**: भौतिक कारकों में महत्वपूर्ण कारक मिट्टी की स्थिति, वर्षा की सीमा और जलवायु का प्रकार हैं। देश की प्राकृतिक परिस्थितियाँ किसी देश के फसल पैटर्न को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। कुछ प्रकार की मिट्टी और जलवायु विशेष फसलों के लिए उपयुक्त होती हैं, और अन्य फसलों के लिए इतनी उपयुक्त नहीं होती हैं। परिणामस्वरूप केवल ऐसी विशेष फसलें ही उन क्षेत्रों में उगाई जाती हैं जो उनकी प्राकृतिक स्थितियों के अनुकूल होती हैं।
2. **आर्थिक कारक:** ये मूल्य, आय, भूमि जोत का आकार, कृषि संसाधनों की उपलब्धता आदि जैसी चीजों से संबंधित हैं। कृषि उत्पादों, इनपुट और निर्मित वस्तुओं की कीमतें सभी का किसान द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के प्रकार और विभिन्न फसलों के लिए वह कितनी भूमि समर्पित करेगा आदि पर प्रभाव पड़ता है।
3. **ऐतिहासिक कारक:** किसी भी समय किसी देश का फसल पैटर्न इतिहास द्वारा दिया जाता है। भूमि पर मनुष्य का प्रारंभिक निपटान और समय के साथ जनसंख्या की आवश्यकताओं और क्षमता के विकास ने उगाई जाने वाली फसलों के प्रकार और विभिन्न फसलों के लिए निर्धारित भूमि को नियंत्रित किया है।
4. **सामाजिक कारक:** इसमें जनसंख्या का घनत्व, रीति-रिवाज, परंपराएँ, भौतिक चीज़ों के प्रति दृष्टिकोण, बदलाव की इच्छा और क्षमता आदि जैसे कारक शामिल हैं, जो उगाई जाने वाली फसलों के प्रकार और विभिन्न फसलों के लिए समर्पित क्षेत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारत में किसान परंपरा से बंधा हुआ और भाग्यवादी दृष्टिकोण वाला था।
5. **सरकारी नीतियाँ:** सरकार की नीतियाँ फसल पैटर्न को बहुत महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करती हैं। विभिन्न फसलों को दी जाने वाली प्राथमिकताओं, निर्यात, करों, ऋण की आपूर्ति, पिछड़े क्षेत्रों के विकास आदि से संबंधित नीतियां फसलों की प्रकृति और उनके अधीन क्षेत्र का निर्धारण करती हैं।

4.3 रुझान और मूल्यांकन कृषि विकास में कुछ स्वस्थ विशेषताएं देखी गई हैं। दुर्भाग्य से, हालांकि, कुछ बदसूरत निशान भी रहे हैं। कुल मिलाकर, शुद्ध परिणाम बहुत संतोषजनक नहीं रहा है। सकारात्मक और नकारात्मक बिंदुओं पर चर्चा इस प्रकार की गई है:

1. **सकारात्मक बिंदु:** कृषि उत्पादन में तेजी आई है। 1951-52 में योजना की शुरुआत के बाद से उत्पादन 2.7 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर से बढ़ा है। यह वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि से कुछ अधिक है। हालाँकि, यह स्वतंत्रता से पहले 45 वर्षों (1900-1 से 1945-56) के दौरान 0.3 प्रतिशत की स्वतंत्रता-पूर्व वृद्धि दर से बहुत अधिक है। इस प्रकार

विकास दर काफी बड़ी है, हालांकि बहुत अधिक नहीं है। उत्पादन स्तर में भी काफी वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादन में अब अस्थिरता थोड़ी कम हुई है। उत्पादन की तकनीक में सुधार के कारण उत्पादकता में वृद्धि हुई है। उच्च उपज वाली फसलों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि के कारण कृषि का आधुनिकीकरण हुआ है।

2. **नकारात्मक बिंदु:** हालांकि, कई अस्वास्थ्यकर विशेषताएं हैं जिन्होंने कृषि परिदृश्य को खराब कर दिया है। विकास दर धीमी और अस्थिर रही है। 2.7 प्रतिशत की विकास दर गेहूं जैसी कुछ फसलों में बड़ी वृद्धि के कारण है। इसके बिना समग्र विकास दर बहुत कम है। मौसम के प्रभाव का कमजोर होना नगण्य रहा है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि सबसे महत्वपूर्ण फसलों यानी खाद्यान्न फसलों के संबंध में उत्पादन में साल-दर-साल बहुत कम कमी आई है। कृषि की उत्पादन लागत काफी अधिक रही है। उन्नत देशों की कृषि लागतों की तुलना में, हमारी लागत वास्तव में अधिक है। अंत में, फसलों, क्षेत्रों, राज्यों और वर्गों के संबंध में कृषि विकास बहुत असमान और असमान रहा है। कुछ फसलों, खास तौर पर खाद्यान्न समूह के मामले में, विकास दर में व्यापक अंतर रहा है।

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि निस्संदेह, कृषि के उत्पादन प्रोफाइल में लाभ हुआ है। लेकिन प्रत्येक प्रगति बहुत कम है, इसलिए कुल प्रभाव बहुत अधिक महत्व नहीं रखता है। दूसरी ओर, नकारात्मक विशेषताएं बहुत स्पष्ट हैं, उत्पादन की वृद्धि दर कम, अस्थिर और फसलों, क्षेत्रों और वर्गों के बीच असमान रूप से वितरित की गई है। इसलिए, कुल मिलाकर, असंतोषजनक रुझान स्वस्थ विकास को ढक देते हैं।

4.4 भूमि की उत्पादकता में रुझान

कृषि उत्पादन की कम वृद्धि और तेजी से बढ़ती आबादी, उद्योगों और निर्यात के विस्तार की बड़ी जरूरतों को देखते हुए, फसल उत्पादन बढ़ाने पर बहुत जोर दिया जाना चाहिए। निम्नलिखित बिंदुओं पर चर्चा की गई है:

1. **गहन खेती के लिए बड़ा दायरा:** उत्पादन बढ़ाने के दो तरीके हैं। पहला है खेती के तहत क्षेत्रों का विस्तार करना। दूसरा है भूमि पर अधिक गहन खेती करना। दोनों में से, पहले वाले का दायरा बहुत सीमित है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान शुद्ध बोए गए क्षेत्र 142 मिलियन हेक्टेयर में कुछ वृद्धि बंजर भूमि के सुधार, रेगिस्तान के नीचे की भूमि की वसूली आदि के माध्यम से की जा सकती है, लेकिन परिणामी वृद्धि बहुत अधिक नहीं हो सकती है। इसके अलावा, समय बीतने के साथ यह संसाधन किसी भी महत्व का नहीं रह जाएगा। दूसरी ओर, इमारतों, सड़कों, रेल-पटरियों आदि जैसे अन्य उद्देश्यों के लिए भूमि की मांग में वृद्धि होगी। ऐसी परिस्थितियों में एकमात्र तरीका गहन खेती है।
2. **थोड़ा सुधार:** इसमें कोई संदेह नहीं है कि भूमि की उत्पादकता में कुछ सुधार हुआ है। लेकिन यह क्षमता को देखते हुए बहुत कम है और यह फसलों और क्षेत्रों के बीच

असमान रूप से वितरित है। हरित क्रांति के बाद भूमि की उपज में पहले की तुलना में अधिक वृद्धि कृषि उत्पादन की उच्च वृद्धि को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण महत्व रखती है। लेकिन इसके लिए, 2.7 प्रतिशत की प्राप्त दर पर कृषि विकास लगभग असंभव होता।

3. **असंतोषजनक रुझान:** हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि भूमि की उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्ति है, लेकिन यह सुधार बहुत छोटा और सीमित है। परिणामस्वरूप, इस क्षेत्र में प्रदर्शन संतोषजनक नहीं है। सबसे पहले, प्रति हेक्टेयर उपज, हालांकि पहले की तुलना में अधिक है, अन्य जगहों की तुलना में बहुत कम बनी हुई है। यह उन फसलों के संबंध में भी है जिन्हें नई तकनीक से सबसे अधिक लाभ हुआ है।
4. **उपचारात्मक उपाय:** जैसा कि पहले जोर दिया गया है, भूमि की उत्पादकता में वृद्धि बहुत जरूरी है, क्योंकि व्यापक खेती के लिए अधिक भूमि लेने की संभावना लगभग शून्य है। भूमि के उचित प्रबंधन की आवश्यकता है। इसमें मिट्टी के पोषक तत्वों के साथ खराब हो चुकी भूमि को उसकी सामान्य स्थिति में वापस लाना, मिट्टी तैयार करना, बुवाई, पौधों की आबादी आदि के संदर्भ में भूमि पर अधिक वैज्ञानिक तरीके से खेती करना, बहुफसलीय खेती में वृद्धि और फसल पैटर्न में बदलाव करना शामिल है।

4.5 सारांश

देश का भाग्य बहुत हद तक कृषि उत्पादन की स्थिति से जुड़ा हुआ है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह लोगों के जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे खाद्य आपूर्ति, कच्चे माल, कीमतें, निर्यात, गैर-कृषि वस्तुओं के लिए बाजार और सबसे महत्वपूर्ण रूप से भारतीयों के एक बड़े हिस्से की आजीविका को काफी हद तक प्रभावित करता है। हमने इस मॉड्यूल में कृषि उत्पादन और उत्पादकता के रुझानों पर चर्चा की है। बेहतर इनपुट पैकेज के इस्तेमाल से उत्पादन बढ़ाने की व्यापक संभावना का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि जो हासिल किया जा सकता है और जो उन्नत देशों में हासिल किया गया है, उसके बीच का अंतर क्या है। उदाहरण के लिए, गेहूं में अभी भी प्रति हेक्टेयर उपज को तीन गुना बढ़ाने की संभावना है। चावल में, आधुनिक उपकरणों और उच्च किस्म के बीजों को लागू करके उपज को दोगुना किया जा सकता है

4.6 शब्दावली

1. हरित क्रांति (Green Revolution): 1960 के दशक में भारत में शुरू किया गया एक प्रमुख कृषि सुधार कार्यक्रम, जिसने उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, और सिंचाई तकनीकों के उपयोग से फसलों की पैदावार में महत्वपूर्ण वृद्धि की।
2. कृषि ऋण (Agricultural Credit): किसानों को उनकी कृषि गतिविधियों के लिए बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा प्रदान किया गया ऋण, जिससे वे बीज, खाद, उपकरण आदि खरीद सकें और उत्पादन बढ़ा सकें।

3. कृषि विपणन (Agricultural Marketing): कृषि उत्पादों के उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया, जिसमें उत्पादों का संग्रह, ग्रेडिंग, भंडारण, परिवहन, और बिक्री शामिल है।
4. कृषि अवसंरचना (Agricultural Infrastructure): कृषि क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक भौतिक और संगठनात्मक ढांचा, जैसे सिंचाई सुविधाएँ, भंडारण गोदाम, सड़कों का निर्माण आदि।

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

"कृषि विकास और संसाधन संरक्षण" - राजेंद्र प्रसाद द्वारा लिखित, यह पुस्तक कृषि क्षेत्र के विकास और संसाधन संरक्षण के महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करती है।

- **बोध प्रश्न**

1. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के मुख्य लाभ क्या हैं?
2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि का क्या योगदान है?
3. जैविक खेती और पारंपरिक खेती में क्या अंतर है?

खंड -01भारत की आर्थिक नीति एवं भारतीय कृषि

इकाई 05 भू धारण प्रणाली एवं भूमि सुधार

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 भू धारण प्रणाली एवं भूमि सुधार
5.3 स्वतंत्रता-पूर्व अवधि में भूमि सुधार
5.4 स्वतंत्रता-पश्चात अवधि में भूमि सुधार
5.5 भूमि सुधार का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:
5.6 चुनौतियाँ और वर्तमान स्थिति
5.7 भूमि सुधार के उद्देश्य
5.8 भूमि सुधार के चरण
5.8.1 संवैधानिक प्रावधान
5.8.2 विफलताएं
5.8.3 भूमि सुधारों की विफलता के कारण
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 कुछ उपयोगी पुस्तके

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होंगे:

- भूमि सुधार की प्रक्रिया में शामिल सामान्य मुद्दों का वर्णन और व्याख्या करना;
- भूमि सुधार के विभिन्न घटकों और विशेषताओं को गिनाना; और
- उन समस्याओं की पहचान करना जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

5.1प्रस्तावना

स्वतंत्रता के बाद से भूमि सुधार नीति के उद्देश्य इस प्रकार रहे हैं:

- समतावादी सामाजिक संरचना प्राप्त करने के लिए कृषि संबंधों का पुनर्गठन,
- भूमि संबंधों में शोषण को समाप्त करना,
- जोतने वाले को भूमि के सदियों पुराने लक्ष्य को साकार करना,
- कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, और
- समाज में समानता लाना।

भारत में प्रत्येक राज्य के पास भूमि सुधार के अपने कानून और कार्यक्रम हैं। इस इकाई के दायरे और स्थान को देखते हुए, इन विविधताओं के विवरण में जाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। इस इकाई का उद्देश्य भारत में भूमि सुधारों के संबंध में विकासात्मक परिवर्तनों की संक्षिप्त समीक्षा करना है। इसमें भूमि सुधारों के अर्थ, जिस ऐतिहासिक संदर्भ में उन्हें पेश

किया गया, हमारे द्वारा अपनाए गए उपायों और अंत में नए विकासों पर चर्चा की गई है। जब आप इस इकाई में भूमि सुधारों के बारे में पढ़ेंगे, तो आप इस खंड की अगली इकाई में हरित क्रांति के बारे में पढ़ेंगे। एक साथ लिया जाए, तो वे आपको भारत में ग्रामीण विकास का सामना करने वाले कृषि मुद्दों की एक उचित समझ देते हैं।

5.2 भू धारण प्रणाली एवं भूमि सुधार : एक ऐसी अवधारणा है जो देश में ब्रिटिश शासन के समय से ही प्रचलित रही है। आमतौर पर, भूमि सुधार का तात्पर्य अमीर लोगों से गरीबों तक भूमि के वितरण से है। भूमि सुधार कई प्रकार के हैं, जिनमें भूमि स्वामित्व का संरक्षण, संचालन, विरासत, पट्टे और बिक्री शामिल हैं। भारत में भूमि सुधारों के उद्देश्य में ग्रामीण आबादी की स्थिति का उन्नयन, मिट्टी जोतने वालों की सुरक्षा करना आदि शामिल है। भारत में भूमि सुधारों के इतिहास को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है, जो स्वतंत्रता-पूर्व अवधि और स्वतंत्रता-पश्चात अवधि हैं। भूमि सुधार भारत में एक महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया रही है, जिसका उद्देश्य कृषि क्षेत्र में सुधार लाना और भूमि के अधिक समान वितरण को सुनिश्चित करना है। ब्रिटिश शासन के दौरान भूमि धारण प्रणाली अत्यधिक असमान और शोषणकारी थी, जिसमें अधिकांश भूमि का स्वामित्व जमींदारों, महाजनों, या धनी वर्ग के हाथों में था, जबकि गरीब किसान केवल काश्तकार या बटाईदार के रूप में कार्य करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि किसानों को अपनी उपज का एक बड़ा हिस्सा जमींदारों को देना पड़ता था, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर रही।

5.3स्वतंत्रता-पूर्व अवधि में भूमि सुधार: ब्रिटिश शासन के समय भारत में तीन प्रमुख भूमि राजस्व प्रणालियाँ प्रचलित थीं: जमींदारी, रैयतवाड़ी, और महालवाड़ी। जमींदारी प्रणाली में जमींदारों के पास भूमि का स्वामित्व होता था और वे किसानों से लगान वसूलते थे। रैयतवाड़ी प्रणाली में किसान सीधे सरकार को लगान देते थे, और महालवाड़ी प्रणाली में सामूहिक गाँव समुदाय द्वारा लगान वसूली की जाती थी। इस व्यवस्था में किसानों की स्थिति दयनीय थी, और कृषि उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा कर के रूप में चला जाता था, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थायित्व की कमी थी।

5.4स्वतंत्रता-पश्चात अवधि में भूमि सुधार: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय सरकार ने भूमि सुधार को एक प्रमुख एजेंडा बनाया। भूमि सुधार के प्रमुख उद्देश्य थे:

1. **जमींदारी उन्मूलन**: जमींदारी प्रणाली को समाप्त करने के लिए कानून बनाए गए, ताकि किसानों को भूमि का स्वामित्व मिल सके।
2. **सीलिंग कानून**: भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई, जिससे बड़े भूस्वामियों की भूमि को सीमित किया गया और अतिरिक्त भूमि का वितरण गरीब किसानों में किया गया।
3. **कृषक अधिकारों की सुरक्षा**: बटाईदारों और काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून बनाए गए, जिससे उनकी आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

4. **कृषि उत्पादन में वृद्धि**: भूमि सुधारों का उद्देश्य किसानों को उनकी भूमि पर स्वामित्व देकर कृषि उत्पादन में वृद्धि करना भी था।

5.5भूमि सुधार का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव: भूमि सुधारों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। सबसे पहले, भूमि का अधिक समान वितरण हुआ, जिससे गरीब किसानों को भी भूमि का स्वामित्व मिला और उनकी जीवनशैली में सुधार हुआ। इसके अलावा, कृषि उत्पादन में भी वृद्धि हुई क्योंकि किसान अब अपनी भूमि पर मेहनत करने के लिए प्रेरित हुए। हालांकि, कई राज्यों में भूमि सुधारों का प्रभाव असमान रहा और भूस्वामी वर्ग ने कानूनों के बावजूद अपने स्वामित्व को बनाए रखने के तरीके खोजे।

5.6चुनौतियाँ और वर्तमान स्थिति: हालांकि भूमि सुधारों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कुछ सुधार किए हैं, लेकिन अब भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। कई जगहों पर भूमि का असमान वितरण जारी है और किसानों की स्थिति दयनीय है। इसके अतिरिक्त, भू-सर्वेक्षण और भूमि रिकॉर्ड के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया धीमी रही है, जिससे कई विवाद और समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वर्तमान में, भूमि सुधार के साथ-साथ कृषि सुधारों की भी आवश्यकता है, ताकि किसानों की आय में वृद्धि हो सके और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थायित्व आ सके। भूमि सुधार भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसने ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, इन सुधारों के पूर्ण प्रभाव को प्राप्त करने के लिए और अधिक नीतिगत हस्तक्षेप और प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमि सुधारों का स्थायी प्रभाव तभी देखा जा सकेगा जब इन्हें व्यापक और समावेशी दृष्टिकोण से लागू किया जाएगा।

5.7 भूमि सुधार के उद्देश्य भारत में भूमि सुधारों के उद्देश्य सामाजिक न्याय और आर्थिक सुधार के व्यापक दृष्टिकोण पर आधारित थे। ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. जमींदारी उन्मूलन: लक्ष्य: किसानों को जमींदारों के शोषण से मुक्त करना और उन्हें भूमि का स्वामित्व प्रदान करना। **उद्देश्य:** जमींदारी व्यवस्था को समाप्त कर किसानों को उनकी भूमि का मालिकाना हक देना ताकि वे सीधे कृषि उत्पादन में लाभान्वित हो सकें।

2. कृषक अधिकारों की सुरक्षा: लक्ष्य: काश्तकारों और बटाईदारों के अधिकारों की रक्षा करना। **उद्देश्य:** किसानों को भूमि से बेदखल होने से रोकना, उनकी उपज का अधिक हिस्सा उनके पास रखना और उन्हें बेहतर जीवन स्तर प्रदान करना।

3. भूमि का पुनर्वितरण:लक्ष्य: भूमि का अधिक समान वितरण करना।**उद्देश्य:** बड़े भूस्वामियों से अतिरिक्त भूमि का अधिग्रहण कर उसे भूमिहीन और गरीब किसानों में वितरित करना, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके।

4. भूमि की उत्पादकता में वृद्धि:लक्ष्य: कृषि भूमि का बेहतर उपयोग सुनिश्चित करना। **उद्देश्य:** भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन को रोकना और कृषि भूमि का समेकन (consolidation) करना, जिससे कृषि उत्पादन बढ़े और किसानों की आय में वृद्धि हो।

5. गरीबी उन्मूलन और सामाजिक समानता: लक्ष्य: ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी को कम करना और सामाजिक असमानता को समाप्त करना। **उद्देश्य:** भूमिहीन और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को भूमि का अधिकार प्रदान कर उनकी गरीबी को कम करना और सामाजिक स्थायित्व को बढ़ावा देना।

6. कृषि श्रमिकों की स्थिति में सुधार: लक्ष्य: कृषि श्रमिकों के जीवन स्तर को सुधारना। **उद्देश्य:** भूमि सुधारों के माध्यम से कृषि श्रमिकों को भूमि का स्वामित्व देकर उन्हें स्थायी आजीविका का साधन प्रदान करना और उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना।

7. कृषि भूमि का एकत्रीकरण (Consolidation of Holdings): लक्ष्य: छोटे और बिखरे हुए भूमि टुकड़ों का एकत्रीकरण। **उद्देश्य:** भूमि का एकत्रीकरण कर कृषि कार्यों को अधिक कुशल और लाभकारी बनाना, जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो।

8. स्थायी कृषि व्यवस्था की स्थापना:

लक्ष्य: एक स्थायी और टिकाऊ कृषि प्रणाली का विकास। **उद्देश्य:** किसानों को उनके भूमि अधिकार प्रदान कर कृषि में निवेश को प्रोत्साहित करना और एक स्थायी कृषि व्यवस्था की स्थापना करना। भूमि सुधारों का समग्र उद्देश्य एक ऐसी कृषि व्यवस्था का निर्माण करना था जो किसानों के आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित करे, और साथ ही, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थायित्व और समृद्धि लाने में सहायक हो।

5.8 भूमि सुधार के चरण

स्वतंत्रता के पश्चात भूमि सुधार

(प्रथम चरण)

- ज़मींदारी, रैयतवाड़ी या महालवाड़ी को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया।
- भूदान (विनोबा भावे) और ग्रामदान आंदोलन शुरू किया गया।
- जमींदारी उन्मूलन भूमि सुधारों का एकमात्र सफल पहलू था हालांकि सफलता औपचारिक है क्योंकि अधिकांश
- जमींदारों को भारी मुआवजा मिला और वे स्वयं किसान बन गए तथा चावल मिलों जैसे ग्रामीण उद्योगों की स्थापना में पूंजी का निवेश किया।
- किराए के नियमन, पट्टेदारी की सुरक्षा, स्वामित्व अधिकार (जोतने वालों के लिए भूमि की अवधारणा) जैसे कदमों से काश्तकारी सुधार। यह अपेक्षाकृत सफल रहा। सबसे सफल प्रयास केरल में और पश्चिम बंगाल में ऑपरेशन बर्गा रहा। इससे मध्यवर्ती जाति को लाभ हुआ।
- हदबंदी कानून द्वारा भूमिहीन गरीब जनता के बीच भूमि के पुनर्वितरण द्वारा कृषि का पुनर्गठन। हालांकि यह भूमि वितरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण था, लेकिन यह सबसे कमजोर पहलुओं में से एक रहा। खामियों वाले कानून अस्तित्व में आए। लोगों ने संयुक्त परिवारों को विभाजित करके अपनी भूमि की रक्षा की, बेनामी हस्तांतरण किया

और यहां तक कि अपनी भूमि की रक्षा के लिए अपनी पत्नियों को औपचारिक तलाक भी दिया। बड़े किसान हदबंदी कानूनों से बचने के लिए ही सहकारी खेती का सहारा लेते थे।

- भूमि चकबंदी केवल पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमित क्षेत्रों में की गई थी।

भूमि सुधार (द्वितीय चरण)

- राष्ट्रीय भूमि रिकॉर्ड प्रबंधन कार्यक्रम 2008 में शुरू किया गया था।
- नीति आयोग ने मॉडल लैंड लीजिंग अधिनियम, 2016 प्रस्तुत किया।
- मॉडल कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग अधिनियम भी जारी किया गया है।
- किसानों, काश्तकारों, बंटाईदारों को सभी प्रकार के शोषण से बचाने के लिए जमींदारों, भूस्वामियों, कृषि व्यापारियों जैसे बिचौलियों का उन्मूलन।
- भूमि की हदबंदी सुनिश्चित करना और अधिशेष भूमि को छोटे तथा सीमांत किसानों के बीच वितरित करना।
- किराए की भूमि पर किरायेदारों के अधिकारों की रक्षा के लिए किरायेदारी का बंदोबस्त और विनियमन।
- कुशल प्रबंधन के लिए भूमि जोत का एकीकरण।
- छोटे और खंडित भू-स्वामियों के सामने आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए सहकारी खेती को बढ़ावा देना।
- कृषि की उत्पादकता बढ़ाने और देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- एक समतावादी समाज सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक विकास को बढ़ावा देना और सामाजिक असमानता को कम करना। (डी.पी.एस.पी.; अनुच्छेद-38)

5.8.1 संवैधानिक प्रावधान:निर्देशक सिद्धांत के अनुच्छेद 39 (b और c) के अनुसार, धन और आर्थिक संसाधनों की संकेंद्रितता का निरीक्षण करना भारतीय राज्यों का संवैधानिक दायित्व है।44वें संवैधानिक अधिनियम ने संपत्ति के अधिकार को निरस्त कर दिया है।पहले संशोधन अधिनियम द्वारा पेश की गई 9वीं अनुसूची में बड़ी संख्या में भूमि सुधार कानून शामिल हैं।

5.8.2 भूमि सुधारों के सकारात्मक परिणाम:भूमि सुधारों ने ब्रिटिश काल में प्रचलित भूधृति प्रणाली को समाप्त कर दिया।इसने अधिशेष भूमि को भूमिहीनों और समाज के कमजोर वर्गों के बीच वितरित करने में मदद की।इसने काश्तकारों को भूधृति की सुरक्षा प्रदान की और कुछ मामलों में स्वामित्व अधिकार भी प्रदान किए।निचली जातियां अपने अधिकारों के बारे में अधिक संगठित और मुखर हो गई हैं। इसलिए, जाति की कठोरता में कमी आई।इसने कृषि की उत्पादकता को बढ़ाया और देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद की।इसने कृषि अर्थव्यवस्था, ग्रामीण सामाजिक संरचना और ग्रामीण शक्ति संरचना में मूलभूत परिवर्तन लाया और भारत को एक समतावादी समाज की ओर अग्रसर किया।उच्च वर्ग के प्रभुत्व को कम किया और भारतीय राजनीति के लोकतंत्रीकरण को बढ़ाया।

5.8.3 विफलताएं:

2011-2012 की कृषि जनगणना, 2011 की सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना और निम्न आंकड़ें भारत में भूमि सुधारों की विफलता को स्पष्ट रूप से दर्शातें हैं।4.9% से अधिक किसानों का भारत के 32% कृषि भूमि पर नियंत्रण नहीं है।भारत में एक "बड़े" किसान के पास सीमांत किसान की तुलना में 45 गुना अधिक भूमि है।40 लाख लोग या 56.4 फीसदी ग्रामीण परिवार के पास कोई जमीन नहीं है।जमींदारों से अधिग्रहण के लिए चिह्नित भूमि का केवल 12.9% (गुजरात के क्षेत्रफल के बराबर) दिसंबर 2015 तक अधिग्रहण किया गया था।दिसंबर 2015 तक 57.8 लाख गरीब किसानों को 50 लाख एकड़ जमीन (हरियाणा के क्षेत्रफल का आधा) दी गई।काश्तकारी अधिनियम, अनुबंध कृषि अधिनियम, सहकारी खेती विभिन्न राज्यों में बहुत सीमित रूप से लागू है।

5.8.4 भूमि सुधारों की विफलता के कारण:भारतीय संविधान की अनुसूची 7 के तहत राज्य सूची में भूमि का उल्लेख है। इसलिए, अलग-अलग राज्यों के अलग-अलग नियम और नीतियां हैं। केंद्र सरकार नीति बना सकती है, फंड जारी कर सकती है लेकिन कार्यान्वयन राज्य सरकार के हाथ में है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में भी विभिन्न राज्यों में भारी असमानता की ओर इशारा किया गया है।अन्य अर्थव्यवस्थाओं के विपरीत जहां भूमि को केवल आय अर्जन के लिए एक संपत्ति के रूप में देखा जाता है, भारत में इसे सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है।स्थायी बंदोबस्त क्षेत्रों और रियासतों में, भूमि रिकॉर्ड का अद्यतन नहीं किया गया था। इस पुराने भूमि अभिलेखों के कारण, भूमि विवाद होते थे इसलिए अदालती मामले होते थे और परिणाम यह हुआ कि भूमि सुधार नहीं हुआ।पूर्वोत्तर क्षेत्र में भूमि अभिलेखों और भूमि प्रशासन की प्रणाली अलग थी और पूर्वोत्तर क्षेत्र में झूम खेती के कारण स्पष्ट भूमि रिकॉर्ड नहीं थे।देश में संगठित किसान आंदोलन का अभाव।भू-राजस्व प्रशासन गैर-योजनागत व्यय के अंतर्गत आता है। इसलिए अधिक बजटीय आवंटन नहीं मिलता है।नौकरशाही की उदासीनता भारत में भूमि सुधारों की विफलता का एक अन्य कारण थी क्योंकि अधिकांश अधिकारी शहरों में रहते थे और शायद ही कभी गाँव जाते थे और स्थान का सत्यापन किए बिना रिपोर्ट प्रस्तुत करते थे। इसलिए भू-माफिया और धनी किसान रिश्वत देकर अपना काम करवाते हैं।योजना आयोग द्वारा पी.एस. अप्पू की अध्यक्षता में कृषि संबंधों पर गठित कार्यबल द्वारा अवलोकित किए गए कुछ अन्य कारण।अधिकांश राजनीतिक दलों के एजेंडे से भूमि सुधार व्यावहारिक रूप से गायब हो गए हैं।पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधारों के लिए केवल जुबानी बातें कीं गईं लेकिन पर्याप्त धन आवंटित नहीं किया गया।

5.9 सारांश:भूमि अभिलेखों का आधुनिकीकरण/कम्प्यूटरीकरण और DILRMP के तहत प्रामाणिक आंकड़ों के लिए आधार के साथ भूमि अभिलेखों को अक्षरश: जोड़ना। मॉडल कृषि भूमि पट्टा अधिनियम, 2016 को अपनाया जाना चाहिए जो किरायेदारों को किरायेदारी की समाप्ति के समय निवेश के अप्रयुक्त मूल्य को वापस पाने का अधिकार देकर भूमि सुधार में निवेश करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करता है।कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग- ड्राफ्ट मॉडल कॉन्ट्रैक्ट

फार्मिंग अधिनियम, 2018 को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।कृषि की उत्पादकता में सुधार के लिए किसान उत्पादक संगठनों और सहकारी खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।बिचौलियों से बचने के लिए प्रधानमंत्री जन धन योजना, किसान क्रेडिट कार्ड आदि योजनाओं के माध्यम से छोटे और सीमांत किसानों के लिए ऋण के औपचारिक स्रोतों तक पहुंच बढ़ाना।बड़े पैमाने की मितव्ययिता का लाभ उठाने के लिए भूमि जोत का एकीकरण।भूमि सुधारों के लिए पश्चिम बंगाल और केरल मॉडल को अन्य सभी राज्यों द्वारा अपनाया जाना चाहिए।

5.10 शब्दावली

1. संपोषणीयता (Sustainability): प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की वह प्रक्रिया जो वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी उन्हें संरक्षित रखती है।
2. कृषि उत्पादन (Agricultural Production): फसल, पशुपालन, मछलीपालन आदि के माध्यम से उत्पन्न की गई कुल उत्पादन मात्रा, जो देश की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक विकास में योगदान करती है।
3. खाद्य सुरक्षा (Food Security): देश की जनता के लिए पर्याप्त, सुरक्षित, और पोषक भोजन की उपलब्धता और पहुँच सुनिश्चित करने की प्रक्रिया, जिससे भूख और कुपोषण की समस्याओं का समाधान हो।
4. भूमि सुधार (Land Reforms): कृषि भूमि के वितरण, स्वामित्व, और उपयोग से संबंधित सरकारी नीतियाँ और प्रक्रियाएँ, जिनका उद्देश्य भूमि संबंधी असमानताओं को कम करना और किसानों के अधिकारों को मजबूत करना है।

5.11 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "कृषि विकास और संसाधन संरक्षण" - राजेंद्र प्रसाद द्वारा लिखित, यह पुस्तक कृषि क्षेत्र के विकास और संसाधन संरक्षण के महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करती है।

➢ बोध प्रश्न

1. भारत में भूमि सुधारों की दिशा में किये गए प्रयास अत्यधिक धीमे रहे हैं। भारत में भूमि सुधारों की मंद प्रगति के कारणों की चर्चा कीजिये।
2. भारत में भूमि सुधार एवं उसके प्रमुख घटकों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
3. भूमि सुधारों की कमज़ोर प्रगति के कारणों को बताइये।

खंड -01भारत की आर्थिक नीति एवं भारतीय कृषि

इकाई 06 सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा
6.3 सामुदायिक विकास के प्रमुख सिद्धांत
6.4 भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का इतिहास सीडीपी
6.5 भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम
6.7 शब्दावली
6.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

6.0 उद्देश्य

हमने पिछली इकाइयों में ग्रामीण, आदिवासी और शहरी समुदायों में स्थित समुदायों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन्हें सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से संबोधित किया जा सकता है। इन कार्यक्रमों को एक निश्चित डिजाइन की आवश्यकता होती है जिसमें जवाबदेही के विचार शामिल हों। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- सामुदायिक विकास को परिभाषित और समझा पाएंगे;
- ग्रामीण, आदिवासी और शहरी क्षेत्रों में कुछ सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का वर्णन कर पाएंगे; जवाबदेही की अवधारणा और सामुदायिक विकास कार्य में इसके महत्व को समझ पाएंगे।

6.1 प्रस्तावना

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और जवाबदेही की यह इकाई इस बात की पूर्व समझ पर आधारित है कि समुदाय क्या हैं और सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में वे किस प्रकार स्थित हैं। उन्होंने हमें इन समुदायों के सामने आने वाले मुद्दों के बारे में भी कुछ जानकारी दी। इन मुद्दों को संबोधित करने के कई तरीके हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम चाहे सरकार द्वारा शुरू किए गए हों या गैर-सरकारी एजेंसियों द्वारा, समुदायों के मुद्दों और चिंताओं को संबोधित करने का प्रयास करते हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की अवधारणा सामुदायिक विकास के लिए हस्तक्षेपों पर ध्यान केंद्रित करती है जो लोगों पर केंद्रित और लोगों के नेतृत्व में हो, जो इन समुदायों के जीवन की स्थितियों को बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं। समुदाय के लिए क्या बेहतर है, इन पर कौन निर्णय लेता है, कार्यक्रमों को कौन लागू करता है, कार्यक्रमों की निगरानी या कार्यान्वयन के तरीके क्या हैं, फंडिंग और आवंटन के बारे में कौन निर्णय लेता है, कौन किसके प्रति जवाबदेह है, जैसे प्रश्न सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का

केंद्रीय फोकस बनाते हैं जो सामुदायिक विकास के लक्ष्यों तक पहुँचने में सफलता निर्धारित करते

6.2 सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा

सीडीपी की बहुमुखी प्रकृति को समझने के लिए सामुदायिक विकास की बुनियादी बातों को समझना महत्वपूर्ण है। सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जहां समुदाय के सदस्य सामूहिक कार्रवाई करने और सामान्य समस्याओं का समाधान निकालने के लिए एक साथ आते हैं। यह एक दीर्घकालिक प्रयास है जिसका उद्देश्य किसी समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय स्थितियों में सुधार करना है। सामुदायिक विकास काफी हद तक भागीदारी, सशक्तिकरण, क्षमता निर्माण और सामाजिक परिवर्तन पर निर्भर करता है। यह मूल रूप से इस सिद्धांत में विश्वास करता है कि समुदाय अपने मुद्दों को पहचानने और हल करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार, सामुदायिक विकास सहायता देने के बारे में नहीं है, बल्कि समुदाय को अपनी स्थितियों में सुधार करने में सक्षम बनाने के बारे में है।

6.3 सामुदायिक विकास के प्रमुख सिद्धांत

सामुदायिक विकास में सतत विकास, सशक्तिकरण, समावेशिता, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, सहभागी लोकतंत्र और समानता के सिद्धांत शामिल हैं। विशिष्ट समुदायों द्वारा संचालित इन सामुदायिक कार्यक्रमों का उद्देश्य समुदाय के सदस्यों पर अत्याचार करने वाली चुनौतियों और कमियों को दूर करना है। मुद्दों के चयन से लेकर क्रियान्वयन और निष्पादन तक, समुदाय के सदस्य एक साथ बैठकर निर्णय लेते हैं कि क्या कदम उठाए जाने हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सिद्धांत सामुदायिक विकास के सिद्धांतों को निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है:

सामुदायिक भागीदारी समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति विकास और निर्णय लेने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। सामुदायिक विकास इस सिद्धांत पर काम करता है कि सभी को समान जिम्मेदारी लेनी चाहिए और विकास परियोजनाओं में भाग लेना चाहिए। चाहे वह मूल्यांकन हो, भागीदारी हो, प्रावधान हो या निर्देश हो, सभी स्तरों के सदस्यों को अपना बहुमूल्य योगदान देना चाहिए।

स्वामित्व और भागीदारी प्रत्येक सदस्य को अपने काम के लिए पूरी जिम्मेदारी और जवाबदेही लेनी चाहिए। कर्मचारियों, स्वयंसेवकों और केंद्र के प्रतिभागियों को अंतिम लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए प्रभावी ढंग से सहयोग करना चाहिए।

सशक्तिकरण लोगों को उनकी ज़रूरतों और आकांक्षाओं को अधिक सूचित तरीके से पूरा करने के लिए सम्मान, बढ़ावा और प्रोत्साहित करने का कार्य। अन्य समुदाय के सदस्यों को सशक्त बनाने का मतलब है सम्मानजनक और गैर-निर्णयात्मक होना और एक ऐसा रिश्ता बनाना जहाँ अन्य समुदाय के सदस्य सहज और मूल्यवान महसूस करें। यदि समुदाय के सदस्यों को सशक्त बनाया जाता है, तो वे अपनी शक्तियों को साझा करते हैं और समाज की बेहतरी के लिए उनका उपयोग करते हैं।

समान पहुँच और अवसर सामुदायिक विकास का उद्देश्य सदस्यों द्वारा समान भागीदारी को बढ़ाना है। इससे सदस्यों को समान अवसर प्रदान करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता बढ़ जाती है कि प्रत्येक सदस्य लक्ष्यों के साथ संरेखित हो।

नेटवर्किंग सामुदायिक विकास परियोजनाओं का आधार उद्योगों के लोगों के साथ नेटवर्किंग और संबंधों को पोषित करने के विचार में निहित है। नेटवर्किंग अन्य लोगों और समूहों के साथ संबंध बनाने में मदद कर सकती है जो समान चुनौतियों का सामना कर रहे हों। यह विभिन्न समुदायों के लिए एक साथ काम करने और समाज में मौजूदा चुनौतियों के लिए प्रभावी समाधान खोजने का मार्ग प्रशस्त करने में मदद करता है। नेटवर्किंग ज्ञान के अंतर को पाटने में भी मदद कर सकती है क्योंकि समुदाय मौजूदा ज्ञान, अनुभव और संसाधनों को साझा करने के लिए एक साथ आते हैं।

पुनर्विचार पुनर्विचार का उद्देश्य वांछित परिणाम में परिवर्तन लाने के लिए स्थिति की फिर से समीक्षा या आकलन करना है। इसमें एक अलग दृष्टिकोण से स्थिति का पुनर्मूल्यांकन करना और ऐसे परिवर्तनों को लागू करना शामिल हो सकता है जो समुदाय के लिए फायदेमंद हो सकते हैं।

पक्षपात सामुदायिक पक्षपात का अर्थ है दूसरों को सहायता प्रदान करना और उन्हें सक्रिय नागरिक बनने में सक्षम बनाना। पक्षपात के माध्यम से, समुदाय अपने सामाजिक अधिकारों और मानवाधिकारों से अच्छी तरह वाकिफ होंगे। यह समुदाय के सदस्यों को शीर्ष-स्तरीय पेशेवरों से ध्यान आकर्षित करने और सार्वजनिक रूप से अपनी आवाज़ उठाने की अनुमति देगा।

सीखना सीखना एक आजीवन और कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है। ज्ञान की खोज और नए कौशल सीखना न केवल व्यक्तिगत उपयोग के लिए फायदेमंद है, बल्कि किसी व्यक्ति के पेशेवर जीवन को भी प्रभावित कर सकता है। सामुदायिक विकास नए कौशल सीखने और सक्रिय रूप से ज्ञान प्राप्त करने के सिद्धांतों पर काम करता है। जब समुदाय के सदस्य नया ज्ञान या कौशल प्राप्त करते हैं, तो वे अधिक प्रभावी अभियान और परिणाम लाने में सक्षम हो सकते हैं।

6.4भारत **में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का इतिहास** सीडीपी को पहली बार भारत में 1952 में पेश किया गया था। यह अन्य देशों में लागू किए जा रहे सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से प्रेरित था।सीडीपी के मुख्य उद्देश्य थे: ग्रामीण गरीबों के जीवन स्तर में सुधार, ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास को बढ़ावा देना, और ग्रामीण लोगों में समुदाय की भावना पैदा करें।सीडीपी ने बॉटम-अप दृष्टिकोण का उपयोग किया। इसमें कार्यक्रम की योजना और कार्यान्वयन में ग्रामीण स्तर पर लोगों की भागीदारी शामिल थी।कार्यक्रम में स्थानीय संसाधनों के उपयोग और स्वयं सहायता की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया। सीडीपी को तीन चरणों में लागू किया गया था: संभावित गांवों की पहचान, ग्राम पंचायतों (परिषदों) का गठन, और विकास परियोजनाओं का कार्यान्वयन.सीडीपी को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जैसे वित्तीय

संसाधनों की कमी, प्रशिक्षित कर्मियों की कमी और स्थानीय अभिजात वर्ग का प्रतिरोध।फिर भी, कार्यक्रम ने कुछ सफलताएँ भी हासिल कीं, जैसे सड़कों, स्कूलों और सिंचाई नहरों का निर्माण।सीडीपी को उसके मूल स्वरूप में बंद कर दिया गया है। इसके मूल सिद्धांतों का उपयोग आज भी भारत में कई ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में किया जा रहा है।

6.5 भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की अवधारणा को स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए एक बहुउद्देश्यीय परियोजना के रूप में पेश किया गया था। कार्यक्रम इस विचार पर आधारित था कि मानव संसाधनों के विकास और स्थानीय संसाधनों के उपयोग के माध्यम से प्रगति हासिल की जा सकती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम भारत में वर्ष 1952 में शुरू हुआ और इसे विश्व स्तर पर सबसे बड़े ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रमों में से एक माना जाता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण भारत के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को बदलना था और यह विकेंद्रीकृत योजना और लोकतांत्रिक स्थानीय स्वशासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास था।

6.6 शब्दावली

- **सामुदायिक विकास** (**Community development**)सामुदायिक विकास का सबसे अच्छा उपयोग एक प्रक्रिया या कुछ करने के तरीके को संदर्भित करने के लिए किया जाता है, जिसमें स्थानीय लोगों को उनके लिए महत्वपूर्ण सामान्य मुद्दों पर जुटाना, भागीदारी और शामिल करना शामिल होता है।
- **सामुदायिक कार्य** (**Community work)** सामुदायिक कार्य को अक्सर एक सामान्य शब्द के रूप में उपयोग किया जाता है और यह उन पहलों या गतिविधियों को संदर्भित करता है जो स्थानीय स्तर पर वितरित की जाती हैं, जिनमें समुदाय के सदस्य सक्रिय रूप से भागीदार के रूप में शामिल नहीं हो सकते हैं, बल्कि केवल सेवाओं के उपयोगकर्ता के रूप में शामिल हो सकते हैं।
- **सामाजिक न्याय** (**Social Justice)** लोगों को उनके मानवाधिकारों का दावा करने, उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं पर अधिक नियंत्रण रखने में सक्षम बनाना, जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं।
- **भागीदारी** (**Participation)** - लोगों द्वारा उन मुद्दों में लोकतांत्रिक भागीदारी की सुविधा प्रदान करना, जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं, पूर्ण नागरिकता, स्वायत्तता और साझा शक्ति, कौशल, ज्ञान और अनुभव के आधार पर।
- **समानता Equality** - व्यक्तियों के दृष्टिकोण और संस्थानों और समाज की प्रथाओं को चुनौती देना, जो लोगों के साथ भेदभाव करते हैं और उन्हें हाशिए पर रखते हैं।
- **सीखना Learning -** - कौशल, ज्ञान और विशेषज्ञता को पहचानना जो लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए कार्रवाई करके योगदान करते हैं और विकसित करते हैं।

- **सहयोग Co-operation** - विविध संस्कृतियों और योगदानों के पारस्परिक सम्मान के आधार पर कार्रवाई की पहचान करने और उसे लागू करने के लिए मिलकर काम करना।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. सिंह करतार (1999) भारत में ग्रामीण विकास सेज प्रकाशन
2. ए.आर. देसाई (2005) ग्रामीण भारत में परिवर्तन, दूसरा संस्करण लोकप्रिय प्रकाशन मुंबई

- बोध प्रश्न

1. सामुदायिक विकास क्या है इसे परिभाषित और स्पष्ट कर सकेंगें;
2. ग्रामीण, जनजातीय और शहरी क्षेत्रें में कुछ सामुदायिक विकास कार्य क्रमों का वर्णन कर

खंड -01भारत की आर्थिक नीति एवं भारतीय कृषि

इकाई 07 पंचायती राज व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 पंचायती राज व्यवस्था - पृष्ठभूमि, (Panchayati Raj System - Background)

7.3 पंचायती राज व्यवस्था का विकास, (Development of Panchayati Raj System)

7.4 पंचायती राज से सम्बंधित महत्वपूर्ण समितियाँ, (Committees related to Panchayati Raj)

7.5 अप्रभावी प्रदर्शन के कारण

7.6 समाधान, (Settlement):

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

7.0उद्देश्य: इस मॉड्यूल को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे:

- पंचायतों का अर्थ और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि;
- भारत में पंचायतों का उद्देश्य, संरचना और कार्य;
- पंचायतों में महिलाओं की वर्तमान स्थिति और भूमिका; और पंचायत राज संस्थाओं का मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य।

7.1 प्रस्तावना

'पंचायत' का शाब्दिक अर्थ है गांव (स्थानीय) समुदाय द्वारा चुने गए और स्वीकार किए गए पांच (पंच) बुद्धिमान और सम्मानित बुजुर्गों की सभा (आयत)। यह संस्कृत शब्द 'पंचेन' से लिया गया है जिसका अर्थ है पांच सदस्य या 'पंच' और 'आयतनम' का अर्थ है स्थान या कार्यालय। ये पांच सदस्य भारतीय पौराणिक कथाओं में पवित्र हैं क्योंकि उन्हें देवताओं के पांच प्रतिनिधि माना जाता है, जिन्हें संस्कृत में "पंचायतनी" कहा जाता है यानी गणपति, विष्णु, शंकर, देवी और सूर्य। ये पांच देवता मिलकर सर्वोच्च शक्ति का निर्माण करते हैं। इस प्रकार, पंच न्याय के महान देवता "परमेश्वर" का गठन करते हैं (डे, 1962. पृष्ठ 5) जो अचूक हैं। दूसरे शब्दों में, पंचायत एक ग्राम परिषद और/या स्थानीय-स्वशासन प्रणाली है, जो ग्रामीण भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के साधन के रूप में कार्य करती है। वर्तमान मॉड्यूल पंचायतों के इतिहास को दर्शाता है। यह भारत में पंचायत प्रणाली के उद्देश्य, संरचना और कार्यप्रणाली पर भी जोर देगा। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भूमिका भी इस मॉड्यूल का हिस्सा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें भारत में पंचायतों के कामकाज

के वर्तमान परिदृश्य और पंचायती राज संस्थाओं के कुछ मानवशास्त्रीय अध्ययनों को भी ध्यान में रखा जाएगा।

7.2 **पंचायती राज व्यवस्था - पृष्ठभूमि, (Panchayati Raj System - Background)** भारत में स्थानीय स्वशासन आजादी से पहले भी बहस का विषय रहा है। जहाँ गाँधी, गाँव के लिये प्रजातंत्र राज और द्वितीयक महत्वता का सिद्धांत चाहते थे, वहीं नेहरू और अंबेडकर एक मजबूत केंद्र के पक्षधर थे। मतभेदों के कारण, DPSP के तहत इसके गठन के समय संविधान में केवल पंचायती राज का उल्लेख किया गया था। हालांकि, कई विचार-विमर्श और बिलों के बाद, अंततः 1992 में 73वें और 74वें संशोधन अधिनियमों के माध्यम से, पंचायती राज और शहरी शासन को क्रमशः संवैधानिक दर्जा दिया गया।

पंचायती राज व्यवस्था पंचायती राज व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाता है तथा सत्ता तथा प्रशासनिक शक्तियों को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाता है ताकि विकास योजनाओं को राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में क्रियान्वित किया जा सके। पंचायती राज व्यवस्था 73वें संविधान संशोधन (73rd Amendment Act) के द्वारा बनाई गई है। स्थानीय स्तर पर शासन के रूप में एक विभाजन होता है।

7.3पंचायती राज व्यवस्था का विकास, (Development of Panchayati Raj System) भारत में पहली पंचायती राज व्यवस्था राजस्थान राज्य द्वारा 1959 में, नागौर जिले में और उसके बाद आंध्र प्रदेश द्वारा स्थापित की गई थी। तत्पश्चात अधिकांश राज्यों द्वारा इस प्रणाली को अपनाया गया। स्थानीय स्वशासन के बारे में मुख्य चिंता इसकी बनावट, शक्ति के विकास की मात्रा, वित्त आदि थे। इसके लिए एक विधि तैयार करने के लिए संबंधित केंद्रीय सरकारों द्वारा कई समितियों का गठन किया गया था।

7.4 पंचायती राज से सम्बंधित महत्वपूर्ण समितियाँ, (Committees related to Panchayati Raj)

1. बलवंत राय मेहता समिति (1957)
2. अशोक मेहता समिति (1977)
3. जी.वी.के. राव समिति (1985)
4. एल.एम. सिंघवी समिति (1986)
5. थुंगोन समिति
6. गाडगिल समिति

कई समितियों के बाद, राजीव गांधी सरकार ने 64वां संवैधानिक संशोधन बिल पेश किया, लेकिन इसे राज्यसभा में इस आधार पर अस्वीकार किया गया कि उसने संघीय व्यवस्था में केंद्रीयकरण को मजबूत करने की मांग की थी। हालांकि, नरसिम्हा राव सरकार ने सभी विवादास्पद पहलुओं को हटाने के लिए विधेयक को संशोधित किया और विधेयक पेश किया।

इसलिए 73वें और 74वें संशोधन अधिनियम दोनों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए पारित किया गया था।

- **73वां संशोधन अधिनियम 1992,(73rd Constitutional Amendment Act 1972)** 73वाँ संशोधन अधिनियम 1992 में पारित किया गया था और 24 अप्रैल 1993 को लागू हुआ। इस अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकारें आवश्यक कदम उठा सकती हैं जिससे ग्राम पंचायतों का औपचारिककरण हो सके और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में मदद मिल सके।
- **73वाँ संशोधन अधिनियम की मुख्य विशेषताएं |** Important Features of 73वां संशोध**न अधिनियम** इस अधिनियम ने भाग- IX को भारत के संविधान में "पंचायतों" के नाम से जोड़ा। इसमें अनुच्छेद 243 से 243 O तक के प्रावधान हैं। एक नई अनुसूची के अलावा, ग्यारहवीं अनुसूची को जोड़ा गया, जो 243G के साथ संबंधित है। इसमें पंचायतों के 29 कार्यात्मक विषय हैं। अधिनियम ने एक DPSP, संविधान के अनुच्छेद 40 को व्यावहारिक रूप दिया। इस अधिनियम में राज्यों द्वारा अपनाए जाने वाले कुछ अनिवार्य और कुछ स्वैच्छिक प्रावधान शामिल हैं। ग्राम सभा पंचायती राज व्यवस्था की नींव के रूप में कार्य करती है। निकाय में सभी व्यक्ति शामिल हैं जो संबंधित गांवों में निर्वाचक मंडल के रूप में पंजीकृत हैं। यह पूरे देश में एकरूपता लाने के लिए एक त्रिस्तरीय संरचना (गाँव, मध्यवर्ती और जिला स्तर) को अनिवार्य करता है। लेकिन 2 मिलियन से कम आबादी वाले राज्य को मध्यवर्ती स्तर पर गठन से छूट दी गई है। अधिनियम यह प्रावधान करता है कि तीनों स्तरों पर सभी सदस्य सीधे लोगों द्वारा चुने जाएंगे। ऊपरी दो स्तरों पर अध्यक्ष का चुनाव परोक्ष रूप से किया जाएगा और पंचायतों के संबंध में प्रावधान रखना राज्य विधानमंडल पर स्वैच्छिक अधिकार है। प्रत्येक पंचायत में SC और ST के लिए आबादी के अनुपात में पद आरक्षित हैं। यह तीनों स्तरों पर अध्यक्ष के कार्यालयों के आरक्षण के संबंध में स्वैच्छिक प्रावधान करने के लिए राज्य पर निर्भर है। इसके अलावा, अध्यक्ष पद के लिये और कार्यालय का एक तिहाई हिस्से से अधिक महिलाओं के लिए आरक्षित होगा। पंचायतें 5 साल की अवधि की होंगी और चुनाव मौजूदा कार्यकाल की समाप्ति से पहले किए जाएंगे। अधिनियम क्रमशः वित्त और चुनाव के संचालन के लिए राज्य वित्त आयोग और राज्य निर्वाचन आयोग का एक पद सृजित करता है। पंचायतों के खातों के ऑडिटिंग और तंत्र के तरीके राज्यों द्वारा तय किये जायेंगे। अधिनियम, राज्य विधान सभा को पंचायत के वित्त के बारे में कानून बनाने और कैसे और किन शर्तों पर वे कर लगा सकते हैं, एकत्र कर सकते हैं और उचित कर लगा सकते हैं, के लिए शक्ति प्रदान करता है। कई राज्यों और क्षेत्रों को इस कानून से छूट दी गई है। इसके अलावा अनुसूचित क्षेत्रों में पांचवीं अनुसूची के तहत, 1996 का PESA अधिनियम लागू किया

जाएगा। राष्ट्रपति निर्देश दे सकता है कि अधिनियम के प्रावधान केंद्र शासित प्रदेशों पर कैसे लागू होने चाहिए।

7.5 अप्रभावी प्रदर्शन के कारण: यद्यपि संवैधानिक दर्जा देने के बावजूद, यह कहा जाता है कि अधिनियम केवल ढ़ाचे को निर्मित कर सभी निर्णय राज्य पर छोड़ देता है। कई राज्यों ने निम्न स्तर के लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए पर्याप्त तंत्र नहीं लिया है। 3F (फंड, फंक्शंस और फंक्शनरीज) के हस्तांतरण में कमी हुई है। इसलिए वे जिम्मेदारियों का निर्वहन करने में असमर्थ हैं। यह आवश्यक है कि उनके पास काम करने के लिए पर्याप्त धन होना चाहिए, हालांकि, न तो उनके पास शुल्क लगाने की शक्ति है और न ही वित्त राज्यों या केंद्र से व्यवस्थापित है। यह देखा गया है कि अंकेक्षण तंत्र बहुत कमजोर है और पंचायतों में नेताओं के बीच भारी भ्रष्टाचार है। ग्राम सभा की कोई नियमित बैठक नहीं होती है और कई बार, आरक्षित क्षेत्रों की पंचायतों में भी उच्च जातियों का वर्चस्व होता है। देश में नौकरशाही को अपार शक्ति मिली है और आगे भी कई बार ग्राम पंचायतों को उनके अधीनस्थों के रूप में रखा गया है। यहां तक कि, अहंकारी प्रकृति और रंगभेद के कारण, नौकरशाहों द्वारा नेताओं को बहुत कम सम्मान प्रदान किया जाता है। कई बार, धन कुछ योजनाओं या नीतियों से बंधा होता है और पंचायतों को केवल एक कार्यकारी निकाय बना दिया जाता है। वे समस्याओं की जड़ो को जानने के बावजूद स्वयं निधि खर्च करने का निर्णय नहीं ले सकते। राज्य अधिनियम ग्राम सभा की शक्तियां नहीं रखते हैं। यहां तक कि उनके कामकाज की प्रक्रिया भी नहीं बताई गई है। ये नीतियों और योजनाओं का मूल्यांकन और अंकेक्षण करने और सरकार के तीनों स्तरों पर उनके निष्पादन के लिए एक शक्तिशाली निकाय हो सकते हैं। इंफ्रास्ट्रक्चर बहुत खराब स्थिति में है। उनके पास कार्यालय, कंप्यूटर और इंटरनेट कनेक्शन की कमी है। नियोजन, निगरानी आदि के लिए डेटाबेस कई मामलों में अनुपस्थित हैं। इसके अलावा, पंचायतों में इष्टतम मानव संसाधनों की कमी है। कई प्रतिनिधि अर्ध-साक्षर या निरक्षर हैं और उन्हें डिजिटल ज्ञान नहीं है। साथ ही, पाटी पंचायत के ऐसे मामले भी सामने आए हैं, जहाँ महिला के निर्वाचित होने पर भी पति के हाथ में शक्तियाँ होती हैं।

7.6 समाधान, (Settlement): राज्यों द्वारा पंचायतों को धन समर्पित करने के लिए उचित तंत्र तैयार किया जाना चाहिए। उन्हें अपना राजस्व उत्पन्न करने के लिए शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। यह जी.एस.टी. में तीसरे स्तर को शामिल करके या भूमि या स्थानीय गतिविधियों पर कर लगा कर हो सकता है। राज्य वित्त आयोग को सशक्त किया जाना चाहिए और इसे सरकारों को इस बारे में जवाबदेह बनाना चाहिए। पंचायतों के लिए उचित समान संवर्ग बनाया जाना चाहिए। उन्हें उनकी शक्तियों, भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के बारे में सिखाते हुए प्रतिनिधियों के लिए शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। पंचायतों की शक्तियों का उचित सीमांकन किया जाना चाहिए। ग्राम सभा को सशक्त किया जाना चाहिए और नियमित बैठकें आयोजित की जानी चाहिए। यह एक वीडियो रिकॉर्डिंग कैमरे के तहत होना चाहिए। सामाजिक अंकेक्षण तंत्र विकसित किया जाना चाहिए। कार्यालय भवन और

बुनियादी ढांचा निर्माण को मनरेगा से जोड़ा जाना चाहिए ताकि रोजगारों का भी निर्माण हो सके।

7.7सारांश

आज, पंचायती राज व्यवस्था ने एक सार्वभौमिक स्थान प्राप्त कर लिया है। भारत का संविधान पंचायतों को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में देखता है। पंचायती राज के पीछे मुख्य उद्देश्य यह है कि गाँव के लोग स्वयं शासन करने की ज़िम्मेदारी उठाएँ। अग्रणी ग्रामीण समाजशास्त्री ए.आर. देसाई ने पी.आर. व्यवस्था के उद्देश्यों को इस प्रकार बताया: 'पंचायती राज को एक वास्तविक लोकतांत्रिक राजनीतिक तंत्र के रूप में माना जाता है जो ग्रामीण भारत के कमज़ोर, गरीब वर्गों के विशाल बहुमत से जनता को सक्रिय राजनीतिक नियंत्रण में लाएगा।' इस योजना का पूरा विचार इस कहावत पर आधारित है कि 'ग्रामीण विकास ग्रामीण लोगों के लिए, ग्रामीण लोगों का और स्वयं ग्रामीण लोगों द्वारा है'। ग्रामीण विकास की यह योजना ग्रामीण लोगों को विकासात्मक गतिविधियों के बारे में निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है। यह जमीनी स्तर पर लोकतंत्र है यानी 'विकेंद्रीकृत लोकतंत्र'। भारत के ग्रामीण समुदाय के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में पंचायतों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। हालाँकि, प्रतिस्पर्धी चुनावों ने सभी गाँवों के माहौल को राजनीतिक बना दिया है। परिणामस्वरूप, पंचायतों को दी गई शक्तियाँ और कार्य राज्य दर राज्य अलग-अलग हैं, जो गाँव वालों के कामकाज और सेवाओं की डिलीवरी को बहुत प्रभावित करते हैं। लेकिन, यह किसी भी तरह से पंचायतों के महत्व को कम नहीं करता है। भारत जैसे विशाल देश में, पंचायत वास्तव में शासन का एक महत्वपूर्ण आधार है

7.8 शब्दावली

1. ग्राम सभा ग्राम सभा का तात्पर्य ऐसे निकाय से है, जिसमें किसी गांव के सभी सदस्य अथवा गाँव के समूह के वे सभी व्यक्ति शामिल हैं, जिनके नाम उस ग्राम पंचायत की मतदाता सूची मे पंजीकृत है

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

- बोध प्रश्न

1. पंचायती राज के बारे में बलवन्त राय मेहता समिति की प्रमुख सिफारिष ं की जांच कीजिए।
2. भारत के 73वें संविधान संष धन की प्रमुख बातें बताइए।
3. भारत में पंचायती राज प्रणाली के विकास पर संक्षेप में प्रकाष डालिए।

इकाई 08 वर्तमान कृषि संकट एवं कृषि मूल्य, प्राकृतिक कृषि

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2वर्तमान कृषि संकट एवं कृषि मूल्य
8.3 क्या किया जाने की जरूरत है?
8.4कृषि वित्त,
8.5 संस्थागत स्रोत
8.5.1 कृषि वित्त के स्रोत
8.5.2 संस्थागत स्रोत
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

8.1 प्रस्तावना

भारत में कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन हो रहा है, जिससे संकट की स्थिति पैदा हो रही है। हाल के वर्षों में कृषि उत्पादन की वृद्धि दर धीरे-धीरे कम हो रही है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का सापेक्ष योगदान समय के साथ लगातार कम होता जा रहा है। फसल श्रेणियों के अनुसार कृषि का प्रदर्शन भी भारत में कृषि की धीमी प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। कृषि में मंदी की शुरुआत नब्बे के दशक की शुरुआत से हुई और नब्बे के दशक के उत्तरार्ध से यह तेज हो गई। क्षेत्र, इनपुट उपयोग, पूंजी स्टॉक और प्रौद्योगिकी के रुझान भी कृषि में गिरावट और उसके अनुसार किसानों की प्रतिक्रिया को दर्शाते हैं। यह चिंताजनक है कि भारत खाद्य अधिशेष के मामले में आत्मनिर्भर राष्ट्र से खाद्य के शुद्ध आयातक की ओर बढ़ रहा है। ये सभी रुझान संकेत देते हैं कि भारत में कृषि क्षेत्र आज संकट का सामना कर रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि संकट का मूल कारण यह था कि अन्य उद्यमों की तुलना में कृषि अब लाभदायक आर्थिक गतिविधि नहीं रही। इसका मतलब है कि इन गतिविधियों से प्राप्त आय किसानों के खर्च को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। और इसलिए, जब तक कृषि को लाभदायक उद्यम नहीं बनाया जाता, तब तक वर्तमान संकट का समाधान नहीं हो सकता। इस संकट के लिए जिम्मेदार संबंधित कारकों में शामिल हैं: वर्षा और जलवायु पर निर्भरता, कृषि उत्पादों का उदार आयात, कृषि सब्सिडी में कमी, कृषि के लिए आसान ऋण की कमी और साहूकारों पर निर्भरता, कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश में कमी और वैकल्पिक उपयोगों के लिए कृषि भूमि का रूपांतरण।

8.2 वर्तमान कृषि संकट एवं कृषि मूल्य

1) **भूमि पर जनसांख्यिकीय दबाव:** बढ़ती जनसंख्या के साथ, भूमि विखंडन के कारण भूमि जोत का आकार घट रहा है। ग्रामीण परिवारों में 80% से अधिक भूमिहीन और सीमांत किसान हैं। कृषि इन परिवारों का भरण-पोषण करने में असमर्थ है।
2) **पैसे की कमी:** छोटे और सीमांत किसानों को अधिक जमीन खरीदने या बुनियादी ढांचे में निवेश करने के लिए पैसे की भारी कमी का सामना करना पड़ता है। सिंचाई, कृषि मशीनरी, भंडारण उपकरण आदि। इससे कम उत्पादन होता है जो फिर से खेती को एक गैर-व्यवहार्य विकल्प बनाता है।
3) **जोखिम:** भारत की एक तिहाई कृषि वर्षा आधारित खेती पर निर्भर है। किसानों और सरकार की ओर से तैयारियों की कमी के साथ मानसून की अप्रत्याशितता ने खेती को व्यवसाय से अधिक एक जुआ बना दिया है। इसके अलावा, जो किसान खराब होने वाली उपज पैदा करते हैं, भंडारण सुविधाओं की कमी के कारण उनके सड़ने और बर्बाद होने का खतरा रहता है।
4) **प्रभावAPMC में बड़े व्यापारियों की संख्या:** अधिकांश छोटे और सीमांत किसानों को अपनी उपज बेचनी पड़ती हैउत्पादन करनास्थानीय बाजार में एमएसपी से काफी कम कीमत पर। किसानों को अपनी उपज लाइसेंस प्राप्त व्यापारियों के कार्टेल द्वारा नियंत्रित विनियमित बाजारों में नीलामी के माध्यम से बेचनी होती हैलाइसेंसउन्हें अल्पाधिकारवादी बाजार शक्ति प्रदान करें। ये कार्टेल कम खरीद मूल्य तय करते हैं, बड़े कमीशन लेते हैं, भुगतान में देरी करते हैं, आदि। इस प्रकार, एमएसपी का वास्तविक लाभ बड़े व्यापारियों द्वारा छीन लिया जाता है। किसानों को आमतौर पर उपभोक्ताओं द्वारा चुकाई जाने वाली कीमत का केवल 25% ही मिलता है।
5) **इनपुट लागत में वृद्धि:** विभिन्न सब्सिडी के बावजूद, उर्वरक, मशीनरी आदि जैसे इनपुट की कीमतों में वृद्धि किसानों को कर्ज और संकट के दुष्चक्र में धकेल देती है। ग्रामीण युवाओं का प्रवासन: चूंकि कृषि को आजीविका और साल भर की जीविका के व्यवहार्य साधन के रूप में नहीं देखा जा रहा है, इसलिए शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करने की प्रवृत्ति ग्रामीण युवाओं में बढ़ रही है, जहां वे मुख्य रूप से अनौपचारिक रूप से काम करते हैं।मजदूरों.
   छोटे खाद्यान्नों के लिए मूल्य वृद्धि: मोटे अनाजों के मामले में सबसे बड़ी मूल्य वृद्धि की घोषणा की गई हैज्वार,बाजरेऔर रागी, जिसका ख़रीफ़ खाद्यान्न उत्पादन में 5% से भी कम योगदान है।

8.3 क्या किया जाने की जरूरत है?

मामलों की स्थिति को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि भारत में कृषि को नीतिगत पहलू से लेकर कृषि-बाज़ार में सुधार तक व्यापक बदलाव की आवश्यकता है।

1) **सहकारी कृषि** उन प्रमुख क्षेत्रों में से एक है जो छोटे और सीमांत किसानों को अपने संसाधनों को एकत्रित करने और खुद को सशक्त बनाने में मदद कर सकता है। उदाहरण के लिए, अमूल डेयरी सहकारी सहकारी कृषि की सफलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। केरल में कुदुम्बश्री कार्यक्रम, आंध्र में ग्रामीण गरीबी उन्मूलन सोसायटी की हालिया सफलता की कहानियां ऐसे कुछ अन्य उदाहरण हैं।
2) **कृषि उत्पादकता बढ़ाने** के लिए कई आवश्यक कदम उठाने की आवश्यकता है । उत्पादकता बढ़ाने के लिए चार आयामों में प्रगति की आवश्यकता है: (i) पानी, बीज, उर्वरक जैसे **इनपुट की** गुणवत्ता और विवेकपूर्ण उपयोगऔरकीटनाशक; (ii) आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) बीजों सहित **आधुनिक प्रौद्योगिकी** का विवेकपूर्ण और सुरक्षित दोहन ; और (iii) फल, सब्जियां, फूल, मछली पालन, पशुपालन और मुर्गीपालन जैसी **उच्च मूल्य वाली वस्तुओं में बदलाव।** (iv) लंबे समय में, उत्पादकता बढ़ाने के लिए मजबूत बीज किस्मों और अन्य इनपुट, उपयुक्त फसलों और किसी दिए गए मिट्टी के प्रकार और प्रभावी विस्तार प्रथाओं के लिए इनपुट उपयोग की खोज की दिशा में **अनुसंधान की आवश्यकता होती है**
3) **कृषि बाजारों को बड़े व्यापारियों के चंगुल से और बड़े व्यापारियों के अल्पाधिकार से मुक्त करने** के लिए ,यह महत्वपूर्ण है कि(i) **2003 का एपीएमसी अधिनियम,** जिसने सर्वांगीण विपणन सुधार की शुरुआत की, को वास्तविक रूप से लागू किया जाए। (ii) **राष्ट्रीय कृषि बाजार या eNAM,** भारत में कृषि वस्तुओं के लिए एक ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इसे देश के कोने-कोने तक पहुंचाना समय की मांग है।
4) **किसान** अक्सर सूखा, बाढ़, चक्रवात, तूफान, भूस्खलन, ओलावृष्टि और भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित होते हैं। **हालांकि प्रधानमंत्री** जैसी फसल बीमा योजनाएं**फसलबीमा योजना** फसल की विफलता को कवर करती है, फिर भी फसल को प्रभावित करने वाली प्राकृतिक आपदाओं के अधिक व्यापक कवरेज की आवश्यकता हैउत्पादन करना.
5) हमें **पूर्वी राज्यों के किसानों की समस्याओं पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।** उपजाऊ भूमि और प्रचुर जल संसाधनों को देखते हुए, इन राज्यों में कृषि की उच्च संभावनाएँ हैं। फिर भी, विभिन्न फसलों में उनकी उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से पीछे है। इसलिए, इन राज्यों में हरित क्रांति लाने के लिए एक ठोस प्रयास की आवश्यकता है।

इसके अलावा, सरकार को अपना ध्यान केवल किसानों को मूल्य समर्थन प्रदान करने से हटाकर **बेहतर बुनियादी ढांचे के निर्माण, किसानों और बाजार के बीच अंतर को कम करने, भूमि सुधार, किसानों को ऋण के प्रवाह को बढ़ाने के लिए नीतिगत सुधार, खाद्य-प्रसंस्करण की स्थापना पर केंद्रित करना चाहिए। खराब होने वाली वस्तुओं के लिए उद्योग लगाना,**

बेहतर सिंचाई सुविधाएँ प्रदान करना आदि ताकि कृषि जीविका का एक व्यवहार्य साधन बनकर उभरे।

8.4कृषि वित्त, कृषि ऋण लेने वालों को ऋण द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तपोषण और तरलता सेवाओं का अध्ययन है। इसे उन वित्तीय मध्यस्थों का अध्ययन भी माना जाता है जो कृषि को ऋण निधि प्रदान करते हैं और वित्तीय बाजार जिसमें ये मध्यस्थ अपने ऋण योग्य निधि प्राप्त करते हैं। कृषि में वित्त उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि कृषि उत्पादन में उपयोग किए जाने वाले अन्य इनपुट। तकनीकी इनपुट किसान द्वारा तभी खरीदे और उपयोग किए जा सकते हैं जब उनके पास पैसा (धन) हो। लेकिन उनका अपना पैसा हमेशा अपर्याप्त होता है और उन्हें बाहरी वित्त या ऋण की आवश्यकता होती है। कृषि वित्त किसानों को नए निवेश करने और/या नई तकनीकों को अपनाने के लिए पूंजी प्रदान करता है।

भारत में कृषि वित्तपोषण का इतिहास 1935 तक कृषि के लिए ऋण का एकमात्र स्रोत साहूकार थे। वे अत्यधिक ब्याज दर वसूलते थे और ऋण देने तथा उसे वसूलने में गंभीर प्रथाओं का पालन करते थे। परिणामस्वरूप, किसान भारी मात्रा में ऋण के बोझ तले दब गए और उनमें से कई ऋण के बोझ तले दब गए। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934, जिला केंद्रीय सहकारी बैंक अधिनियम और भूमि विकास बैंक अधिनियम के पारित होने के साथ ही कृषि ऋण को बढ़ावा मिला और कृषि ऋण में सुधार हुआ। एक शक्तिशाली वैकल्पिक एजेंसी अस्तित्व में आई। ऋण देने और उसकी वसूली दोनों के संदर्भ में आसान शर्तों पर उचित ब्याज दरों पर बड़े पैमाने पर ऋण उपलब्ध होने लगा। यद्यपि सहकारी बैंकों ने 1930 के दशक में अपनी स्थापना के साथ कृषि को वित्तपोषित करना शुरू कर दिया था, लेकिन वास्तविक प्रोत्साहन स्वतंत्रता के बाद ही मिला जब उपयुक्त कानून पारित किए गए और नीतियां बनाई गईं। इसके बाद, ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलकर और जमाराशियों को आकर्षित करके कृषि के लिए बैंक ऋण ने अभूतपूर्व प्रगति की। 1969 में 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण तक, सहकारी बैंक कृषि को वित्त प्रदान करने वाली मुख्य संस्थागत एजेंसियां थीं। राष्ट्रीयकरण के बाद, इन बैंकों के लिए प्राथमिकता वाले क्षेत्र के रूप में कृषि को वित्त प्रदान करना अनिवार्य कर दिया गया।

इन बैंकों ने शाखा विस्तार के विशेष कार्यक्रम चलाए और पूरे देश में बैंकिंग सेवाओं का एक नेटवर्क बनाया और बड़े पैमाने पर कृषि को वित्तपोषित करना शुरू किया। इस प्रकार कृषि ऋण ने बहु-एजेंसी आयाम हासिल कर लिया। नई प्रौद्योगिकियों का विकास और अपनाना तथा वित्त की उपलब्धता एक साथ चलते हैं। सहकारी समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आरआरबी), अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (एससीबी), गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थान (एनबीएफआई) और स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) जैसी बड़ी संख्या में औपचारिक संस्थागत एजेंसियां किसानों की अल्पकालिक और दीर्घकालिक जरूरतों को पूरा करने में शामिल हैं। ग्रामीण ऋण प्रणाली के संस्थागत तंत्र को मजबूत करने के लिए कई पहल की गई हैं। "हरित क्रांति", "श्वेत क्रांति" और "पीली क्रांति" लाने में वित्त ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 2000 के दशक की पहली

छमाही में, कुल कृषि ऋण में वाणिज्यिक बैंकों की हिस्सेदारी में भारी वृद्धि हुई है। 1990 के दशक से कुल कृषि ऋण में अल्पावधि कृषि ऋण का हिस्सा बढ़ता जा रहा है किसान क्रेडिट कार्ड (केसीसी) के रूप में नई ऋण वितरण प्रणाली शुरू की गई ताकि ऋण तक आसान पहुंच प्रदान की जा सके। विभिन्न उद्देश्यों के लिए ऋण की प्रक्रिया और राशि को मानकीकृत किया गया है। विभिन्न उद्देश्यों में "फसल ऋण" (अल्पकालिक ऋण) का प्रमुख हिस्सा है। इसके अलावा, किसानों को पंप, ट्रैक्टर और अन्य मशीनरी के साथ इलेक्ट्रिक मोटर खरीदने, कुआं खोदने या बोरिंग करने, पाइप लाइन लगाने, ड्रिप सिंचाई, फलों के बगीचे लगाने, डेयरी पशुओं और उनके लिए चारा खरीदने, मुर्गी पालन, भेड़/बकरी पालन और कई अन्य संबद्ध उद्यमों के लिए ऋण मिलता है।

8.5 कृषि वित्त के स्रोत

कृषि में वित्त के दो प्रमुख स्रोत **हैं संस्थागत और गैर-संस्थागत स्रोत**

8.5.1. **संस्थागत स्रोत**

संस्थागत स्रोतों में सरकार और सहकारी समितियां, वाणिज्यिक बैंक शामिल हैं, जिनमें क्षेत्रीय बैंक, अग्रणी बैंक शामिल हैं

भारत में किसानों द्वारा लिए गए कुल ऋण में गैर-संस्थागत स्रोत लगभग 40 प्रतिशत हैं। गैर-संस्थागत कृषि ऋणों की ब्याज दर आमतौर पर बहुत अधिक होती है, हालांकि सुरक्षित ऋणों में भूमि या अन्य संपत्ति को संपार्श्विक के रूप में रखा जाता है। इसमें रिश्तेदार, जमींदार, व्यापारी, कमीशन एजेंट और साहूकार जैसी संस्थाएँ शामिल हैं। दूसरी ओर, संस्थागत स्रोतों में सहकारी समितियाँ, नाबार्ड और RBI और SBI समूह जैसे वाणिज्यिक बैंक जैसी संस्थाएँ शामिल हैं।

8.5.2 संस्थागत स्रोत

संस्थागत ऋण का मुख्य लक्ष्य किसानों को उनकी कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सक्षम बनाना है और इसके परिणामस्वरूप उनकी आय में वृद्धि करना है। संस्थागत ऋण में शोषणकारी प्रथाओं का उपयोग नहीं किया जाता है। भारत में कृषि वित्त के कुछ मुख्य संस्थागत स्रोत नीचे सूचीबद्ध हैं

क. सहकारी ऋण समितियाँ

सहकारी ऋण समितियाँ भारत में कृषि व्यवसाय ऋण का सबसे अच्छा और सस्ता स्रोत हैं। भारत में सक्रिय प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ (PACS) सभी भारतीय गाँवों के लगभग 86% और देश की कुल ग्रामीण आबादी के 36% से अधिक हिस्से के लिए जिम्मेदार हैं।

ख. सरकार

सरकार भारत में कृषि वित्त का एक और मूल्यवान प्रदाता है। भारत सरकार से उपलब्ध कृषि वित्त को तकावी ऋण कहा जाता है और ये आमतौर पर आपातकाल के समय वितरित किए जाते हैं, जैसे कि जब बाढ़ या अकाल पड़ता है। इन ऋणों पर ब्याज दरें भी बहुत कम हैं।

ग. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक या आरआरबी 1975 से कृषि मजदूरों, छोटे और सीमांत किसानों, साथ ही ग्रामीण कारीगरों को उत्पादक उद्देश्यों के लिए सीधे ऋण प्रदान कर रहे हैं।

घ. वाणिज्यिक बैंक

वाणिज्यिक बैंकों ने ग्रामीण वित्त प्रदान करने में मामूली भूमिका निभाई है। 1969 में वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद, इन बैंकों ने लघु और मध्यम अवधि के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह के कृषि ऋण प्रदान करना शुरू कर दिया।

ई. भूमि विकास बैंक ये मध्यम और दीर्घकालिक दोनों तरह के कृषि व्यवसाय ऋण भूमि के संपार्श्विक के बदले प्रदान करते हैं जो सुरक्षा के रूप में कार्य करता है। इन कृषि व्यवसाय ऋणों की अवधि आमतौर पर 5-20 वर्ष होती है, जिसमें ऋण की मात्रा अधिक होती है।

किसानों के शोषण को कम करने और उनके विकास को सक्षम बनाने के लिए सरकार ने कई पहल की हैं, बैंकों और एनबीएफसी को ग्रामीण किसानों को प्रतिस्पर्धी ब्याज दरों पर कृषि व्यवसाय ऋण प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया है। हालांकि, ग्रामीण क्षेत्रों में संस्थागत ऋण की प्रभावी स्वीकृति के लिए संस्थागत वित्तपोषण के लाभों के बारे में जागरूकता और शिक्षा में वृद्धि महत्वपूर्ण है।

8.6 सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करने के लिए हमने इस खंड में विभिन्न महत्वपूर्ण आयामों पर चर्चा की है, जैसे कि औद्योगिकीकरण, वैश्विकरण, बाजार व्यवस्था, कृषि उत्पादन, भू-धारण प्रणाली, सामुदायिक विकास, पंचायती राज व्यवस्था, और वर्तमान कृषि संकट। इन आयामों की व्यापक चर्चा ने हमें भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास और इसके विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद की है। कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसने देश की आर्थिक सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कृषि उत्पादन, किसानों की आर्थिक स्थिति, और ग्रामीण विकास के साथ ही, यह कृषि क्षेत्र भारत के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान करता है। कृषि नीति द्वारा भारत सरकार ने किसानों के लिए महत्वपूर्ण योजनाएं बनाई हैं, जो उन्हें तकनीकी सहायता प्रदान करती है, उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारती है और उन्हें आवश्यक साधनों से लबालब करने का प्रयास करती है। इसके साथ ही, यह नीति विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाएं बनाती है जैसे कि जलवायु और आर्थिक क्षेत्र, औद्योगिक नीति, और किसानों के लिए सशक्त आवास। सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विस्तार सेवा और पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से सरकार ने गांवों के विकास को प्राथमिकता दी है और ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक विकास को प्राथमिकता दी है। इस सरांश में हमने भारतीय अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण विषयों को संक्षेपित रूप में उचित प्रमाण में चर्चा की है, जो हमें यह दिखाते हैं कि कृषि नीति, ग्रामीण विकास, और आर्थिक सुरक्षा में कैसे योगदान करती है। इस तरह, भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण इस खंड के माध्यम से हमें विभिन्न पहलुओं के साथ भारतीय कृषि नीति के महत्व को समझने में मदद करेगा।

8.7 शब्दावली

1. कृषि ऋण (Agricultural Credit): किसानों को उनकी कृषि गतिविधियों के लिए बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा प्रदान किया गया ऋण, जिससे वे बीज, खाद, उपकरण आदि खरीद सकें और उत्पादन बढ़ा सकें।
2. कृषि विपणन (Agricultural Marketing): कृषि उत्पादों के उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया, जिसमें उत्पादों का संग्रह, ग्रेडिंग, भंडारण, परिवहन, और बिक्री शामिल है।
3. .कषि अवसंरचना (Agricultural Infrastructure): कृषि क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक भौतिक और संगठनात्मक ढांचा, जैसे सिंचाई सुविधाएँ, भंडारण गोदाम, सड़कों का निर्माण आदि।
4. कृषि तकनीक (Agricultural Technology): कृषि उत्पादन में उपयोग होने वाली तकनीकें, जैसे मशीनरी, बीज, सिंचाई पद्धतियाँ, और जैविक खाद, जो कृषि उत्पादन में सुधार और कृषि कार्यों को आसान बनाती हैं।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. " भारतीय कृषि नीति और विकास: समस्याएँ और समाधान" - आर. नागराजन द्वारा लिखित, यह पुस्तक भारतीय कृषि नीति के विकास और समस्याओं पर विस्तृत चर्चा करती है।

2. "भारतीय अर्थव्यवस्था: संक्षेपण" - रमेश चंद्र द्वारा लिखित, यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को संक्षेपित रूप में प्रस्तुत करती है।

- बोध प्रश्न

1. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के मुख्य लाभ क्या हैं?
2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि का क्या योगदान है?
3. जैविक खेती और पारंपरिक खेती में क्या अंतर है?

खंड -02 भारतीय उद्योग एवं औद्योगिक मजदूर

इकाई 01 लघु एवं कुटीर उद्योग : महत्व ,वर्तमान स्थिति, MSME

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 लघु एवं कुटीर उद्योग महत्व वर्तमान स्थिति, MSME
1.3 भारत के प्रमुख उद्योग चीनी उद्योग, वस्त्र उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग आदि
1.4 व्यवस्थित उद्योग औद्योगिक मजदूरी, मजदूरी नियमन
1.5 सामाजिक सुरक्षा व श्रमकल्याण
1.6 औद्योगिक विवाद एवं औद्योगिक शान्ति
1.7 सारांश
1.8 उपयोगी पुस्तके
1.9 शब्दावली

1.0 उद्देश्य

यह अध्याय उद्योग और उद्योगिक मजदूरी के बीच संबंधों को समझने का प्रयास करता है और भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था में इसके महत्त्व को सार्थकता से प्रस्तुत करता है। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्योगों एवं उद्योगिक मजदूरी के बीच संबंधों के गहराई से अध्ययन करना, उनकी अहम भूमिका को समझना और इस संबंध में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रतिक्रियाएं समझना है। यह अध्याय संक्षेपन और विश्लेषण के माध्यम से इस प्रमुख विषय को प्रस्तुत करता है ताकि व्यावसायिक और श्रम संबंधित नीतियों, कानूनों, और उनके प्रभावों को समझा जा सके। उद्देश्य है कि यह अध्याय उद्योगों और मजदूरों के बीच संबंधों को परिपूर्णता से व्याख्या करके, उद्योगों की विकास और मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए संवेदनशीलता पैदा करे। इस अध्याय का लंबा उद्देश्य यह है कि व्यावसायिक संगठन, सामाजिक संगठन, सरकारी नीतियों, और उद्योगिक मजदूरों के संबंधों के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करे। यह अध्याय उद्योगों और मजदूरों के मध्य आत्म-समझौते, सामाजिक सुरक्षा, और समृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए उपयोगी सूचना और दिशा प्रदान करने का भी उद्देश्य रखता है। यह अध्याय उद्योगों के विकास, मजदूरों की समृद्धि, और समाज में विकास के लिए उचित नीतियों और दिशाओं के निर्धारण में मदद करने का उद्देश्य रखता है।

1.1प्रस्तावना

उद्योग और उद्योगिक मजदूरी भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था के दो महत्त्वपूर्ण स्तंभ हैं। इन दोनों के बीच के संबंधों का गहरा अध्ययन व्यापक रूप से समझने की आवश्यकता है। उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जबकि उद्योगिक

मजदूरी उसकी शक्ति और कार्य शक्ति को बढ़ाती है।भारतीय उद्योगों का इतिहास उनके विकास, संगठन, और अनुप्रयोगों में विशेषता और समृद्धि की कहानी सुनाता है। वस्त्र, चीनी, लौह एवं इस्पात उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और उनका योगदान आर्थिक विकास में अहम होता है। मजदूरी भी समाज में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उद्योगों में श्रमिकों का योगदान उनकी सशक्तिकरण और अर्थव्यवस्था में सहयोगी भूमिका निभाता है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है कि इसके माध्यम से उद्योग और मजदूरी के महत्वपूर्ण संबंधों को समझाया जाए और उनका महत्व सार्थकता से प्रस्तुत किया जाए। यह अध्याय उद्योगों और मजदूरों के बीच के संबंधों के भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था में उनके स्थान को समझाने के लिए सूचना और विश्लेषण प्रदान करता है इस अध्याय के माध्यम से हम उद्योगों और मजदूरों के बीच के संबंधों के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करेंगे, जिससे भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था को इन्हें समाझने और सुधारने का तरीका मिल सके।

1.2 लघु एवं कुटीर उद्योग महत्व वर्तमान स्थिति, (MSME)

लघु उद्योग वे उद्योग हैं जो विनिर्माण, उत्पादन और सेवाओं के प्रतिपादन में छोटे पैमाने पर किए जाते हैं। निवेश की सीमा 5 करोड़ रुपये तक है जबकि वार्षिक मतदान सीमा 10 करोड़ रुपये तक है। कुटीर उद्योग आमतौर पर बहुत छोटे होते हैं और कॉटेज या निवास स्थानों में स्थापित होते हैं। खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) एक वैधानिक संगठन है जो ग्रामोद्योग को बढ़ावा देता है जो कुटीर उद्योगों की भी मदद करता है। **लघु और कुटीर उद्योगों के बीच अंतर:** लघु उद्योग में बाहरी श्रम का उपयोग किया जाता है जबकि कुटीर उद्योगों में पारिवारिक श्रम का उपयोग किया जाता है SSI आधुनिक और पारंपरिक दोनों तकनीकों का उपयोग करता है। कुटीर उद्योग उत्पादन की पारंपरिक तकनीकों पर निर्भर करते हैं। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास (MSMED) अधिनियम, 2006 के प्रावधान के अनुसार सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है:

विनिर्माण उद्यम: उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 की पहली अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी उद्योग से संबंधित वस्तुओं के निर्माण या उत्पादन में लगे उद्यम। विनिर्माण उद्यम को संयंत्र और मशीनरी में निवेश के संदर्भ में परिभाषित किया गया है। सेवा उद्यम: सेवाएं प्रदान करने या प्रदान करने में लगे उद्यम और उपकरण में निवेश के संदर्भ में परिभाषित किए गए हैं:

लघु एवं कुटीर उद्योग (MSMEs) का वर्गीकरण - तुलना

तुलना के आधार पर	**संयंत्र, मशीनरी या उपकरण में निवेश**
अतिलघु उद्योग	1 करोड़ रुपये से अधिक और वार्षिक कारोबार; न कि उससे अधिक रु.

(Micro)	5 करोड़
छोटे उद्यम(Small)	संयंत्र और मशीनरी या उपकरण में निवेश: 10 करोड़ रुपये से अधिक नहीं और वार्षिक कारोबार; 50 करोड़ रुपये से अधिक नहीं
मध्यम उद्यम(Medium)	संयंत्र और मशीनरी या उपकरण में निवेश: 50 करोड़ रुपये से अधिक नहीं और वार्षिक कारोबार; 250 करोड़ रुपये से अधिक नहीं

❖ **लघु उद्योगों का योगदान**

आर्थिक विकास की दिशा में लघु उद्योगों के प्रमुख योगदान नीचे दिए गए हैं:राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के 73वें दौर के अनुसार, (2015-16) देश में कुल 633.88 लाख गैर-कृषि एमएसएमई विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में लगे हुए हैं। जहां तक रोजगार का सवाल है, एमएसएमई क्षेत्र 11.10 करोड़ रोजगारों (विनिर्माण में 360.41 लाख, गैर-कैप्टिव बिजली उत्पादन एवं पारेषण में 0.07 लाख, व्यापार में 387.18 लाख और व्यापार में 362.22 लाख) का सृजन कर रहा है।

देश भर के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अन्य सेवाओं में लाख रुपये: 2015-16 में लघु क्षेत्र (एमएसएमई मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2019-20 में प्रकाशित नवीनतम डेटा) ने 31.95 लाख लोगों को रोजगार प्रदान किया। यह एमएसएमई क्षेत्र में कुल रोजगार का लगभग 2.88 प्रतिशत है।लघु उद्योग भारत जैसे अविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए अनुकूल हैं। ऐसे उद्योग अपेक्षाकृत श्रम प्रधान होते हैं इसलिए वे दुर्लभ पूंजी का किफायती उपयोग करते हैं।लघु उद्योग धन की असमानताओं को कम करने में सहायक होते हैं।इन उद्योगों में पूंजी कम मात्रा में व्यापक रूप से वितरित की जाती है और इन उद्योगों के अधिशेष को बड़ी संख्या में लोगों के बीच वितरित किया जाता है।लघु उद्योग उद्योगों का क्षेत्रीय फैलाव करते हैं और क्षेत्रीय असंतुलन को कम करते हैं।लघु उद्योग पूंजी और उद्यमी कौशल सहित स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते हैं, जो ऐसे उद्योगों के अभाव में उपयोग में नहीं आते।लघु उद्योग क्षेत्र ने बहुत अच्छा प्रदर्शन किया है और देश को औद्योगिक विकास और विविधीकरण के व्यापक माप को प्राप्त करने में सक्षम बनाया है।इन उद्योगों में, नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच संबंध प्रत्यक्ष और सौहार्दपूर्ण होते हैं। श्रम और औद्योगिक विवादों के शोषण की शायद ही कोई गुंजाइश हो।

महत्वपूर्ण तथ्य: मूल रूप से, लघु उद्योग मंत्रालय था, हालांकि, कृषि और ग्रामीण उद्योग मंत्रालय के साथ 9 मई 2007 को एमएसएमई मंत्रालय में विलय किया गया था।.सितंबर

2015 में, उद्योग आधार ज्ञापन (यूएमए) ने जिला उद्योग केंद्र (डीआईसी) में पंजीकरण करने के लिए पहले छोटे पैमाने की इकाइयों द्वारा उपयोग की जाने वाली प्रणाली को बदल दिया।लघु उद्योग को बढ़ावा देने के लिए सरकारी उपाय

संगठनात्मक उपाय: बोर्डों की स्थापना, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (एनएसआईसी),औद्योगिक संपदा, जिला उद्योग केंद्र (डीआईसी)

वित्तीय उपाय: लघु उद्योग विकास कोष (एसआईडीएफ) - लघु उद्योगों के विकास, विस्तार, आधुनिकीकरण, पुनर्वास के लिए पुनर्वित्त (यानी एसएसआई को उनके उधार के बदले वित्तीय संस्थानों को वित्त) सहायता प्रदान करने के लिए 1986 में स्थापित किया गया था।राष्ट्रीय इक्विटी फंड (एनईएफ)सिंगल विंडो स्कीम (एसडब्ल्यूएस)भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI):–यह अक्टूबर 1989 में लघु उद्योग विकास कोष (SIDF) और प्राकृतिक इक्विटी कोष (NEF) के समामेलन द्वारा स्थापित किया गया था।

राजकोषीय उपाय :1 करोड़ रुपये तक के टर्नओवर वाले लघु उद्यमों को उत्पाद शुल्क से पूरी तरह छूट दी गई है।एसएसआईएस द्वारा उपयोग किए जाने वाले कुछ प्रकार के कच्चे माल और घटकों के आयात पर सीमा शुल्क की रियायती दर लगाई जाती है।सरकारी खरीद कार्यक्रम में छोटे पैमाने के क्षेत्र में निर्मित उत्पादों को मूल्य और खरीद वरीयता दी जाती है।

तकनीकी सहायता: लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO):– इसकी स्थापना 1954 में हुई थी। SIDO अपने विस्तार केंद्रों और सेवा संस्थानों के नेटवर्क के माध्यम से SSI को तकनीकी, प्रबंधकीय, आर्थिक और विपणन सहायता प्रदान करता है।ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (CART):- इसकी स्थापना 1982 में ग्रामीण उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए की गई थी।प्रौद्योगिकी विकास और आधुनिकीकरण कोष (TDMF):- यह निर्यातोन्मुख इकाइयों के तकनीकी उन्नयन और आधुनिकीकरण के लिए स्थापित किया गया था।

एसएसआईएस के लिए मदों का आरक्षण: छोटे पैमाने के क्षेत्र के लिए कुछ वस्तुओं को आरक्षित करने की नीति 1967 में शुरू की गई थी।इसका उद्देश्य SSIs को बड़े पैमाने की इकाइयों के साथ प्रतिस्पर्धा से बचाकर उन्हें बढ़ावा देना है। अप्रैल 1967 में आरक्षित श्रेणी में केवल आइटम थे जिन्हें 1984 में कई चरणों में बढ़ाकर 873 कर दिया गया था।आरक्षण की नीति की कई अर्थशास्त्रियों द्वारा व्यापक रूप से आलोचना की गई क्योंकि इसने आरक्षित वस्तुओं के उत्पादन और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। इसलिए, सरकार ने SSIs के लिए वस्तुओं के आरक्षण की नीति की समीक्षा के लिए आबिद हुसैन समिति की नियुक्ति की।समिति ने 1997 में इस टिप्पणी के साथ अपनी रिपोर्ट दी कि आरक्षण की नीति ने वास्तव में ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में लगे SSIs की प्रतिस्पर्धात्मकता को कम कर दिया है।आरक्षित वस्तुओं के उत्पादन में केवल कुछ SSIs शामिल थे और SSIs के कुल उत्पादन की तुलना में उनका उत्पादन लगभग नगण्य था। इस प्रकार, समिति ने सिफारिश की कि SSIs के लिए मदों के आरक्षण की नीति को छोड़ दिया जाना चाहिए।

<u>कुटीर और लघु उद्योग की समस्याएं:</u>

कुटीर उद्योगों की समस्याएँ:

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, कुटीर और हस्तशिल्प उद्योग कई तरह की समस्याओं का सामना करते हैं। यहाँ कुछ प्रमुख समस्याओं का उल्लेख किया जा सकता है:

- **कच्चे माल की समस्या:** कुटीर उद्योग कच्चे माल की आपूर्ति के लिए खुले बाजार पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं, जहाँ कीमतें नियंत्रण कीमतों से दोगुनी से भी अधिक होती हैं। कच्चे माल का एक बड़ा हिस्सा बड़े उद्योगों द्वारा ले लिया जाता है। इस प्रकार, वे सस्ती दरों पर पर्याप्त और अच्छी मात्रा में कच्चे माल की नियमित आपूर्ति प्राप्त करने में विफल रहते हैं। कच्चे माल की अपर्याप्त आपूर्ति और कच्चे माल की खराब गुणवत्ता के कारण उत्पादन की लागत बढ़ जाती है और उत्पादित माल घटिया गुणवत्ता का होता है।
- **विनिर्माण की तकनीकें:** कुटीर उद्योगों में विनिर्माण की तकनीकें खराब और आदिम हैं। उत्पादन के लिए परंपरागत तरीके और औजारों का इस्तेमाल किया जा रहा है, जो पीढ़ियों से नहीं बदले हैं। पुराने औजार और उपकरण, जैसे तेल निकालने वाली मशीन (कोहलू) और हथकरघा अभी भी उपयोग में हैं। इससे उत्पादित उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता में गिरावट आती है। ऐसे सामानों की मांग बहुत सीमित है।
- **वित्त की समस्या:** वित्त हर व्यावसायिक उद्यम का खून है। कुटीर उद्योगों के सामने सबसे बड़ी समस्या आवश्यक वित्त प्राप्त करने की है। कारीगरों को कच्चा माल खरीदने, कच्चे माल के भंडारण और तैयार माल को रखने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में कारीगरों के लिए वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी ऋण समितियों से पैसा प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। इसलिए वे वित्त के लिए बड़े पैमाने पर निजी साहूकारों और महाजनों पर निर्भर रहते हैं। वे उच्च ब्याज दर वसूलते हैं और कुछ मामलों में देनदारों को अपने तैयार उत्पाद सस्ते दरों पर बेचने के लिए मजबूर करते हैं। इस तरह ये उद्योग शोषण के अधीन हैं।
- **विपणन में कठिनाइयाँ:** उचित विपणन चैनलों की कमी कुटीर उद्योगों के सामने एक और बड़ी समस्या है। कुटीर उद्योगों के उत्पादों को मुख्य रूप से स्थानीय बाजारों में बेचना पड़ता है, जिससे लाभकारी कीमतों की गुंजाइश सीमित हो जाती है।
- **उत्पादन की उच्च लागत:** कच्चे माल की उच्च लागत, उत्पादन की पुरानी विधियाँ, अकुशल श्रम, कम मात्रा में उत्पादन, प्रति इकाई उच्च निश्चित लागत इन उद्योगों में उत्पादों की उत्पादन लागत को बढ़ाती है।
- **मानकीकरण का अभाव: इन** उद्योगों द्वारा उत्पादित तैयार उत्पादों में मानकीकरण का अभाव है।

- **कलात्मक वस्तुओं की सीमित माँग:** भारत के कुटीर उद्योगों ने अपना ध्यान कलात्मक वस्तुओं के उत्पादन पर केंद्रित किया है। इन वस्तुओं की माँग सीमित है, इसलिए ये उद्योग अपना उत्पादन नहीं बढ़ा सकते हैं।
- **कुशल श्रमिकों की कमी:** इन उद्योगों में कुशल श्रमिकों की कमी है। श्रमिक अधिकतर अशिक्षित हैं, उन्हें उत्पादन के नए उपकरणों और आधुनिक तकनीकों की जानकारी नहीं है।
- **औद्योगिक रुग्णता:** भारत में वर्ष 2016 में लगभग 4,80,280 सूक्ष्म और लघु उद्यम रुग्ण थे। रुग्ण इकाइयाँ घाटे में चल रही थीं। बाजार की जानकारी का अभाव: कई बार कारीगरों को बाजार की जानकारी नहीं होती। बाजार की उचित जानकारी के अभाव में वे अपनी उपज को उचित दरों पर नहीं बेच पाते।

अन्य समस्याएँ: कुटीर उद्योगों पर करों का भारी बोझ होता है। उन्हें कच्चे माल पर चुंगी और तैयार माल पर बिक्री कर देना पड़ता है। कुटीर उद्योगों के कई उत्पाद उपभोक्ताओं की पसंद, रुचि और फैशन के अनुरूप नहीं होते। उत्पादन में बहुत समय और श्रम लगता है। बड़े उद्यमों द्वारा बिलों के भुगतान में देरी।

एमएसएमई पर सरकार की पहल का अवलोकन (Overview of Govt. Initiatives on MSMEs)

एमएसएमई भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, जो देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में लगभग 30% का योगदान देते हैं, और भारत की 11 करोड़ आबादी को रोजगार प्रदान करते हैं। विनिर्माण उत्पादन में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) की हिस्सेदारी वर्तमान में 35.4% है। भारत सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए सक्रिय रही है कि इन एमएसएमई योजनाओं का पूरा लाभ समय पर एमएसएमई तक पहुंचे। केंद्रीय बजट 2024-25 में, वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने एमएसएमई को समर्थन देने के लिए आठ प्रमुख उपायों का प्रस्ताव दिया।

- **विनिर्माण क्षेत्र में एमएसएमई के लिए ऋण गारंटी योजना:** बिना किसी संपार्श्विक या तीसरे पक्ष की गारंटी के मशीनरी और उपकरण खरीदने के लिए एमएसएमई को सावधि ऋण की सुविधा के लिए, 100 करोड़ रुपये तक के कवर के साथ विनिर्माण क्षेत्र में पूंजी निवेश करने के लिए एक ऋण गारंटी योजना शुरू की जाएगी।
- एमएसएमई ऋण के लिए नया मूल्यांकन मॉडल: सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक एमएसएमई को ऋण के लिए मूल्यांकन करने के लिए अपनी आंतरिक क्षमता का निर्माण करेंगे, बजाय बाहरी मूल्यांकन पर निर्भर रहने के और एक नया ऋण मूल्यांकन मॉडल विकसित करने या विकसित करवाने में अग्रणी भूमिका निभाएंगे।
- **तनाव की अवधि के दौरान एमएसएमई को ऋण सहायता**: सरकार द्वारा प्रवर्तित निधि से तनाव की अवधि के दौरान एमएसएमई को ऋण सहायता प्रदान की जाएगी, जो

एमएसएमई को उनके तनाव की अवधि के दौरान बैंक ऋण जारी रखने की सुविधा के लिए एक नई व्यवस्था है।

- **मुद्रा ऋण:** उन उद्यमियों के लिए मुद्रा ऋण की सीमा मौजूदा 10 लाख रुपये से बढ़ाकर 20 लाख रुपये की जाएगी, जिन्होंने 'तरुण' श्रेणी के तहत पिछले ऋण का लाभ उठाया है और सफलतापूर्वक चुकाया है।
- **टीआरईडीएस में अनिवार्य ऑनबोर्डिंग के लिए बढ़ा हुआ दायरा Enhanced scope for mandatory onboarding in TReDS**: एमएसएमई को अपने व्यापार प्राप्तियों को नकदी में परिवर्तित करके अपनी कार्यशील पूंजी को अनलॉक करने की सुविधा के लिए, टीआरईडीएस प्लेटफॉर्म पर अनिवार्य ऑनबोर्डिंग के लिए खरीदारों की टर्नओवर सीमा को 500 करोड़ रुपये से घटाकर 250 करोड़ रुपये किया जाएगा।
- **एमएसएमई क्लस्टरों में सिडबी की शाखाएँ**: सिडबी 3 वर्षों के भीतर सभी प्रमुख एमएसएमई क्लस्टरों तक अपनी पहुँच बढ़ाने के लिए नई शाखाएँ खोलेगा और उन्हें प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करेगा।
- **खाद्य विकिरण, गुणवत्ता और सुरक्षा परीक्षण के लिए एमएसएमई इकाइयाँ:** एमएसएमई क्षेत्र में 50 बहु-उत्पाद खाद्य विकिरण इकाइयों की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। एनएबीएल मान्यता के साथ 100 खाद्य गुणवत्ता और सुरक्षा परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना की सुविधा प्रदान की जाएगी।
- **ई-कॉमर्स निर्यात केंद्र:** एमएसएमई और पारंपरिक कारीगरों को अपने उत्पादों को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में बेचने में सक्षम बनाने के लिए, सार्वजनिक-निजी-भागीदारी (पीपीपी) मोड में ई-कॉमर्स निर्यात केंद्र स्थापित किए जाएंगे। एक निर्बाध नियामक और लॉजिस्टिक ढांचे के तहत ये केंद्र एक ही छत के नीचे व्यापार और निर्यात संबंधी सेवाओं की सुविधा प्रदान करेंगे।

खंड -02 भारतीय उद्योग एवं औद्योगिक मजदूर

इकाई 02 भारत के प्रमुख उद्योग: चीनी उद्योग, वस्त्र उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारत के प्रमुख उद्योग

2.3 भारत के प्रमुख उद्योग के प्रकार (Important Industries in India)

2.3.1 लौह एवं इस्पात उद्योग (Iron and Steel Industry):

2.3.2 कपड़ा उद्योग (Textile Industry)

2.3.3. चीनी उद्योग (Sugar Industry)

2.4 शब्दावली

2.5 कुछ उपयोगी पुस्तके

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित कार्य कर सकेंगे:

- भारत में औद्योगीकरण की बदलती संरचना को समझ सकेंगे;
- भारत की औद्योगिक प्रणाली में विभिन्न उद्योगों के सापेक्ष भार की पहचान कर सकेंगे; स्वतंत्रता के बाद से भारत में विभिन्न प्रकार के बड़े उद्योगों के विकास की गति को माप सकेंगे;
- बड़े पैमाने के उद्योगों के समक्ष आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे,
- भारत में विभिन्न बड़े उद्योगों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण के बारे में काफी अच्छी जानकारी विकसित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

भारत को अंग्रेजों से बहुत कमज़ोर औद्योगिक आधार विरासत में मिला था। यह इस तथ्य के बावजूद था कि दुनिया के एक बड़े हिस्से में उद्योग फल-फूल रहे थे; ग्रेट ब्रिटेन सहित कई देशों ने औद्योगिक क्रांति का अनुभव किया था। स्वतंत्र भारत अतीत को पीछे छोड़ने के लिए उत्सुक था। यह तेजी से औद्योगिकीकरण और तेज आर्थिक विकास की ओर देख रहा था। स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर हमारे पास कुछ बड़े पैमाने के उद्योग थे, विशेष रूप से सूती कपड़ा, इस्पात और कुछ हद तक जूट। औद्योगीकरण का मूल, यानी पूंजीगत सामान उद्योग, लगभग पूरी तरह से गायब था। आर्थिक नियोजन की शुरुआत के साथ (पहली पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1951 को शुरू हुई), हमने एक ऐसा रास्ता चुना जिसका मुख्य उद्देश्य अतीत की विकृतियों को दूर करना था। आर्थिक नियोजन के पहले चार दशकों में बड़े पैमाने के

उद्योगों जैसे कि लोहा और इस्पात, इंजीनियरिंग, सीमेंट, उर्वरक आदि की उत्पादन क्षमता में तेजी से वृद्धि देखी गई। इसके बाद, और लोहा और इस्पात, और बिजली जैसे महत्वपूर्ण इनपुट की आसान उपलब्धता के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में, भारत में सफेद वस्तुओं के उद्योगों का अभूतपूर्व विकास हुआ है। हम संक्षेप में भारत में कुछ महत्वपूर्ण बड़े पैमाने के उद्योगों की आवश्यक विशेषताओं की समीक्षा करते हैं।

2.2 भारत के प्रमुख उद्योग चीनी उद्योग, वस्त्र उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग आदि भारतीय उद्योग का इतिहास:भारत औद्योगिक राष्ट्र नहीं हैं। यह मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला राष्ट्र हैं। आजादी से पहले भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था। आधुनिक उद्योगों या बड़े उद्योगो की स्थापना भारत में 19वीं शताब्दी के मध्य शुरू हुई। जब कलकत्ता व मुम्बई में यूरोपीय व्यवसायियों या उद्योगों के द्वारा सूती वस्त्र उद्योगो की स्थापना हुई। **प्रथम विश्व युद्ध** के परिणामस्वरूप गुजरात में सूती वस्त्र, बंगाल में जूट की वस्तुयें, उड़ीसा व बंगाल में कोयला उद्योग, असम में चाय उद्योग का विशेष विकास हुआ। उस समय सूती वस्त्र के अलावा शेष सभी उद्योगों पर विदेशियों का अधिकार था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद लौह-इस्पात, सीमेंट, कागज, शक्कर, कांच, वस्त्र, चमड़ा उद्योगों में उन्नति हुई। **दूसरे विश्वयुद्ध के समय भारत के ओद्यौगिक विकास के मार्ग में कई कठिनाईयां आयी जैसे:-**तकनीकी ज्ञान की कमी, यातायात के साधनों की कमी, बड़े उद्योगो को सरकार द्वारा हतोत्साहित करना। दोनो महायुद्धों के बीच आजादी से पहले उद्योगों का सर्वाधिक विकास हुआ। विश्व युद्ध के दौरान हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट कम्पनी, एल्युमिनियम उद्योग, अस्त्र-शस्त्र उद्योगों का विकास हुआ। विश्व युद्ध के दौरान हिन्दुस्तन एयर क्राफ्ट कम्पनी, एल्युमिनियम उद्योग, अस्त्र-शस्त्र उद्योग का विकास हुआ। रोजर मिशन की सिफारिश पर जो सन् 1940 में भारत आया था। इसने भारत के उद्योगों के विस्तार पर बल दिया था।

2.3 भारत के प्रमुख उद्योग के प्रकार (Important Industries in India)

- लौह एवं इस्पात उद्योग (Iron and Steel Industry)
- सीमेन्ट उद्योग (Cement Industry)
- कोयला उद्योग (Coal Industry)
- पेट्रोलियम उद्योग (Petroleum Industry)
- कपड़ा उद्योग (Cloth Industry)
- रत्न एवं आभूषण उद्योग (Gems and Jewellery Industry)
- चीनी उद्योग (Sugar Industry)

लौह एवं इस्पात उद्योग (Iron and Steel Industry):लौह इस्पात उद्योग को किसी देश के अर्थिक विकास की धुरी माना जाता है। भारत में इसका सबसे पहला बड़े पैमाने का कारख़ाना 1907 में झारखण्ड राज्य में सुवर्णरेखा नदी की घाटी में साकची नामक स्थान पर जमशेदजी टाटा

द्वारा स्थापित किया गया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद **पंचवर्षीय योजनाओं** के अन्तर्गत इस पर काफ़ी ध्यान दिया गया और वर्तमान में 7 कारखानों द्वारा लौह इस्पात का उत्पादन किया जा रहा है। TISCO : Tata Iron & Steel Company limited, Jamshedpur) भारत का पहला सबसे बड़ा कारखाना जहां भारत का 20% इस्पात निर्मित होता हैं। इस उद्योग को बोकरो, जमशेदपुर, उड़ीसा से कोयला व लोहा प्राप्त होता हैं। इसकी स्थापना सन् 1907 में जमशेदजी टाटा द्वारा की गई थी। IISCO: Indian Iron Steel Company इसकी स्थापना सन् 1874 में की गई थी। यह भारत का सर्वाधिक लोहे की ढ़लाई करने वाला उद्योग हैं। बर्नपुर, हीरापुर, कुल्टी (पश्चिम बंगाल) में इसकी तीन इकाईयां हैं।

भारत के प्रमुख इस्पात संयंत्रो के नाम और उनका स्थान:

- **राउरकेला इस्पात संयंत्र:** इसकी स्थापना उड़ीसा में पश्चिम जर्मनी की सहायता से की गई थी।
- **भिलाई लौह-इस्पात संयंत्र:** इसकी स्थापना छत्तीसगढ़ में रूस की सहायता सें की गई थी।
- **दुर्गापुर इस्पात संयंत्र:** इसकी स्थापना पश्चिम बंगाल में ब्रिटेन की सहायता से की गई थी।
- **बोकारो लौह-इस्पात कारखाना:** इसकी स्थापना झारखण्ड में रूस की सहायता से की गई थी।
- **विजयनगर इस्पात उद्योग:** कर्नाटक में बेलारी जिले में।
- **विशाखापट्टनम इस्पात उद्योग:** आंध्रप्रदेश में।
- **संलयन इस्पात उद्योग संयंत्र:** तमिलनाडु में।
- **दातेरी इस्पात उद्योग:** उड़ीसा में।

2.3.2 कपड़ा उद्योग (Textile Industry): कपड़ा उद्योग का महत्त्व: भारत का सूती वस्त्र उद्योग देश का सबसे बड़ा 'संगठित उद्योग' है अतः संगठित उद्योगों में इसका प्रथम स्थान है। कपड़ा उद्योग भारत का कृषि के बाद सबसे बड़ा रोजगार प्रदान करने वाला उद्योग है। यही एकमात्र ऐसा उद्योग है जो कच्चे माल से लेकर तैयार माल के उत्पादन (जैसे सिले सिलाए वस्त्र) तक पूरी तरह आत्मनिर्भर है। कपड़ा उद्योग का महत्त्व निम्न आंकड़ों से समझा जा सकता हैकपड़ा उद्योग भारत के औद्योगिक और आर्थिक ढांचे में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में इसका 14% अंशदान है, जो इसे भारतीय उद्योगों में एक प्रमुख स्थान देता है। यह उद्योग न केवल उत्पादन के मामले में महत्वपूर्ण है, बल्कि सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में भी इसका योगदान 4% है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कपड़ा उद्योग भारत की आर्थिक वृद्धि में एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में कार्य करता है।कपड़ा उद्योग का कुल विनिर्मित औद्योगिक उत्पादन में 20% का हिस्सा है, जो यह दर्शाता है कि यह क्षेत्र भारतीय विनिर्माण क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा है। इसके अलावा, कपड़ा उद्योग का देश के कुल निर्यात में 24.6% का योगदान है, जो इसे वैश्विक बाजार में भी एक मजबूत प्रतिस्पर्धी

बनाता है। कपड़ा उद्योग न केवल निर्यात में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, बल्कि कुल आयात खर्च में भी इसका 3% अंशदान है, जो यह दर्शाता है कि यह उद्योग भारत के व्यापारिक संतुलन में भी योगदान देता है।रोजगार सृजन की दृष्टि से कपड़ा उद्योग का योगदान भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह उद्योग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लगभग 3.5 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान करता है, जिससे यह देश के सबसे बड़े नियोक्ताओं में से एक बन जाता है। इस प्रकार, कपड़ा उद्योग भारत की आर्थिक और सामाजिक संरचना में एक प्रमुख भूमिका निभाता है, जो देश के विकास में योगदान करता है और लाखों लोगों के जीवन यापन का साधन बनता है।

कपड़ा उद्योग की प्रारंभ से अब तक की स्थितिःभारत में सूती कपड़ा उद्योग की स्थापना और विकास का एक लंबा और महत्वपूर्ण इतिहास रहा है। भारत में पहली सूती कपड़ा मिल सन् 1818 में फोर्ट ग्लोस्टर, कलकत्ता में स्थापित की गई थी, लेकिन दुर्भाग्यवश यह मिल अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रही। इसके बाद, भारत में दूसरी मिल 'बंबई स्पिनिंग एंड वीविंग कम्पनी' सन् 1854 में बंबई में KGN Daber द्वारा स्थापित की गई। यह मिल सफल रही और इसके बाद सूती कपड़ा उद्योग लगातार विकसित होता गया, जो भारत के औद्योगिक विकास में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ।स्वतंत्रता के समय, 13 अगस्त 1947 को, भारत में कुल 394 सूती वस्त्र मिलें कार्यरत थीं। परंतु, विभाजन के समय, 14 अगस्त 1947 को, 14 सूती वस्त्र मिलें पाकिस्तान के क्षेत्र में चली गईं। इसके साथ ही, कपास के उत्पादन करने वाले कुल क्षेत्र का 40% भी पाकिस्तान के हिस्से में चला गया। इस विभाजन के कारण भारत को कपास के आयात पर निर्भर होना पड़ा, जिससे कपड़ा उद्योग के लिए नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुईं।1993 में, भारत सरकार ने कपड़ा विकास और विनियमन आदेश (Textiles Development and Regulation Order) के माध्यम से इस उद्योग को लाइसेंस मुक्त कर दिया, जिससे इस क्षेत्र में और तेजी से विकास होने लगा। वर्तमान में, देश का सूती कपड़ा उद्योग मुख्य रूप से महाराष्ट्र, तमिलनाडु, और गुजरात जैसे राज्यों में केंद्रित है। इन राज्यों में सूती कपड़ा उद्योग ने न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत किया है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है।भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन व सूती वस्त्र उद्योग के विकास के बीच बड़ा ही घनिष्ठ संबंध रहा है। बंगाल विभाजन (16 अक्टूबर, 1905) के विरुद्ध चले स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन (1920-22), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-31), भारत छोड़ो **आंदोलन** (1942), आदि ने विदेशी वस्त्रें के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्त्रें का प्रचार करके सूती वस्त्र उद्योग के विकास में भरपूर सहयोग दिया।कपड़ा मंत्रलय एवं कृषि मंत्रलय द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर 'कपास प्रौद्योगिकी मिशन' का शुभारंभ 21 फरवरी, 2000 को किया गया। जिसके अन्तर्गत कपास अनुसंधान एवं विकास, विपणन तथा प्रसंस्करण से संबंधित 4 लघु मिशन शामिल है।देश में सिले सिलाए वस्त्रें के

निर्यात सवंर्द्धन के लिए एक वस्त्र पार्क (Apparel Park) की स्थापना तमिलनाडु में तिरूवर एट्टीवरम्पलायम गांव में की गई है।300 करोड़ की अनुमानित लागत वाले देश के इस पहले वस्त्र पार्क का शिलान्यास 4 जुलाई, 2003 को किया गया। साथ ही इस गांव का नामकरण न्यू तिरूपुर किया गया है।

वस्त्र उद्योग के विकास के लिए सरकार ने निम्नलिखित योजनाएं प्रारंभ की हैं:

भारत में कपड़ा उद्योग के विकास और प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए विभिन्न योजनाओं और पहलों की शुरुआत की गई है। 1 अप्रैल 1999 को, कपड़ा मंत्रालय द्वारा प्रौद्योगिकी उन्नयन निधि योजना (TUFS) की शुरुआत की गई, जिसका उद्देश्य कपड़ा उद्योग में आधुनिक तकनीकों को अपनाने और उन्नत उत्पादन प्रक्रियाओं को बढ़ावा देना था। यह योजना 11वीं पंचवर्षीय योजना (11 FYP) के दौरान भी जारी रखने की स्वीकृति दी गई है, जिससे उद्योग में निरंतर तकनीकी प्रगति सुनिश्चित हो सके।इसके अतिरिक्त, हथकरघा गतिविधियों के विस्तार और उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अप्रैल 2000 में 'दीनदयाल हथकरघा प्रोत्साहन योजना' प्रारंभ की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य हथकरघा क्षेत्र को सशक्त बनाना और इसे आर्थिक रूप से सक्षम बनाना था, जिससे ग्रामीण कारीगरों और हस्तशिल्पकारों को बेहतर अवसर प्राप्त हो सकें।कपड़ा उद्योग की बुनियादी संभावनाओं और इसके बुनियादी ढांचे के विकास के लिए, अगस्त 2005 में सरकार ने एकीकृत कपड़ा पार्क योजना (SITP) को लागू किया। इस योजना के तहत, वर्ष 2007 तक 25 एकीकृत कपड़ा पार्कों की स्थापना का प्रस्ताव किया गया, जिसमें कुल ₹18,550 करोड़ का निवेश किया जाना था। इस योजना का उद्देश्य कपड़ा उद्योग के लिए समर्पित पार्कों का निर्माण करना था, जो उद्योग के समग्र विकास, रोजगार सृजन, और निर्यात वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

2.3.3. चीनी उद्योग (Sugar Industry): चीनी उद्योग का महत्त्व: भारत में सूती वस्त्र के बाद 'चीनी' ही दूसरा सबसे बड़ा देश का कृषि आधारित उद्योग है। यह उद्योग अपने साथ कई सह उत्पादों से संबंधित उद्योगों को विकसित करने की क्षमता रखता है।

चीनी उद्योग का प्रारंभ से अब तक की स्थितिःभारत में चीनी उद्योग का इतिहास और विकास अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वर्ष 1950-51 में, देश में कुल 138 चीनी मिलें थीं, जो उस समय के कृषि और औद्योगिक ढांचे के हिसाब से एक महत्वपूर्ण संख्या थी। समय के साथ, चीनी उद्योग में विस्तार हुआ, और 31 मार्च 2008 तक भारत में कुल चीनी मिलों की संख्या बढ़कर 615 हो गई। इसके बाद, 31 मार्च 2009 तक यह संख्या और भी बढ़कर 624 हो गई, जो चीनी उद्योग के तेजी से विकास को दर्शाता है।वर्ष 2010-11 में चीनी का उत्पादन रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया। सरकार ने इस वर्ष के लिए 23 मिलियन टन उत्पादन का अनुमान लगाया था, लेकिन ताजा आकलनों में यह उत्पादन 24.35

मिलियन टन रहने का अनुमान है, जो अब तक का सबसे अच्छा उत्पादन माना गया है। यह उपलब्धि भारत को चीनी उत्पादन में वैश्विक स्तर पर एक प्रमुख स्थान दिलाती है। भारत में चीनी की वार्षिक खपत लगभग 23 मिलियन टन है, और इस वर्ष के उत्पादन के 24-25 मिलियन टन के आसपास रहने की संभावना के चलते, चीनी के निर्यात की भी उम्मीद की जा रही है।महाराष्ट्र, भारत में चीनी उत्पादन में सबसे आगे है, और इसी राज्य में चीनी मिलों की सर्वाधिक संख्या (134) भी है। यह राज्य न केवल उत्पादन में बल्कि उद्योग के समग्र विकास में भी अग्रणी है। विश्व रैंकिंग में, चीनी उत्पादन में ब्राजील पहले स्थान पर है, जबकि भारत दूसरे स्थान पर है। हालांकि, चीनी के उपभोग में भारत दुनिया में शीर्ष स्थान पर है, जो देश की विशाल जनसंख्या और चीनी की मांग को दर्शाता है।भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज लगभग 15 टन है, जो अन्य प्रमुख उत्पादक राष्ट्रों की तुलना में काफी कम है। इसके अलावा, भारत में उत्पादित गन्ने में चीनी का प्रतिशत 9% से 10% के बीच होता है, जबकि अन्य देशों में यह प्रतिशत 13% से 14% तक होता है। ये आंकड़े भारत के चीनी उद्योग के सामने आने वाली चुनौतियों को रेखांकित करते हैं, जिनमें कृषि उत्पादन को बढ़ाने और चीनी की मात्रा में सुधार करने की आवश्यकता है।

चीनी उद्योग की समस्याएं:भारत के चीनी उद्योग के समक्ष कई चुनौतियाँ और समस्याएँ हैं जो इसके विकास और स्थिरता में बाधा उत्पन्न करती हैं। सबसे पहले, चीनी मिलें कुल गन्ना उत्पादन का केवल एक छोटा सा हिस्सा ही प्रभावी ढंग से उपयोग कर पाती हैं, जिससे गन्ने की बड़ी मात्रा बेकार चली जाती है। यह समस्या उत्पादकता और संसाधनों के अधिकतम उपयोग में बाधा उत्पन्न करती है। इसके अलावा, प्रति हेक्टेयर गन्ने की निम्न उत्पादकता भी एक गंभीर चिंता का विषय है, जो कृषि की प्रभावशीलता और उत्पादन क्षमता को सीमित करती है। उत्तम किस्म के गन्ने की कमी भी उद्योग की समस्याओं में से एक है। गुणवत्ता में कमी के कारण गन्ने से मिलने वाली चीनी की मात्रा कम हो जाती है, जिससे उत्पादन प्रभावित होता है। इसके साथ ही, उत्पादन लागतों में वृद्धि भी चीनी उद्योग के लिए एक बड़ी चुनौती है। बढ़ती लागतों के कारण मुनाफा घटता है, जिससे उद्योग के समक्ष वित्तीय दबाव बढ़ता है।मिलों के आधुनिकीकरण की समस्या भी एक प्रमुख चुनौती है। कई चीनी मिलें अभी भी पुराने उपकरण और प्रौद्योगिकियों का उपयोग कर रही हैं, जो उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता में सुधार को सीमित करती हैं। इसके अलावा, चीनी उद्योग एक मौसमी उद्योग है, जिसका संचालन मुख्य रूप से गन्ने की फसल के मौसम पर निर्भर करता है। इस मौसमी प्रकृति के कारण उद्योग में निरंतरता और स्थिरता बनाए रखना मुश्किल हो जाता है।अनुसंधान की कमी भी उद्योग के विकास में बाधा डालती है। नवीनतम तकनीकों और उन्नत गन्ने की किस्मों के विकास में अनुसंधान की कमी के कारण उत्पादन और गुणवत्ता में सुधार नहीं हो पाता। अंत में, चीनी मिलों द्वारा कृषकों को गन्ने के मूल्य का पूरा-पूरा भुगतान न कर पाना भी एक गंभीर समस्या है। इस वित्तीय अस्थिरता के कारण कृषक

आर्थिक संकट में आ जाते हैं, जिससे गन्ने की खेती में उनकी रुचि घटती है और उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता पर असर पड़ता है।इन सभी समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है ताकि भारत का चीनी उद्योग वैश्विक प्रतिस्पर्धा में मजबूती से खड़ा हो सके और किसानों और उद्योग दोनों के लिए लाभकारी साबित हो सके।

भारत के चीनी उद्योग के विकास और इसे अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। 20 अगस्त 1998 से सरकार ने चीनी मिलों की स्थापना को लाइसेंस मुक्त कर दिया, जिससे नए उद्यमियों के लिए इस उद्योग में प्रवेश करना आसान हो गया और उद्योग में निवेश को प्रोत्साहन मिला। इस कदम से उद्योग में प्रतिस्पर्धा बढ़ी और उत्पादन क्षमताओं में सुधार हुआ।

केंद्र सरकार ने गन्ने के मूल्य निर्धारण के लिए एक और महत्वपूर्ण पहल की। सांविधिक न्यूनतम कीमत (SMP) के स्थान पर उचित एवं लाभकारी मूल्य (FRP) को अपनाया गया, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसानों को गन्ने के लिए उचित मूल्य मिले और उनकी आय में वृद्धि हो। यह कदम किसानों के हितों की रक्षा के साथ-साथ चीनी उद्योग की स्थिरता के लिए भी महत्वपूर्ण साबित हुआ।

चीनी उद्योग के विकास और आधुनिकीकरण के लिए धन एकत्र करने के उद्देश्य से, 1982 में चीनी विकास निधि (SDF) की स्थापना की गई। इस कोष के माध्यम से चीनी मिलों को आधुनिकीकरण और मिल क्षेत्रों में गन्ने के विकास के लिए आसान शर्तों पर ऋण प्रदान किया जाता है। इससे उद्योग की प्रौद्योगिकी में सुधार हुआ और उत्पादन दक्षता में वृद्धि हुई।

इसके अलावा, सरकार ने चीनी के निर्यात को डीकनालाइज करने का भी निर्णय लिया है। इस पहल के तहत, चीनी मिलें सीधे ही चीनी का निर्यात कर सकती हैं, जिससे उन्हें अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक सीधी पहुंच मिली है और निर्यात के माध्यम से अधिक लाभ अर्जित करने का अवसर प्राप्त हुआ है। यह कदम उद्योग के वैश्विक विस्तार और आर्थिक समृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ है।

नोटः इससे पहले चीनी के निर्यात का कार्य केवल भारतीय चीनी उद्योग और सामान्य निर्यात-आयात निगम द्वारा संभव था। **महत्त्वपूर्ण संस्थानः**चीनी प्रौद्योगिकी के भारतीय संस्थान: कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारतीय चीनी अनुसंधान संस्थान: लखनऊ (उत्तर प्रदेश)भारतीय गन्ना प्रजनन संस्थान: कोयम्बटूर (तमिलनाडु)

2.4 शब्दावली

3. औद्योगिक उत्पादन (Industrial Production) - यह शब्द औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं की मात्रा और गुणवत्ता को संदर्भित करता है। इसमें विभिन्न उद्योगों द्वारा निर्मित सामान, जैसे कि वस्त्र, मशीनरी, और इलेक्ट्रॉनिक्स आदि शामिल होते हैं।

4. श्रमिक संघ (Trade Union) - यह एक संगठन है जो श्रमिकों के अधिकारों और हितों की रक्षा करने के लिए गठित होता है। श्रमिक संघ वेतन, काम की परिस्थितियों, और अन्य श्रम संबंधित मुद्दों पर प्रबंधन से बातचीत करते हैं।

2.5 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "भारतीय औद्योगिक नीतियाँ और उद्यमिता" - लेखक: रवींद्र कुमार
2. बाला, एम. (2003). भारत में केंद्रीय उद्योग: नीति, संरचना और विकास. शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली. अध्याय 3

- बोध प्रश्न

1. भारतीय उद्योगों के विकास की प्रमुख चरणों की चर्चा करें।
2. प्राचीन काल में भारतीय उद्योगों की क्या स्थिति थी?
3. औपनिवेशिक काल में भारतीय उद्योगों पर क्या प्रभाव पड़ा?
4. स्वतंत्रता के बाद भारतीय उद्योगों में क्या प्रमुख परिवर्तन हुए?

खंड -02 भारतीय उद्योग एवं औद्योगिक मजदूर

इकाई 03 व्यवस्थित उद्योग : औद्योगिक मजदूरी, मजदूरी नियमन

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1व्यवस्थित उद्योग औद्योगिक मजदूरी, मजदूरी नियमन

3.2 औपचारिक और अनौपचारिक रोजगार

3.3 शब्दावली

3.4 कुछ उपयोगी पुस्तके

3.0 प्रस्तावना

विकास अर्थशास्त्र के क्षेत्र में हाल के वर्षों में उभरने वाली सबसे महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक 'अनौपचारिक क्षेत्र' है। अनौपचारिक क्षेत्र से तात्पर्य उन गतिविधियों से है जिसमें कई, यदि अधिकांश नहीं, शहरी श्रमिक नियमित रूप से मौजूदा आर्थिक व्यवस्था में पूर्ण भागीदार के रूप में संलग्न होते हैं (पीटी, 1980; डेविस, 1979)। एक सामाजिक स्तर के रूप में, 'अनौपचारिक क्षेत्र' जनसंख्या के सबसे वंचित वर्गों को संदर्भित करता है, मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों में। रोजगार, आय और उपभोग की पहुंच और गुणवत्ता के संदर्भ में वंचना को विभिन्न रूप से परिभाषित किया जाता है। अनौपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों को आमतौर पर उनके औपचारिक क्षेत्र के समकक्षों की तुलना में कम पारिश्रमिक मिलता है। औपचारिक क्षेत्र में अपने उद्योग चलाने वाले अधिकांश उद्यमी औपचारिक नियमों और विनियमन के दायरे से बाहर हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोग अपने नियोक्ताओं की सनक का शिकार होते हैं।

3.1 व्यवस्थित उद्योग औद्योगिक मजदूरी, मजदूरी नियमन

उद्योग को उच्च स्तर के स्वचालन और विशेषज्ञता के साथ अच्छी तरह से संगठित कारखानों में माल के सामूहिक रूप से बड़े पैमाने पर विनिर्माण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हालांकि, यह उद्योग की एक सामान्य अवधारणा है, लेकिन इसमें अन्य व्यावसायिक गतिविधियों भी शामिल हो सकती हैं जो कृषि, परिवहन, आतिथ्य और इसी तरह की अन्य सेवाऐं प्रदान करती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 किसी भी व्यवसाय, व्यापार, उपक्रम, निर्माण या पेशा (अंग्रेजी में कॉलिंग या ऑकुपेशन (Occupation)) के रूप में "उद्योग को परिभाषित करता है, जिसका अर्थ है किसी व्यक्ति की नौकरी या व्यवसाय, जैसे कि किसी शिक्षक या चिकित्सक की नियुक्ति, कोई सेवा, सेवा, रोजगार, हस्तकला या औद्योगिक व्यवसाय या काम करने वाले लोगों का व्यवसाय आदि, एक उद्योग केवल तभी मौजूद होता है जब नियोक्ताओं (employee) और कर्मचारियों के बीच संबंध होता है, पूर्व व्यवसाय, व्यापार, उपक्रम, नियोक्ताओं की विनिर्माण व्यवसाय में लगा होता है. जबकि बाद वाला अर्थात

कर्मचारी पेशा सेवा, रोजगार, हस्तकला या औद्योगिक व्यवसाय में श्रमिकों के रूप में लगे होते हैं।

उद्योग और इसके प्रकारजब हम उद्योगों की प्रकृति और अवधारणा पर चर्चा करते हैं तो हम आम तौर पर विभिन्न प्रकार के उद्योगों के बारे में चर्चा करते हैं। यहां हम आपको उद्योग के कुछ प्रकारों का विवरण देंगे

1) प्राथमिक उद्योगप्राथमिक उद्योगों द्वारा हम उन लोगों का उल्लेख कर रहे हैं जो जमीन या समुद्र से कच्चे माल (जो प्राकृतिक उत्पाद है) निकालते हैं। तेल, लौह अयस्क, लकड़ी, मछली. खनन उत्खनन, मछली पकड़ने, वानिकी और खेती आदि ये सभी उद्योगों प्राथमिक के उदाहरण हैं।

2) द्वितीयक उद्योग (कभी-कभी विनिर्माण उद्योग के रूप में संदर्भित)इन उद्योगों में शारीरिक श्रम या मशीनों द्वारा कच्चे माल का निर्माण, साबुन, वस्त्र, खिलीने आदि जैसे उत्पादों का निर्माण शामिल है। द्वितीयक उद्योग अक्सर कार कारखाने की तरह असेंबली लाइन उत्पादन का उपयोग करते हैं। यहां अमेरिका में फोर्ड कार कंपनियों द्वारा कारों के उत्पादन के लिए सबसे पहले शुरू की गई कन्वेयर बेल्ट प्रणाली एक अच्छा उदाहरण है। इससे एक ओर औद्योगिक श्रमिक का अलगाव होता है, लेकिन दूसरी ओर पूंजीवादी मालिकों को बढ़ावा मिलता है। इस तरह के औद्योगिक उत्पादन को नए औद्योगिक समाज के उद्भव के रूप में देखा जा सकता है।

3) तृतीयक उद्योग (कभी-कभी सेवा उद्योग के रूप में संदर्भित)ये उद्योग न तो कच्चे माल का उत्पादन करते हैं और न ही कोई उत्पाद बनाते हैं।इसके बजाय वे लोगों और उद्योगों को सेवाएं प्रदान करते हैं।तृतीयक उद्योगों में डॉक्टर, दंत चिकित्सक, बैंक आदि जैसी सेवाएं शामिल हो सकती हैं।

4) चतुर्थ उद्योगये उद्योग उच्च तकनीकी उद्योगों के उपयोग को शामिल करते हैं।जो लोग इन कंपनियों के लिए काम करते हैं, वे अक्सर अपने कार्यक्षेत्र में अत्यधिक योग्य होते हैं।अनुसंधान और विकास कंपनियां इस क्षेत्र में सबसे आम प्रकार के व्यवसाय हैं।

5) पंचम (क्विनरी) उद्योगइन उद्योगों में वे शामिल हैं जो औद्योगिक और सरकारी निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।इन उद्योगों में उद्योग के अधिकारी, प्रबंधन, नौकरशाह और सरकार में निर्वाचित अधिकारी शामिल हैं। इस स्तर पर नीतियां और कानून बनाए और लागू किए जाते हैं।

3.2 औपचारिक और अनौपचारिक रोजगार

रोजगार संबंधों को समझने के लिए औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों के बीच अंतर महत्वपूर्ण है। औपचारिक क्षेत्र में श्रमिक कारखानों और वाणिज्यिक और सेवा प्रतिष्ठानों में लगे हुए हैं और कानूनी विनियमन के दायरे में हैं। इस क्षेत्र के लगभग 70 प्रतिशत श्रमिक सरकारी, अर्ध-सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में कार्यरत हैं। निजी क्षेत्र केवल 29

प्रतिशत श्रम को औपचारिक क्षेत्र में रोजगार प्रदान करता है औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के वेतन शहरी अनौपचारिक क्षेत्र में लगे लोगों की तुलना में काफी अधिक हैं। एक अध्ययन से पता चलता है कि एक औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक का औसत वेतन अनौपचारिक क्षेत्र में मजदूरी से 4 या 5 गुना अधिक है। इसके अलावा, श्रम कानूनों की एक श्रृंखला, नौकरियों, स्वास्थ्य सुविधाओं और सेवानिवृत्ति लाभों की सुरक्षा प्रदान करती है।अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) 'अनौपचारिक क्षेत्र को परिभाषित करता है जोकि रोजगार पैदा करने और संबंधित व्यक्तियों को प्राथमिक आय के साथ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में लगी इकाइयाँ शामिल हैं। इकाइयां उत्पादन के कारकों के रूप में श्रम और पूंजी के बीच कम या कोई विभाजन नहीं होने के साथ छोटे स्तर पर इकाइयों का संचालन करती हैं। ऐसे क्षेत्र में, श्रम संबंध ज्यादातर औपचारिक गारंटी के साथ अनुबंध की व्यवस्था के बजाय रोजगार, रिश्तेदारी या व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों की आकस्मिक शर्तों पर आधारित होते हैं। भारत में, असंगठित क्षेत्र में राष्ट्रीय उद्यम आयोग (NCEUS) ने संगठित या औपचारिक और असंगठित या अनौपचारिक रोजगार के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर किया। असंगठित श्रमिकों में असंगठित उद्यमों या घरों में काम करने वाले उद्योग आधारित हैं उन्हें नियोक्ताओं से सामाजिक सुरक्षा लाभ नहीं मिलता है ये उदाहरण के लिए नियमित श्रमिक नहीं है, चाय-स्टाल के मालिक, पान विक्रेता, गुब्बारे और खिलौने निर्माता आदि।

औपचारिक क्षेत्र में भी ऐसे श्रमिक हैं जो बिना किसी नियमित रोजगार और सामाजिक सुरक्षा लाभ के हैं। ऐसे श्रमिक विनिर्माण, निर्माण और व्यापार (थोक और खुदरा) में अनौपचारिक रोजगार का प्रमुख हिस्सा है। उनके पास लगभग 76 प्रतिशत श्रमिक हैं। अर्थव्यवस्था में लगभग 84.7 प्रतिशत नौकरियां अनौपचारिक क्षेत्र में, सार्वजनिक क्षेत्र में 4. 5 प्रतिशत, निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र में 2.5 प्रतिशत और 'औपचारिक' घरेलू क्षेत्र में 8.4 प्रतिशत है। 90 प्रतिशत से अधिक महिला कार्यकर्ता अनौपचारिक क्षेत्र में केंद्रित है। हिलाओं को अनौपचारिक क्षेत्र में लचीलेपन के कारण घरेलू नौकरों, रसोइयों आदि जैसे घरेलू कार्यों में अधिक प्रतिनिधित्व मिलता है, यह उनके लिए उनकी अन्य जरूरतों और मांगों को देखते हुए लाभकारी होता है। अवैतनिक श्रम अनौपचारिक क्षेत्र में काम कम पारिश्रमिक है और परिस्थितियाँ संगठित क्षेत्र से निम्न हैं उनके पास आर्थिक सुरक्षा और कानूनी सुरक्षा का अभाव है। इसलिए श्रमिकों के अधिकारों और सामाजिक सुरक्षा के अभाव के कारण उन श्रमिकों की बहुत अधिक भेदभाव है जो श्रम कानून या ट्रेड यूनियन संगठन की पहुंच से बाहर हैं। विशेष रूप से महिला कार्यकर्ता अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में अधिक कमजोर स्थिति में हैं।

3.3 शब्दावली

1. औद्योगिक विवाद (Industrial Dispute) - यह वह स्थिति है जब श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच विभिन्न मुद्दों पर असहमति या संघर्ष होता है, जैसे कि वेतन, काम की स्थितियाँ, और अनुबंध शर्तें।

2. उत्पादकता (Productivity) - यह शब्द कार्यक्षमता को संदर्भित करता है, जो किसी श्रमिक या उद्योग द्वारा उत्पादन की गई वस्तुओं की मात्रा और गुणवत्ता के आधार पर मापी जाती है। उच्च उत्पादकता का मतलब अधिक कार्यशीलता और कुशलता होता है।
3. श्रम अनुबंध (Labor Contract) - यह एक कानूनी समझौता है जो श्रमिक और नियोक्ता के बीच होता है, जिसमें काम की शर्तें, वेतन, और अन्य अधिकार और जिम्मेदारियाँ निर्धारित की जाती हैं।
4. मध्यस्थता (Mediation) - यह एक प्रक्रिया है जिसमें एक तटस्थ तीसरा पक्ष औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए बातचीत और समाधान का प्रयास करता है। मध्यस्थता का उद्देश्य विवाद को बिना टकराव के हल करना है।

3.4 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. रमेश, बाबू पी (2011) "विकास में असंगठित क्षेत्र की भूमिका" भारत में विकास: उदारीकरण से पहले और बाद की अवधि, एमएईडीएस, इग्नू।
2. सक्सेना, के.बी. (2009), "असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008: एक टिप्पणी", सामाजिक परिवर्तन, खंड 39, संख्या 2।

- बोध प्रश्न

1. अनौपचारिक क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?
2. आय और रोजगार में अनौपचारिक क्षेत्र का क्या योगदान है?
3. हाल के दिनों में खाद्य सुरक्षा से जुड़ी उन महत्वपूर्ण पहलों के नाम बताइए जो असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए लाभकारी हैं।

इकाई 04 सामाजिक सुरक्षा व श्रमकल्याण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 सामाजिक सुरक्षा व श्रमकल्याण
4.3 प्रमुख सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ:
4.4 श्र म कल्याण:
4.4.1मुख्य श्रम कल्याण कार्यक्रम
4.5 गिग और प्लेटफ़ॉर्म कार्यकर्ता
4.6 सामाजिक सुरक्षा संहिता का महत्वयह
4.7 सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 प्रमुख मुद्दे
4.8 श्रम कल्याण और कानून
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 कुछ उपयोगी पुस्तके

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

1. सामाजिक सुरक्षा के विकास का पता लगाना
2. सामाजिक सुरक्षा उपायों की आवश्यकता; और
3. सामाजिक सुरक्षा उपायों से संबंधित सरकारों के प्रयासों और योजनाओं, कानूनों का विश्लेषण करना

4.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) सामाजिक सुरक्षा को "सुरक्षा के रूप में परिभाषित करता है जो समाज उचित संगठन के माध्यम से कुछ जोखिमों के खिलाफ प्रदान करता है, जिनसे उसके सदस्य हमेशा प्रभावित होते हैं। ये जोखिम अनिवार्य रूप से आकस्मिकताएं हैं, जिनके खिलाफ छोटे साधनों वाला व्यक्ति अकेले अपनी क्षमता या दूरदर्शिता से या अपने साथियों के साथ निजी संयोजन में भी प्रभावी ढंग से नहीं लड़ सकता है। इसलिए सामाजिक सुरक्षा के तंत्र में तर्कसंगत योजनाबद्ध न्याय के साथ प्रकृति और आर्थिक गतिविधियों के अंधे अन्याय का प्रतिकार करना शामिल है, जिसमें इसे कम करने के लिए उदारता का स्पर्श भी शामिल है।" ILO की यह परिभाषा किसी व्यक्ति या उसके परिवार को आकस्मिक गरीबी में गिरने से बचाने के लिए सहायता प्रदान करने

पर स्पष्ट और केंद्रित है, जिसका अर्थ है कि व्यक्ति अन्यथा गरीब नहीं है, बल्कि आकस्मिकता के लिए है।

4.2 सामाजिक सुरक्षा व श्रमकल्याण

भारतीय संसद ने, भारत में 44 श्रम संहिताओं को तर्कसंगत बनाने के प्रयास में, उन्हें चार श्रम संहिताओं में समेकित किया और 2020 तक उन्हें अधिनियमित किया। चार श्रम संहिताएं मजदूरी संहिता, 2019 हैं ; औद्योगिक संबंध संहिता, 2020; सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020; और व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थितियों पर संहिता, 2020। यह राजनीति और शासन, सामाजिक मुद्दों, श्रम मुद्दों आदि सहित कई दृष्टिकोणों से आईएएस परीक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है।

"सामाजिक सुरक्षा और श्रमकल्याण" का विषय उन उपायों और नीतियों पर केंद्रित है जो श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य, और समग्र कल्याण को सुनिश्चित करते हैं। यह अध्याय श्रमिकों के लिए उपलब्ध विभिन्न प्रकार की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं और श्रम कल्याण कार्यक्रमों पर प्रकाश डालता है। सामाजिक सुरक्षा वह प्रणाली है जिसके तहत सरकार या अन्य संस्थाएँ श्रमिकों और उनके परिवारों को वित्तीय और सामाजिक सहायता प्रदान करती हैं। इसका उद्देश्य श्रमिकों को जीवन के विभिन्न जोखिमों जैसे बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, और बुढ़ापे से सुरक्षा प्रदान करना है।

4.3प्रमुख सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ:

- भविष्य निधि (Provident Fund): सेवानिवृत्ति के बाद आर्थिक सुरक्षा के लिए।
- कर्मचारी राज्य बीमा (Employees' State Insurance, ESI): चिकित्सा, नकद लाभ, मातृत्व लाभ, और अन्य स्वास्थ्य सेवाएँ।
- ग्रेच्युटी (Gratuity): सेवा के अंत में एकमुश्त राशि।
- पेंशन योजनाएँ: वृद्धावस्था में नियमित आय।\
- बेरोजगारी बीमा: नौकरी खोने पर वित्तीय सहायता।

4.4 श्रम कल्याण: श्रम कल्याण का तात्पर्य उन सभी उपायों से है जो श्रमिकों के जीवन और कार्य स्थितियों को सुधारने के लिए उठाए जाते हैं। इसका उद्देश्य श्रमिकों के शारीरिक, मानसिक, और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देना है।

4.4.1मुख्य श्रम कल्याण कार्यक्रम:श्रमिकों के कल्याण के लिए सरकार और उद्योगों द्वारा कई महत्वपूर्ण प्रयास किए जाते हैं, जो उनके जीवन को बेहतर बनाने और कार्यस्थल पर उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से होते हैं। स्वास्थ्य और सुरक्षा मानकों का पालन कार्यस्थल पर अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह श्रमिकों की शारीरिक सुरक्षा और उनके कार्य के वातावरण को सुरक्षित बनाने में मदद करता है। इसके अलावा, श्रमिकों के लिए उचित आवास सुविधा प्रदान करना भी एक महत्वपूर्ण कदम है, जिससे उन्हें अपने कार्यस्थल के निकट रहने का अवसर मिलता है और उनका जीवन स्तर सुधरता है।शिक्षा और प्रशिक्षण भी श्रमिक कल्याण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके अंतर्गत न केवल श्रमिकों को, बल्कि उनके बच्चों

को भी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, जिससे वे भविष्य में बेहतर अवसर प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही, श्रमिकों के लिए मनोरंजन और सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन भी आवश्यक है, क्योंकि इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है और कार्य के प्रति उनका उत्साह बना रहता है।परिवार कल्याण के अंतर्गत, श्रमिकों के परिवारों के लिए स्वास्थ्य और कल्याण सेवाओं का प्रावधान किया जाता है। यह श्रमिकों के परिवारों की सुरक्षा और स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है, जिससे श्रमिक तनावमुक्त होकर अपने काम पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।श्रम कल्याण के कुछ उदाहरणों में वर्कर्स वेलफेयर फंड्स शामिल हैं, जो विशेष रूप से निर्माण और खदान उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए बनाए गए हैं। इसके अलावा, श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए सामुदायिक केंद्र और क्लब भी स्थापित किए जाते हैं, जो उनके सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में सहायक होते हैं। स्वास्थ्य शिविर भी श्रमिक कल्याण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जहाँ श्रमिकों के स्वास्थ्य की नियमित जांच की जाती है और उन्हें मुफ्त चिकित्सा सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। ये सभी प्रयास श्रमिकों के जीवन को समृद्ध बनाने और उनके कार्य के वातावरण को सुरक्षित और स्वस्थ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।सामाजिक सुरक्षा और श्रम कल्याण श्रमिकों की जीवन गुणवत्ता और कार्य स्थितियों में सुधार के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन नीतियों और योजनाओं का उद्देश्य श्रमिकों को वित्तीय सुरक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, और समग्र कल्याण प्रदान करना है, जिससे वे अपने जीवन को सुरक्षित और संतोषजनक बना सकें। इसके लिए सरकार, नियोक्ताओं, और श्रमिक संघों के बीच समन्वय और सहयोग आवश्यक है।

सामाजिक सुरक्षा पर संहिता: सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 संगठित या असंगठित या किसी अन्य क्षेत्र के सभी कर्मचारियों और श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लक्ष्य के साथ सामाजिक सुरक्षा से संबंधित कानूनों में संशोधन और समेकित करने के लिए एक संहिता है।**सामाजिक सुरक्षा से तात्पर्य वृद्धावस्था, मातृत्व या दुर्घटनाओं जैसी कुछ आकस्मिकताओं के मामले में स्वास्थ्य देखभाल और आय सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए श्रमिकों को प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों से है।**यह अधिनियम सामाजिक सुरक्षा से संबंधित नौ केंद्रीय श्रम अधिनियमों को समाहित करता है।इसने कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948, कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952, रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959, मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 को समेकित किया। , ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972, सिने श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, 1981, भवन और अन्य निर्माण श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम, 1996, असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008।**सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 के प्रमुख प्रावधान**अंतर-राज्य प्रवासी श्रमिकों, निर्माण श्रमिकों, फिल्म उद्योग श्रमिकों और मंच श्रमिकों को शामिल करने के लिए कर्मचारियों की परिभाषा का विस्तार किया गया है। इसमें श्रमिकों की सभी तीन श्रेणियों - असंगठित श्रमिक, गिग श्रमिक और प्लेटफ़ॉर्म श्रमिक - के पंजीकरण का प्रावधान है। गिग श्रमिक "पारंपरिक नियोक्ता-कर्मचारी संबंध" से

बाहर के श्रमिकों को संदर्भित करते हैं।प्लेटफ़ॉर्म कर्मचारी वे हैं जो "पारंपरिक नियोक्ता-कर्मचारी संबंध" से बाहर हैं और ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से संगठनों या व्यक्तियों तक पहुंचते हैं और भुगतान के लिए सेवाएं प्रदान करते हैं।

4.5 गिग और प्लेटफ़ॉर्म कार्यकर्ता: एक असंगठित श्रमिक को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो असंगठित क्षेत्र में काम करता है, और इसमें औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947, या विधेयक के अन्य प्रावधानों (जैसे भविष्य निधि या ग्रेच्युटी) के अंतर्गत नहीं आने वाले श्रमिक शामिल हैं। इसमें स्व-रोजगार वाले श्रमिक भी शामिल हैं।श्रमिकों को इन लाभों का भुगतान करने के लिए एक सामाजिक सुरक्षा कोष बनाया जाएगा और इसे केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा और सीएसआर फंडिंग के माध्यम से वित्त पोषित किया जाएगा। एग्रीगेटर्स जो गिग श्रमिकों को रोजगार देने वाले डिजिटल मध्यस्थ हैं, उन्हें इस सामाजिक सुरक्षा निधि के उद्देश्य के लिए अपने वार्षिक कारोबार का कम से कम 1-2 प्रतिशत (श्रमिकों को देय राशि का 5 प्रतिशत से अधिक नहीं) अलग रखना होगा।सरकार असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों (जैसे घर-आधारित और स्व-रोज़गार श्रमिकों), गिग श्रमिकों और प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों के लिए योजनाओं को अधिसूचित कर सकती है।संहिता एक 'राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा बोर्ड' की स्थापना का भी प्रावधान करती है। बोर्ड के कार्यों में केंद्र सरकार को योजनाओं की सिफारिश करना और विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए योजनाओं की निगरानी करना, संहिता के प्रशासन से संबंधित मामलों पर सरकार को सलाह देना शामिल है।

4.6सामाजिक सुरक्षा संहिता का महत्वयह संहिता पिछले विधानों का एक समेकन मात्र होने से बहुत दूर है। इसने कवरेज को बढ़ाया है, संगठित/असंगठित क्षेत्रों के सभी श्रमिकों को लाभ पहुंचाया है, न्यूनतम शासन के तहत अधिकतम लाभ प्रदान करने की अवधारणा पेश की है और चार श्रम संहिताओं में दृष्टिकोण में एकरूपता को दर्शाता है।

उन्नत कवरेज:ई-कॉमर्स पर फलने-फूलने वाले नए जमाने के व्यवसायों ने नए प्रकार की नौकरियां पैदा की हैं। इन नए व्यवसायों के कुछ कर्मचारी किसी भी मौजूदा कानून के अंतर्गत कवर नहीं थे। नया सामाजिक सुरक्षा कोड गिग श्रमिकों और प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों सहित सभी प्रकार के श्रमिकों के पंजीकरण का प्रावधान करके सामाजिक सुरक्षा के दायरे का विस्तार करता है। पारंपरिक नियोक्ता-कर्मचारी व्यवस्था के दायरे से बाहर काम के गैर-पारंपरिक रूपों की इसकी मान्यता उत्साहजनक है क्योंकि स्व-रोज़गार, गिग और प्लेटफ़ॉर्म कार्य की ओर वैश्विक बदलाव हो रहा है।गिग श्रमिक अब जीवन और विकलांगता कवरेज, मातृत्व लाभ, पेंशन आदि के पात्र बन जाएंगे।संहिता ने अनुबंध कर्मचारियों के अलावा असंगठित क्षेत्र, निश्चित अवधि के कर्मचारियों, अंतर-राज्य प्रवासी श्रमिकों आदि को शामिल करके कवरेज का विस्तार किया है।इसलिए, कवरेज के संदर्भ में, दायरा बढ़ाया गया है।सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 इन श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के दायरे में लाती है, जिसमें जीवन बीमा और विकलांगता बीमा, स्वास्थ्य और मातृत्व लाभ, भविष्य निधि और कौशल उन्नयन आदि शामिल हैं।

निश्चित अवधि के कर्मचारियों का ख्याल रखना:कोड निश्चित अवधि के अनुबंध श्रमिकों को कवर करने के लिए दायरे का विस्तार करता है जो अब ग्रेच्युटी के लिए पात्र होंगे; जबकि पहले केवल वे कर्मचारी ही इसके दायरे में आते थे जो स्थायी थे।ग्रेच्युटी को जन्म देने वाली घटनाएं सेवानिवृत्ति, सेवानिवृत्ति, इस्तीफा, मृत्यु या दुर्घटना या बीमारी के कारण विकलांगता या निश्चित अवधि के रोजगार के तहत अनुबंध की समाप्ति या केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित किसी भी घटना के घटित होने पर हैं।'निश्चित अवधि के रोजगार की समाप्ति' को शामिल करने से, निश्चित अवधि के अनुबंध कर्मचारी ग्रेच्युटी के पात्र बन जाएंगे और यह एक स्वागत योग्य कदम है।

दंड प्रावधान:किसी कानून को लागू करने की ताकत अनुपालन में आसानी के साथ-साथ गैर-अनुपालन को रोकने वाले दंड में भी निहित है। संहिता यह सब पकड़ लेती है।संहिता में कर्मचारियों को ग्रेच्युटी का भुगतान करने में विफलता या योगदान का भुगतान करने में विफलता के मामले में दंडात्मक प्रावधान शामिल हैं।

डिजिटलीकरण:अधिनियम के अनुसार, सभी रिकॉर्ड और रिटर्न को इलेक्ट्रॉनिक रूप से बनाए रखा जाना चाहिए। डेटा के डिजिटलीकरण से सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न हितधारकों/निधियों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान में मदद मिलेगी, अनुपालन सुनिश्चित होगा और शासन की सुविधा भी मिलेगी।

समान परिभाषाएँ:वर्तमान नियमों में अस्पष्टता को देखते हुए सामाजिक सुरक्षा लाभ के उद्देश्य से मजदूरी निर्धारित करने में एकरूपता कोड का एक और मुख्य आकर्षण है।इसने वेतन के लिए एक विस्तृत परिभाषा प्रदान की है। सामाजिक सुरक्षा लाभों को कम करने के लिए वेतन की अनुचित संरचना को हतोत्साहित करने के लिए अधिकतम सीमा के साथ विशिष्ट बहिष्करण प्रदान किए गए हैं।

परामर्शी दृष्टिकोण:संहिता अधिकारियों के लिए एक सुविधाजनक दृष्टिकोण लेकर आई है। निरीक्षकों की मौजूदा भूमिका के विपरीत, संहिता निरीक्षक-सह-सुविधाकर्ता की एक बढ़ी हुई भूमिका प्रदान करती है जिसके तहत नियोक्ता अनुपालन बढ़ाने के लिए समर्थन और सलाह मांग सकते हैं। **4.7 सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 प्रमुख मुद्दे** कोड में कुछ लाभों को अनिवार्य बनाने के लिए प्रतिष्ठान के आकार के आधार पर सीमाएँ बरकरार रखी गई हैं। पेंशन और चिकित्सा बीमा जैसे लाभ, केवल न्यूनतम कर्मचारियों की संख्या (जैसे 10 या 20 कर्मचारी) वाले प्रतिष्ठानों के लिए अनिवार्य हैं। श्रमिकों की अन्य सभी श्रेणियां (यानी, असंगठित श्रमिक), जैसे कि 10 से कम कर्मचारियों वाले प्रतिष्ठानों में काम करने वाले और स्व-रोज़गार श्रमिकों को सरकार द्वारा अधिसूचित विवेकाधीन योजनाओं द्वारा कवर किया जा सकता है। इस प्रकार, बड़ी संख्या में श्रमिकों को बाहर रखा जा सकता है।

यह संहिता अर्जित वेतन की राशि के आधार पर एक ही प्रतिष्ठान के कर्मचारियों के साथ अलग-अलग व्यवहार करना जारी रखती है। उदाहरण के लिए, भविष्य निधि, पेंशन और चिकित्सा बीमा लाभ केवल पात्र प्रतिष्ठानों में एक निश्चित सीमा (जैसा कि सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है) से ऊपर कमाने वाले कर्मचारियों के लिए अनिवार्य हैं।यह कोड

सामाजिक सुरक्षा लाभों के वितरण के लिए मौजूदा खंडित व्यवस्था को बरकरार रखता है। इनमें शामिल हैं: (i) ईपीएफ, ईपीएस और ईडीएलआई योजनाओं को प्रशासित करने के लिए एक केंद्रीय न्यासी बोर्ड, (ii) ईएसआई योजना को प्रशासित करने के लिए एक कर्मचारी राज्य बीमा निगम, (iii) योजनाओं को प्रशासित करने के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय सामाजिक सुरक्षा बोर्ड असंगठित श्रमिक, और (iv) निर्माण श्रमिकों के लिए उपकर-आधारित श्रम कल्याण बोर्ड।

गिग श्रमिकों और प्लेटफ़ॉर्म श्रमिकों पर प्रावधान अस्पष्ट हैं:कोड गिग वर्कर, प्लेटफ़ॉर्म वर्कर के लिए परिभाषाएँ प्रस्तुत करता है और इन सभी श्रेणियों के श्रमिकों के लिए अलग-अलग योजनाओं को अनिवार्य करता है। हालाँकि, उनकी परिभाषाओं के बीच कुछ ओवरलैप हो सकता है। परिभाषाओं में इस तरह के ओवरलैप के साथ, यह स्पष्ट नहीं है कि इन श्रेणियों के श्रमिकों के लिए विशिष्ट योजनाएं कैसे लागू होंगी।

निश्चित अवधि के श्रमिकों के लिए ग्रेच्युटी पर प्रावधान अस्पष्ट:सामाजिक सुरक्षा संहिता और औद्योगिक संबंध संहिता, 2020 में निश्चित अवधि के श्रमिकों के लिए ग्रेच्युटी पर अलग-अलग प्रावधान हैं और यह स्पष्ट नहीं है कि एक वर्ष से कम के अनुबंध वाला निश्चित अवधि का कर्मचारी संहिता के तहत ग्रेच्युटी का हकदार होगा या नहीं। सामाजिक सुरक्षा, 2020।

आधार को अनिवार्य रूप से जोड़ना सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लंघन हो सकता है:कोड किसी कर्मचारी या श्रमिक (असंगठित श्रमिक सहित) को सामाजिक सुरक्षा लाभ प्राप्त करने के लिए अपना आधार नंबर प्रदान करना अनिवार्य करता है। यह पुट्टस्वामी मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लंघन हो सकता है ।

अपने फैसले में कोर्ट ने फैसला सुनाया था कि आधार कार्ड/नंबर को केवल भारत की संचित निधि से होने वाली सब्सिडी, लाभ या सेवा पर खर्च के लिए अनिवार्य किया जा सकता है। चूंकि ग्रेच्युटी और भविष्य निधि (पीएफ) जैसी कुछ पात्रताएं नियोक्ताओं और कर्मचारियों द्वारा वित्त पोषित की जाती हैं, न कि भारत की समेकित निधि द्वारा, ऐसी पात्रताओं का लाभ उठाने के लिए आधार को अनिवार्य बनाना फैसले का उल्लंघन हो सकता है।

सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 स्पष्ट रूप से अनुपालन में आसानी और सार्वभौमिकता के दृष्टिकोण से सही दिशा में एक कदम है क्योंकि यह हमारी कामकाजी आबादी के एक बड़े हिस्से को कवर करता है। श्रमिकों के कल्याण की निगरानी के लिए कोड को अलग से प्रशासित करने के लिए एक नियामक प्राधिकरण फायदेमंद होगा और यह योजनाओं की प्रभावकारिता को बेहतर ढंग से ट्रैक कर सकता है।

4.8 श्रम कल्याण और कानून

श्रम विधान का उद्देश्य दो गुना है (।) औद्योगिक श्रम की सेवा शर्तों में सुधार करके उन्हें जीवन की बुनियादी सुविधाएं प्रदान करके और (ii) औद्योगिक शांति लाने के लिए जो देश की उत्पादक गतिविधि को गति प्रदान कर सके जो इसकी समृद्धि में वृद्धि कर सके।

भारत के संविधान के तहत, श्रम समवर्ती सूची में एक विषय है जहां केंद्र और राज्य सरकारों दोनों को विधान बनाने का अधिकार है। इसके परिणामस्वरूप कई श्रम कानून बन गए हैं, जो श्रम के विभिन्न पहलुओं अर्थात् व्यावसायिक स्वास्थ्य, सुरक्षा, रोजगार प्रशिक्षुओं के प्रशिक्षण, निर्धारण, समीक्षा और न्यूनतम मजदूरी के संशोधन, मजदूरी के भुगतान के तरीके, मुआवजे के भुगतान के लिए लागू किए गए हैं। ऐसे श्रमिक जिनकी चोटें या मृत्यु हुई थी या विकलांगता, बंधुआ मजदूरी, अनुबंध श्रम, महिला श्रम और बाल श्रम, औद्योगिक विवादों का समाधान और स्थगन, भविष्य निधि जैसे सामाजिक सुरक्षा का प्रावधान, कर्मचारी राज्य बीमा, ग्रेच्युटी भुगतान का प्रावधान श्रमिकों के लिए काम की परिस्थितियों को बोनस और विनियमित करना ये श्रम कानून भारत के संविधान के प्रावधानों से उनके मूल, अधिकार और शक्ति को प्राप्त करते हैं। मानव श्रम की गरिमा की प्रासंगिकता और मानव के श्रम की रक्षा और सुरक्षा की आवश्यकता के रूप में मानव को अध्याय III (अनुच्छेद 16, 19, 23 और 24) और अध्याय IV (अनुच्छेद 39, 41, 42, 42) में निहित किया गया है। भारत के संविधान के 43 43 और 54) मौलिक अधिकारों और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अनुरूप है। श्रम कानून सुधार एक सतत प्रक्रिया है और सरकार लगातार गतिशील आर्थिक माहौल में श्रमिकों की उभरती जरूरतों के जवाब में नए कानूनों को पेश कर रही है और मौजूदा कानून को संशोधित कर रही है।

श्रम कल्याण एक व्यापक अवधारणा है जो कारखाने के परिसर के भीतर और बाहर एक व्यक्ति या एक समूह के रहने वाले व्यक्ति की स्थिति का कुल पर्यावरण पारिस्थितिक आर्थिक और सामाजिक सदभाव के साथ स्वीकार्य बातचीत में उल्लेख करती है। कर्मचारियों के कल्याण, श्रम कल्याण और कर्मचारी कल्याण जैसी शर्तें आम तौर पर कर्मचारियों को उनके वेतन के अलावा प्रदान की जाने वाली विभिन्न सुविधाओं और लाभों को संबोधित करने के लिए एक दूसरे के विकल्प के रूप में उपयोग की जाती हैं। श्रम कल्याण का पहलू कल्याण के सामाजिक और आर्थिक दोनों पहलुओं का गठन करता है। यह कल्याण और उत्पादकता के लिए औद्योगिक संबंधों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रीय श्रम आयोग का कहना है कि श्रम कल्याण का मॉडल अनिवार्य रूप से गतिशील है। इसकी व्याख्या एक देश से दूसरे देश में आर्थिक विकास और श्रमिक वर्ग के सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण और विकास के संबंध में बदलती है। यह कहा जा सकता है कि श्रम कल्याण सरकारी प्राधिकरणों, नियोक्ताओं, स्वैच्छिक संगठनों और ट्रेड यूनियनों की उन सभी गतिविधियों को दर्शाता है जो श्रम वर्ग को बेहतर सामाजिक परिस्थितियों में अच्छी तरह से जीने और अधिक उत्पादक होने में मदद करते हैं। इसमें श्रम की सामाजिक स्थिति, सुरक्षा, स्वास्थ्य, कल्याण और औद्योगिक उत्पादकता में सुधार के प्रावधान है। आम तौर पर श्रम कल्याण कार्यों को नीचे दिए गए पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

1) केंद्र सरकार द्वारा लागू विभिन्न कानूनी विधानों द्वारा वैधानिक प्रावधान,

2) राज्य सरकार की एजेंसियों द्वारा दिए गए कल्याणकारी उपाय,

3) नियोक्ताओं द्वारा दिए गए कल्याणकारी उपाय,

4) ट्रेड यूनियनों द्वारा गजबूर कल्याणकारी उपाय, और

5) स्वैच्छिक सामाजिक एजेंसियों द्वारा विभिन्न कल्याणकारी कार्य किए गए।

केंद्र और राज्य सरकारों ने भी कानून बनाए हैं और सामाजिक सुरक्षा और श्रमिकों की विशिष्ट श्रेणियों के कल्याण के लिए स्थापित योजनाएं हैं सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक सुरक्षा कानून निम्नलिखित हैं:

i) कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923.

ii) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948

iii) कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1953 और

iv) मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961,

v) ग्रेच्युटी अधिनियम का भुगतान, 1972

श्रम कानून सुधारों के हिस्से के रूप में, सरकार ने मजदूरी पर चार श्रम संहिताओं के प्रारूपण के लिए कदम उठाए हैं, औद्योगिक संबंध, सामाजिक सुरक्षा और कल्याण, और मौजूदा 44 केंद्रीय श्रम कानूनों के प्रासंगिक प्रावधानों को सरल, समाहित और तर्कसंगत बनाने के द्वारा क्रमशः सुरक्षा और कार्य की स्थिति ।1.6 औद्योगिक विवाद और औद्योगिक शांति के विषय पर केंद्रित यह अध्याय भारतीय श्रम कानून और उद्योगों में उत्पन्न होने वाले विवादों, उनके कारणों, और शांति बनाए रखने के उपायों पर विस्तार से चर्चा करता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय श्रम कानून को नियंत्रित करता है, और यह ट्रेड यूनियनों के साथ-साथ किसी भी उद्योग में कार्यरत व्यक्तिगत कामगारों से संबंधित है। यह अधिनियम भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के पारित होने से पहले के अंतिम विधायी अधिनियमों में से एक था।

4.9 सारांश

भारत में सामाजिक सुरक्षा नेटवर्क में सबसे गंभीर कमी असंगठित क्षेत्र के कार्यबल के लिए सामाजिक सुरक्षा उपायों की लगभग पूर्ण अनुपस्थिति है। जहाँ तक संगठित क्षेत्र के श्रमिकों का सवाल है, सरकार ने मातृत्व लाभ अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा, श्रमिक मुआवज़ा अधिनियम और अन्य विविध प्रावधानों जैसे विभिन्न सामाजिक सुरक्षा कानून बनाए हैं। असंगठित क्षेत्र के श्रमिक जो कुल श्रम शक्ति का लगभग 92 प्रतिशत (एनसीएल, 2002) बनाते हैं, उनके लिए सामाजिक सुरक्षा संरक्षण का लगभग अभाव है और हाल ही में इस समस्या का अध्ययन करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं।

4.10 शब्दावली

1. आधुनिकीकरण (Modernization) - यह शब्द उन प्रक्रियाओं और तकनीकों को संदर्भित करता है जो पुराने उपकरणों और विधियों को नई, उन्नत तकनीकों से बदलने

के लिए अपनाई जाती हैं। इसका उद्देश्य उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता में सुधार करना होता है.

2. श्रमिक कल्याण (Worker Welfare) - यह श्रमिकों के जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के लिए किए गए प्रयासों को संदर्भित करता है, जैसे कि स्वास्थ्य सुविधाएं, शिक्षा, आवास, और सामाजिक सुरक्षा। श्रमिक कल्याण का उद्देश्य श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, और समृद्धि को सुनिश्चित करना होता है।

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. . "भारतीय उद्योग और श्रम: समस्याएँ और समाधान" - लेखक: मनीष यादव
2. हिरवे (1995).इन असंगठित क्षेत्र: कार्य सुरक्षा और सामाजिक संरक्षण, रीना झाबवाला
3. और आर.के.ए सुब्रमण्य (संपादक), न्यू डेली। सेज प्रकाशन

खंड -02 भारतीय उद्योग एवं औद्योगिक मजदूर

इकाई 05 औद्योगिक विवाद एवं औद्योगिक शांति

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 औद्योगिक विवाद
5.3 औद्योगिक विवादों के प्रभाव
5.4 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का अवलोकन
5.5 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947के उद्देश्यअधिनियम
5.6 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के संबंध में विवाद
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

5.0 उद्देश्य

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का प्राथमिक उद्देश्य संगठनों को विवादों के सभी रूपों से बचाना है, चाहे उनके स्रोत, परिमाण और निहितार्थ कुछ भी हों। यद्यपि नियोक्ता और कर्मचारियों के लक्ष्य, आवश्यकताएँ और हित एक दूसरे से मेल नहीं खाते, फिर भी औद्योगिक विवाद अधिनियम विवादों से बचने और औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिए एक तंत्र प्रदान करने का प्रयास करता है।

1. इस अधिनियम का प्राथमिक उद्देश्य किसी औद्योगिक उद्यम की शांति और सद्भाव को बनाए रखना है।
2. इस अधिनियम का उद्देश्य संगठन में विवाद से संबंधित जनशक्ति की हानि से बचकर उपलब्ध मानव संसाधन का बेहतर उपयोग सुनिश्चित करना है।
3. यह कर्मचारियों की शिकायतों और औद्योगिक तनावों को हड़ताल या तालाबंदी के रूप में नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच पूर्ण विकसित अशांति और टकराव में विकसित होने से रोकता है।
4. यह औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए एक तंत्र प्रदान करने और औद्योगिक न्याय सुनिश्चित करने का प्रयास करता है, जो स्थायी औद्योगिक शांति का एक आवश्यक तत्व है।
5. यह उन आकस्मिकताओं को इंगित करने का प्रयास करता है जब हड़ताल या तालाबंदी कानूनी रूप से लागू की जा सकती है।
6. यह हड़ताल या तालाबंदी को अवैध घोषित करने के आधारों को निर्दिष्ट करता है।
7. इस प्रकार यह अवैध हड़तालों और तालाबंदी तथा इसके परिणामस्वरूप काम और उत्पादन और आय में होने वाले नुकसान से बचने का प्रयास करता है।
8. यह छंटनी या छंटनी की स्थिति में कर्मचारियों को वित्तीय राहत प्रदान करने का प्रयास करता है।

5.1 प्रस्तावना

औद्योगिक विवाद मूलतः नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच एक या अधिक मुद्दों पर मतभेद है। विवाद किसी संगठन के औद्योगिक संबंध अभ्यास का मूल है। औद्योगिक संबंध अभ्यास का प्राथमिक उद्देश्य विवाद से बचना है। औद्योगिक संबंधों के विभिन्न पहलुओं को औद्योगिक विवाद और उसके परिणामस्वरूप होने वाली श्रमिक अशांति को रोकने के उद्देश्य से डिज़ाइन किया गया है। औद्योगिक विवाद आम तौर पर हड़ताल, तालाबंदी, धरना, धीमी गति से चलना और घेराव के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए, उन्हें कर्मचारियों की शिकायतों की तुरंत पहचान और उनके समाधान के लिए उचित रणनीतियों के विकास की आवश्यकता होती है। वास्तव में, शिकायतों का समय पर समाधान उन्हें औद्योगिक विवाद बनने से रोक सकता है। इसका उद्देश्य विवाद समाधान मंच के रूप में सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहित और सुव्यवस्थित करना है।

5.2 औद्योगिक विवाद वह स्थिति है जब मजदूर और नियोक्ता के बीच विभिन्न मुद्दों पर असहमति या संघर्ष होता है।

औद्योगिक विवादों के मुख्य कारण:

1. **वेतन और मजदूरी**: मजदूरों की वेतन वृद्धि, बोनस, और अन्य आर्थिक लाभों की मांग अक्सर विवाद का कारण बनती है।
2. **काम करने की स्थिति**: कार्यस्थल पर बेहतर सुविधाएं, सुरक्षा, और स्वच्छता की मांग भी विवाद का प्रमुख कारण है।
3. **प्रबंधन की नीतियाँ**: प्रबंधन द्वारा लागू की गई नीतियों और नियमों से असहमति भी विवाद को जन्म देती है।
4. **श्रम अनुबंध**: ठेका मजदूरों की समस्याएँ और स्थायी रोजगार की मांग भी औद्योगिक विवाद का एक प्रमुख कारण है।
5. **प्रचार और पदोन्नति**: पदोन्नति और विकास के अवसरों की कमी भी मजदूरों के असंतोष का कारण बनती है।

5.3औद्योगिक विवादों के प्रभाव:उत्पादन में गिरावट: विवाद के कारण उत्पादन प्रभावित होता है, जिससे उद्योग की उत्पादन क्षमता में गिरावट आती है।**आर्थिक हानि**: औद्योगिक विवादों के चलते उद्योग को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।**सामाजिक अस्थिरता**: विवाद के कारण समाज में अस्थिरता और तनाव उत्पन्न हो सकता है।**श्रम बाजार में अव्यवस्था**: विवादों के कारण श्रम बाजार में असंतुलन और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होती है।

औद्योगिक शांति का अर्थ है वह स्थिति जब उद्योग में श्रमिक और प्रबंधन के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध होते हैं और कोई विवाद नहीं होता। औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

1. **संचार**: श्रमिक और प्रबंधन के बीच स्पष्ट और खुले संचार का होना अत्यंत आवश्यक है, जिससे गलतफहमियों और विवादों को रोका जा सके।
2. **मध्यस्थता**: विवादों को सुलझाने के लिए तटस्थ पक्ष की सहायता लेना एक महत्वपूर्ण उपाय है, जो विवाद को बिना टकराव के हल करने में मदद करता है।

3. **सहयोग**: श्रमिक संघ और प्रबंधन के बीच सहयोग और भागीदारी से विवादों की संभावना को कम किया जा सकता है।
4. **श्रम कानूनों का अनुपालन**: श्रमिकों के अधिकारों और हितों की सुरक्षा के लिए कानूनों का सही अनुपालन करना आवश्यक है, जिससे श्रमिकों में विश्वास बढ़ता है।
5. **नियमित बैठकें**: श्रमिक और प्रबंधन के बीच नियमित बैठकें और संवाद से समस्याओं का समय रहते समाधान किया जा सकता है।
6. **प्रशिक्षण और विकास**: श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण और विकास के अवसर प्रदान करने से उनके कौशल में वृद्धि होती है और उनका मनोबल ऊंचा रहता है।

इन उपायों को अपनाकर औद्योगिक विवादों को कम किया जा सकता है और उद्योग में शांति और स्थिरता बनाए रखी जा सकती है। औद्योगिक विवाद और शांति उद्योगों की कार्यक्षमता और विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। औद्योगिक विवादों को प्रभावी ढंग से सुलझाने और औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिए नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच सहयोग, संवाद और आपसी समझ का होना आवश्यक है। इससे न केवल उद्योग का विकास होगा, बल्कि श्रमिकों की संतुष्टि और उत्पादकता भी बढ़ेगी।

5.4औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का अवलोकन औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय श्रम कानून को नियंत्रित करता है, जहाँ तक कि यह ट्रेड यूनियनों के साथ-साथ भारतीय मुख्य भूमि में किसी भी उद्योग में कार्यरत व्यक्तिगत श्रमिकों से संबंधित है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के पारित होने से पहले के अंतिम विधायी अधिनियमों में से एक था। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 वह अधिनियम है जो श्रम कानूनों को नियंत्रित करता है क्योंकि यह सभी कामगारों या भारतीय मुख्य भूमि पर कार्यरत सभी लोगों से संबंधित है। यह 1 अप्रैल 1947 को लागू हुआ। पूंजीपतियों या नियोक्ता और श्रमिकों के बीच हमेशा मतभेद रहता था और इस प्रकार, यह इन दोनों समूहों के बीच और भीतर बहुत सारे संघर्षों को जन्म देता है। इसलिए, इन मुद्दों को सरकार के ध्यान में लाया गया और इसलिए उन्होंने इस अधिनियम को पारित करने का फैसला किया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य पक्षों के बीच औद्योगिक विवादों में शांति और सद्भाव लाना और उनके मुद्दों को शांतिपूर्ण तरीके से हल करना था।

5.5औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947के उद्देश्यअधिनियम का मसौदा औद्योगिक विवादों की जांच और निपटान के लिए प्रावधान करने और सुलह, मध्यस्थता और न्यायनिर्णयन द्वारा औद्योगिक विवादों की जांच और निपटान के लिए तंत्र और प्रक्रिया प्रदान करके औद्योगिक शांति और सद्भाव को सुरक्षित करने के लिए तैयार किया गया था, जो क़ानून के तहत प्रदान किया गया है।यह अधिनियम "भारत में उद्योग में शांतिपूर्ण कार्य संस्कृति को बनाए रखने" के मुख्य उद्देश्य के साथ पारित किया गया था, जिसका उल्लेख क़ानून के उद्देश्यों और कारणों के विवरण के तहत किया गया है। अधिनियम यह भी बताता है:

1. काम बंद करने या छंटनी के कारण कामगार को मुआवजे के भुगतान का प्रावधान।

2. श्रमिकों की छँटनी या छंटनी या औद्योगिक प्रतिष्ठानों को बंद करने के लिए उपयुक्त सरकार की पूर्व अनुमति की प्रक्रिया
3. किसी नियोक्ता या ट्रेड यूनियन या श्रमिकों की ओर से अनुचित श्रम प्रथाओं के खिलाफ की जाने वाली कार्रवाई।

5.6औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के संबंध में विवाद

यह अधिनियम औद्योगिक विवादों की जांच और निपटान के लिए मशीनरी और प्रक्रिया प्रदान करने के लिए लागू किया गया था, जो आकार और क्षेत्र की परवाह किए बिना सभी पर लागू होता है। इसमें छंटनी, छंटनी (परिचालन के आकार में कमी) और उद्योग को बंद करने की शर्तों के संबंध में भी प्रावधान हैं।यह खंड अधिनियम के संबंध में विवाद उत्पन्न करता है, विशेषकर अध्याय VB के अनुसार। इस खंड के लिए पिछले कुछ वर्षों में कई संशोधन किए गए हैं। अध्याय निम्नलिखित बताता है:

1. यदि कोई औद्योगिक प्रतिष्ठान 50 से अधिक व्यक्तियों को रोजगार देता है, तो उसे उद्योग बंद करने से पहले उपयुक्त सरकार को बंद होने के कारणों का हवाला देते हुए 60 दिन का नोटिस देना होगा। 1982 में इसे बढ़ाकर 90 दिन कर दिया गया।
2. यदि प्रतिष्ठान में 300 से अधिक कर्मचारी कार्यरत हैं, तो उसे छँटनी, छँटनी और बंद करने की मंजूरी के संबंध में उचित सरकारी प्राधिकारी से पूर्व अनुमोदन लेना होगा। 1982 के संशोधन में इस सीमा को घटाकर 100 कर्मचारी कर दिया गया।

औद्योगिक विवाद अधिनियम के अध्याय VB के इन दो प्रावधानों की व्याख्या श्रम बाजार में कठोरता के रूप में की जाती है। इस प्रावधान का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कोई नियोक्ता अपनी इच्छा से किसी कर्मचारी को नौकरी पर नहीं रख सकता या निकाल नहीं सकता। ऐसी कोई भी कार्रवाई करने के लिए उन्हें श्रम आयुक्त से अनुमति लेनी होगी। यह विषय भी समवर्ती सूची के अंतर्गत है, यही कारण है कि अलग-अलग राज्यों ने और भी सख्त नियम और शर्तें बनाई हैं ताकि छंटनी, छंटनी और बंद करना और भी कठिन हो जाए।औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय उद्योगों में श्रम विवादों के समाधान और औद्योगिक शांति बनाए रखने के उद्देश्य से बनाया गया एक प्रमुख कानून है। इस अधिनियम के विभिन्न पहलुओं और इसके कार्यान्वयन से जुड़े विवादों को निम्नलिखित बिंदुओं में समझाया जा सकता है:

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारत में श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए एक महत्वपूर्ण कानून है। इसका उद्देश्य औद्योगिक शांति बनाए रखना और श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करना है। इस अधिनियम के तहत औद्योगिक विवादों को श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच किसी भी प्रकार का असहमति या संघर्ष माना जाता है। अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में विवादों की रोकथाम और समाधान के उपाय, मध्यस्थता और समझौता, श्रम न्यायालय, हड़ताल और तालाबंदी, और ध्यानार्थ अधिनियम शामिल हैं।विवादों को सुलझाने के लिए स्वतंत्र मध्यस्थों की नियुक्ति की जाती है और दोनों

पक्षों के बीच आपसी समझौते की व्यवस्था की जाती है। श्रम न्यायालयों की स्थापना की गई है, जो औद्योगिक विवादों को सुलझाने में मदद करते हैं और इनके निर्णयों का पालन अनिवार्य होता है। हड़ताल और तालाबंदी के मामले में, अधिनियम के तहत पूर्व सूचना देना आवश्यक होता है और अवैध हड़ताल और तालाबंदी पर दंड का प्रावधान है। ध्यानार्थ अधिनियम के तहत, किसी भी औद्योगिक विवाद को सरकार के ध्यान में लाया जा सकता है और आवश्यक कदम उठाए जा सकते हैं।अधिनियम के कार्यान्वयन में कई विवाद और चुनौतियाँ भी हैं। श्रमिकों को कभी-कभी लगता है कि उनके अधिकारों की पूरी तरह से रक्षा नहीं हो रही है, जबकि नियोक्ताओं का मानना है कि अधिनियम के कई प्रावधान उनके व्यवसाय के सुचारू संचालन में बाधा डालते हैं। न्यायिक प्रणाली की धीमी गति, अधिनियम की जटिलताएँ, और अनौपचारिक क्षेत्र में इसका प्रभावी रूप से लागू न होना कुछ प्रमुख चुनौतियाँ हैं। समय के साथ बदलती आवश्यकताओं को देखते हुए अधिनियम में संशोधन और सुधार की मांग की जाती रही है।औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय औद्योगिक संबंधों को संतुलित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके विभिन्न प्रावधान श्रमिकों और नियोक्ताओं दोनों के अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट करते हैं। हालांकि, इसके कार्यान्वयन में कई विवाद और चुनौतियाँ हैं, जिनका समाधान श्रम कानूनों में सुधार और प्रभावी नीति निर्माण के माध्यम से किया जा सकता है। श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच बेहतर संवाद और सहयोग से औद्योगिक शांति और उत्पादकता को बढ़ावा मिल सकता है।

उद्देश्य:औद्योगिक विवादों का समाधान और औद्योगिक शांति बनाए रखना भारतीय श्रम कानून का प्रमुख उद्देश्य है। इसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का उचित समाधान करना है। इसके अतिरिक्त, यह सुनिश्चित करना भी है कि श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा की जाए और उन्हें न्याय दिलाया जाए। औद्योगिक शांति और सौहार्द बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि विवादों को प्रभावी ढंग से हल किया जाए और सभी पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखें।

मुख्य प्रावधान:औद्योगिक विवादों की परिभाषा और इसके अंतर्गत आने वाले मुद्दों का विवरण यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार के विवाद औद्योगिक विवाद की श्रेणी में आते हैं और उन्हें किस प्रकार से सुलझाया जाना चाहिए। इसके तहत श्रम न्यायालयों की स्थापना की गई है, जो औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए विशेष रूप से जिम्मेदार होते हैं।मध्यस्थता और समझौता बोर्ड की व्यवस्था के माध्यम से विवादों को सुलझाने के प्रयास किए जाते हैं। यह प्रक्रिया एक तटस्थ तीसरे पक्ष की सहायता से विवादों का समाधान करती है, जिससे विवादों को बिना टकराव के हल किया जा सके। इसके अलावा, ध्यानार्थ अधिनियम के तहत विवादों को सरकार के ध्यान में लाने और आवश्यक कदम उठाने का प्रावधान है, जिससे सरकारी हस्तक्षेप के माध्यम से समस्याओं का समाधान किया जा सके।हड़ताल और तालाबंदी से संबंधित नियम और शर्तें भी इस अधिनियम में शामिल हैं, जो यह निर्धारित करती हैं कि हड़ताल और तालाबंदी के दौरान किस प्रकार की प्रक्रियाओं और शर्तों का पालन किया जाना

चाहिए। औद्योगिक विवाद अधिनियम से जुड़े विवादों का समाधान इस प्रकार के प्रावधानों के माध्यम से सुनिश्चित किया जाता है, ताकि औद्योगिक क्षेत्र में शांति और स्थिरता बनाए रखी जा सके।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के मुख्य प्रावधानों का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है:

1. विवादों की रोकथाम और समाधान के उपायअधिनियम के तहत औद्योगिक विवादों की रोकथाम और समाधान के लिए विभिन्न उपाय निर्धारित किए गए हैं। इसमें विवाद निवारण बोर्ड, मध्यस्थता, सुलह बोर्ड और न्यायाधिकरण शामिल हैं, जो विवादों का शांतिपूर्ण समाधान सुनिश्चित करने के लिए कार्य करते हैं।

2. मध्यस्थता और समझौताऔद्योगिक विवादों के समाधान के लिए स्वतंत्र मध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है। मध्यस्थता के माध्यम से दोनों पक्षों के बीच समझौते की कोशिश की जाती है। यह विवादों को सुलझाने का एक गैर-न्यायिक तरीका है और इसमें तटस्थ पक्ष के रूप में मध्यस्थ कार्य करता है।

3. श्रम न्यायालयअधिनियम के तहत विशेष श्रम न्यायालयों की स्थापना की जाती है, जो औद्योगिक विवादों को सुलझाने में मदद करते हैं। श्रम न्यायालयों का निर्णय अंतिम होता है और इसका पालन अनिवार्य होता है। ये न्यायालय श्रमिकों और नियोक्ताओं के विवादों को सुनते और निपटाते हैं।

4. हड़ताल और तालाबंदीअधिनियम के तहत हड़ताल और तालाबंदी के मामले में पूर्व सूचना देना आवश्यक होता है। अवैध हड़ताल और तालाबंदी पर दंड का प्रावधान है। यह प्रावधान हड़ताल और तालाबंदी के दुरुपयोग को रोकने और औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

5. ध्यानार्थ अधिनियमअधिनियम के तहत किसी भी औद्योगिक विवाद को सरकार के ध्यान में लाया जा सकता है। इसके लिए सरकार आवश्यक कदम उठा सकती है और विवाद को उचित प्राधिकारी के पास भेज सकती है। यह प्रावधान विवादों के त्वरित और प्रभावी समाधान के लिए बनाया गया है।

6. वेतन और सेवा शर्तेंअधिनियम के तहत श्रमिकों के वेतन और सेवा शर्तों को विवादों के समाधान के दौरान सुरक्षित रखा जाता है। सेवा शर्तों में एकतरफा परिवर्तन की मनाही होती है, ताकि श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा हो सके।

7. अधिनियम की अन्य महत्वपूर्ण धाराएँ: प्रतिबंध और विनियमन: अधिनियम के तहत कुछ गतिविधियों पर प्रतिबंध और विनियमन का प्रावधान है।**अधिनियम का विस्तार:** अधिनियम को समय-समय पर संशोधित और विस्तारित किया जा सकता है।**नियोक्ता और श्रमिक संघ:** अधिनियम के तहत नियोक्ताओं और श्रमिक संघों के अधिकार और कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है।औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय औद्योगिक संबंधों में संतुलन बनाए रखने और औद्योगिक शांति सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके

प्रावधान श्रमिकों और नियोक्ताओं दोनों के अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट करते हैं और विवादों के शांतिपूर्ण समाधान को बढ़ावा देते हैं।

विभिन्न हितधारकों के बीच असहमति:श्रमिकों के अधिकार: कई बार श्रमिकों को लगता है कि उनके अधिकारों की पूरी तरह से रक्षा नहीं हो रही है।नियोक्ताओं की परेशानियाँ: नियोक्ताओं का मानना है कि अधिनियम में कई प्रावधान व्यवसाय के सुचारू संचालन में बाधा डालते हैं।सरकारी हस्तक्षेप: सरकार के हस्तक्षेप से दोनों पक्षों के बीच तनाव बढ़ सकता है।

अधिनियम के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ:न्यायिक प्रणाली की धीमी गति: श्रम न्यायालयों में मामलों की सुनवाई में देरी से विवादों का समाधान समय पर नहीं हो पाता।अधिनियम की जटिलताएँ: कानून की जटिलताओं के कारण श्रमिक और नियोक्ता दोनों को कठिनाई होती है।अनौपचारिक क्षेत्र में लागू नहीं होना: अधिनियम का अनौपचारिक क्षेत्र में प्रभावी रूप से लागू न होना, जहाँ अधिकांश मजदूर काम करते हैं।

संशोधन और सुधार की मांग:अधिनियम में संशोधन: समय के साथ बदलती आवश्यकताओं को देखते हुए अधिनियम में संशोधन की मांग।श्रमिकों की सुरक्षा: श्रमिकों के लिए अधिक सुरक्षा उपाय और उनके अधिकारों की व्यापक रक्षा।नियोक्ताओं के लिए लचीले प्रावधान: नियोक्ताओं को अधिक लचीलापन और सुगमता देने के लिए प्रावधानों में सुधार।औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय औद्योगिक संबंधों को संतुलित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके विभिन्न प्रावधान श्रमिकों और नियोक्ताओं दोनों के अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट करते हैं। हालांकि, अधिनियम के कार्यान्वयन में कई विवाद और चुनौतियाँ हैं, जिनका समाधान श्रम कानूनों में सुधार और प्रभावी नीति निर्माण के माध्यम से किया जा सकता है। श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच बेहतर संवाद और सहयोग से औद्योगिक शांति और उत्पादकता को बढ़ावा मिल सकता है।

परिणामस्वरूप, इसने श्रम उद्योग में निम्नलिखित समस्याएं पैदा की हैं:

1. श्रम द्वारा कम उत्पादन
2. कम उत्पादकता
3. नियुक्ति में झिझक
4. कम निवेश
5. समग्र विनिर्माण प्रदर्शन में कमी
6. विदेशी निवेशक भारत में निवेश करने से कतरा रहे हैं।

अध्याय VB के अलावा, धारा 9-ए भी चिंता का कारण है। यह अनुभाग कहता है कि यदि नियोक्ता वेतन और अन्य भत्तों में संशोधन कर रहे हैं, तो उन्हें श्रम आयोग को 21 दिन पहले नोटिस देना होगा। इस प्रकार, यदि नियोक्ताओं को कुछ निश्चित समय-सीमा लक्ष्यों को पूरा करने के लिए तुरंत कर्मचारियों को फिर से तैनात करने की आवश्यकता होती है, तो यह प्रथा इसकी अनुमति नहीं देती है।उद्योग जगत की मांग है कि वैश्वीकरण के वर्तमान युग की मांग के अनुसार इस कानून को तर्कसंगत बनाने की जरूरत है। इस अधिनियम की जटिलता

को ही आम तौर पर इस तथ्य के लिए जिम्मेदार माना जाता है कि कुल श्रम शक्ति का केवल 6% संगठित विनिर्माण क्षेत्र में काम कर रहा है और शेष असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं।सरकारों (केंद्र/राज्य) के लिए चुनौती श्रम कल्याण और उद्योग कल्याण के बीच एक नाजुक संतुलन बनाना है।

5.7 सारांश

इस अध्याय का महत्त्वपूर्ण सारांश यह सुनिश्चित करता है कि भारतीय उद्योगों और उद्योगिक मजदूरी के बीच के संबंधों का महत्व और उनका सम्बंध विशेषता से समझना ज़रूरी है। यह अध्याय अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति में उद्योगों की भूमिका और मजदूरी के महत्व को प्रकट करता है।इस सारांश में, हमने भारतीय उद्योगों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को जैसे की वस्त्र, चीनी, लोहा और इस्पात उद्योगों के विकास के संक्षेप में देखा है। यहाँ उद्योगों के विकास में मजदूरी का महत्व भी जाना।इस अध्याय में उद्योगों और मजदूरों के संबंधों को विश्लेषण किया गया है और यह बताया गया है कि समृद्धि के लिए इन दोनों के मजबूत संबंधों की आवश्यकता होती है।साथ ही, इस अध्याय ने उद्योगों और मजदूरों के बीच के संबंधों में विपरीतताओं, संकटों और समस्याओं को भी बताया है। उद्योगिक मजदूरों की समाजिक सुरक्षा और उनकी समृद्धि के लिए आवश्यकताएं भी इसमें उजागर की गई हैं।सम्पूर्ण अध्याय में यह साफ होता है कि उद्योगों और मजदूरों के संबंध एक दूसरे के बिना पूर्ण नहीं हो सकते और उन्हें संघर्ष के बजाय साथ मिलकर चलना होगा। उद्योगों और मजदूरों के संबंधों की समर्थन और संरक्षण के माध्यम से ही हम समृद्धि और समाज में विकास को साकार कर सकते हैं।इस सम्पूर्ण अध्याय से हमने यह सिखा कि उद्योगों और मजदूरों के संबंध न केवल व्यावसायिक बल्कि समाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं और इन्हें समृद्धि और सामरिक न्याय के माध्यम से सुदृढ़ बनाना होगा।

5.8 शब्दावली

औद्योगिक विवाद (Industrial Dispute) - यह वह स्थिति है जब श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच विभिन्न मुद्दों पर असहमति या संघर्ष होता है, जैसे कि वेतन, काम की स्थितियाँ, और अनुबंध शर्तें।

5.9कुछ उपयोगी पुस्तके

भारतीय उद्योग और श्रम: समस्याएँ और समाधान" - लेखक: मनीष यादव

- बोध प्रश्न
  1. श्रम कल्याण के तहत कौन-कौन से कार्यक्रम चलाए जाते हैं?
  2. कर्मचारी राज्य बीमा (ESI) योजना क्या है और इसके लाभ क्यk

खंड 03 - गरीबी एवं बेरोजगारी

इकाई - 01 **भारत में निर्धनता निरपेक्ष एवं सापेक्ष गरीबी**, **गरीबी मापन की विधियाँ**, अमर्त्य सेन का समानता माप

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भारत में निर्धनता निरपेक्ष एवं सापेक्ष गरीबी, गरीबी मापन की विधियाँ,
1.3 गरीबी के आधार (Basis of Poverty)
1.4 निर्धनता के प्रकार (Types of Poverty)
1.5 निर्धनता रेखा (Poverty Line)
1.6 निर्धनता के कारण (Causes of Poverty)
1.7 निर्धनता मापन की विभिन्न समितियां (Various Committees for Poverty Measurement
1.8 भारत में गरीबी के अन्य अनुमान
1.9 बहुआयामी गरीबी सूचकांक
1.10 लोरेंज वक्र विधि
1.11 गरीबी का सेन दृष्टिकोण
1.12 सारांश
1.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्देश्य

इस खंड का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में गरीबी एवं बेरोजगारी से जुड़े मुद्दों की विस्तृत समझ और उन्हें समाधान की दिशा में चर्चा करना है। यहां पर निर्धनता एवं बेरोजगारी के कारणों, प्रकारों, इसके समाधान के उपायों और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।इसके साथ, उद्देश्य यह भी है कि गरीबी की मापन की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाला जाए, जैसे अमर्त्यसेन का समानता माप। इससे समाज में गरीबी के विभिन्न आयामों को समझने में मदद मिलेगी।इस खंड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों के बेरोजगार होने की समस्या और इसके संभावित समाधानों पर भी विचार किया जाएगा।इसके साथ ही, सरकारी रोजगार योजनाओं, जैसे कि MANREGA जैसे कार्यक्रमों की प्रभावकारीता और उनकी क्षमता का मूल्यांकन किया जाएगा। उन्हें लोगों तक पहुंचाने एवं उनके जीवन को कैसे सुधार सकते हैं, इस पर भी विचार किया जाएगा।अंत में, बाजार व्यवस्था, आर्थिक विषमताओं एवं विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में समस्याएं और उनके संभावित

समाधान पर भी ध्यान केंद्रित किया जाएगा।इस खंड का उद्देश्य यह है कि समाज के इन महत्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान दिया जाए, ताकि समाज में इसके संभावित समाधानों को लेकर व्यापक चर्चा हो सके और समृद्धि की दिशा में कदम बढ़ाया जा सके।

1.1 प्रस्तावना

मुख्यांश देते हुए, खंड 03 जो गरीबी और बेरोजगारी के विषयों पर ध्यान केंद्रित करता है, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दो समस्याओं के प्रति समाज की जागरूकता बढ़ाता है जो विभिन्न रूपों में समाज के विभाजन के कारण बनते हैं। इन मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने से समाज में उत्थान, समानता और समृद्धि की दिशा में कदम बढ़ाने के लिए उपाय ढूंढने में मदद मिलती है।गरीबी एक बड़ी सामाजिक समस्या है जो अक्सर समाज के सबसे निर्बल वर्ग को प्रभावित करती है। यह न केवल वित्तीय संकट उत्पन्न करती है बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता में भी विकास को रोकती है। गरीबी के कई मापन उपलब्ध हैं, और उन्हें शोधकर्ताओं ने अमर्त्यसेन के समानता माप जैसे मापदंडों से मापने का प्रयास किया है। इन मापदंडों के माध्यम से गरीबी के विभिन्न आयामों को समझा जा सकता है, जो समाज में समानता और समृद्धि को प्राप्त करने में मदद करता है।बेरोजगारी भी एक बड़ी समस्या है जो समाज में आर्थिक असुरक्षा और निरंतर रोजगार की कमी के कारण उत्पन्न होती है। इसमें शिक्षित बेरोजगारी की समस्या भी शामिल है, जहां शिक्षित लोगों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उचित रोजगार की कमी होती है।सरकारी रोजगार योजनाओं जैसे MANREGA के माध्यम से समाज के अधिकांश लोगों को रोजगार प्रदान करने की कोशिश की जा रही है। यह योजनाएं समाज को आर्थिक सुरक्षा और समृद्धि की दिशा में सहायता पहुंचाने में मदद करती हैं।खंड 03 व्यापक रूप से बाजार व्यवस्था, आर्थिक विषमताएँ और समाज में गरीबी और बेरोजगारी को समझने के लिए विशेष रूप से बनाया गया है। इसका उद्देश्य समाज में इन समस्याओं को समझना है और उन्हें समाधान की दिशा में अग्रसर करना है, ताकि समृद्धि, समानता और सुरक्षा के क्षेत्र में समाज को बेहतर बनाने में सहायता मिल सके।

1.2 भारत में निर्धनता निरपेक्ष एवं सापेक्ष गरीबी, गरीबी मापन की विधियाँ, अमर्त्यसेन का समानता माप

गरीबी एवम असमानता गरीबी का अर्थ निरपेक्ष गरीबी से है जिसका अभिप्राय मानव की आधारभूत आवश्यकताओ ,खाना, कपड़ा, स्वस्थ सुविधा आदि की पूर्ति हेतु प्रयाप्त वस्तुओं एवम सेवाओं को जुटा पाने की असमर्थता से है सापेक्ष गरीबी आय व सम्पति की असमानता को प्रदर्शित करती है

गरीबी के माप योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ दल के अनुसार ग्रामीण छेत्रो में 2400 कैलोरी प्रतिदिन, तथा शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रतिदिन का पोषण प्राप्त न करने वाले व्यक्ति को गरीबी रेखा के नीचे माना जाता है

भारत मे गरीबी के नवीनतम आकलन के लिए प्रो.सुरेश तेंदुलकर की अद्यक्षता में गठित विसेसज्ञ रिपोर्ट के आधार पर बनाया गया है इस आधार पर जुलाई 2013 में नवीनतम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी

निर्धनता या गरीबी को आमतौर पर न्यूनतम स्तर वाली आय में रहने वालों और कम उपभोग करने वालों के अर्थ में परिभाषित किया जाता है व्यक्तियों या परिवारों द्वारा जो स्वास्थ्य सक्रिय और सभ्य जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं को वहन नहीं कर पाते वह निर्धनता या गरीब कहा जाता है

गरीबी की अवधारणा गरीबी भूख है और उस अवस्था में जुड़ी हुई है निरन्तरता। यानी सतत् भूख की स्थिति का बने रहना। गरीबी है एक उचित रहवास का अभाव, गरीबी है बीमार होने पर स्वास्थ्य सुविधा का लाभ ले पाने में असक्षम होना, विद्यालय न जा पाना और पढ़ न पाना |

प्रो.एम.रीन का उल्लेख करते हुये अमर्त्य सेन लिखते हैं कि "लोगों को इतना गरीब नहीं होने देना चाहिये कि उनसे घिन आने लगे, या वे समाज को नुकसान पहुंचानें लगें।

1.3 गरीबी के आधार (Basis of Poverty)

भारत में गरीबी का मुद्दा लंबे समय से न केवल सामाजिक और आर्थिक चर्चा का विषय रहा है, बल्कि यह एक जटिल समस्या भी रही है। गरीबी को मापने और परिभाषित करने के लिए विभिन्न मानदंड अपनाए गए हैं, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि गरीबी को कैसे मापा जाए और किस आधार पर तय किया जाए कि कौन गरीब है। इस संदर्भ में, गरीबी रेखा को परिभाषित करना एक महत्वपूर्ण कदम रहा है, हालांकि यह हमेशा विवादास्पद रहा है। 1970 के दशक के मध्य में योजना आयोग द्वारा पहली बार गरीबी रेखा को परिभाषित किया गया था। इस रेखा के आधार पर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग न्यूनतम दैनिक कैलोरी आवश्यकता तय की गई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति वयस्क व्यक्ति के लिए 2,400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2,100 कैलोरी की आवश्यकता मानी गई थी। इस आधार पर यह तय किया गया कि अगर किसी व्यक्ति की दैनिक कैलोरी खपत इससे कम है, तो उसे गरीबी रेखा से नीचे माना जाएगा।

खेती से जुड़ती गरीबी (Poverty Related to Agriculture)

भारत में गरीबी का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसका गहरा संबंध कृषि से है। देश की बड़ी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और उनकी आय का मुख्य स्रोत खेती है। लेकिन खेती की उत्पादकता में कमी, सीमित भूमि, पुरानी तकनीकें और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं ने इस क्षेत्र में गरीबी को और बढ़ावा दिया है। खेती पर अत्यधिक निर्भरता और गैर-कृषि रोजगार के अवसरों की कमी ने ग्रामीण गरीबों की संख्या को बढ़ाया है। खेती से जुड़ी अनिश्चितताएं, जैसे मौसम, जलवायु, फसल की असफलता, और सरकार की नीतियों में बदलाव भी गरीबी का कारण बनते हैं।

विकास से बढ़ता अभाव (Development-Induced Poverty)

हालांकि देश के कुछ हिस्सों में विकास और आर्थिक प्रगति देखने को मिली है, लेकिन इसके साथ ही कुछ वर्गों और समुदायों में गरीबी और अभाव भी बढ़ा है। औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण बहुत से ग्रामीण लोग अपने घरों और खेती की जमीन से वंचित हो गए हैं, जिससे उनकी आय के स्रोत छिन गए हैं। कई बार बड़े विकास प्रोजेक्ट्स, जैसे बांध, कारखाने, सड़कें, आदि के निर्माण के दौरान गरीब और कमजोर समुदायों का विस्थापन होता है, जिससे वे और अधिक निर्धन हो जाते हैं। यह "विकास से जुड़ी निर्धनता" कहलाती है।

1.4निर्धनता के प्रकार (Types of Poverty) गरीबी को कई प्रकारों में बांटा जा सकता है। सामान्य रूप से, इसे दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है: सापेक्ष निर्धनता और निरपेक्ष निर्धनता।

1. सापेक्ष निर्धनता (Relative Poverty)

सापेक्ष निर्धनता का तात्पर्य विभिन्न सामाजिक वर्गों, प्रांतों या देशों के बीच पाए जाने वाले आर्थिक असमानताओं से है। इसमें उस निर्धनता की बात की जाती है जो एक देश या समाज के अमीर और गरीब के बीच के अंतर को दर्शाती है। सापेक्ष निर्धनता के माप से यह पता चलता है कि समाज में किसी वर्ग की स्थिति अन्य वर्गों की तुलना में कैसी है। यह एक तुलनात्मक दृष्टिकोण है, जिसमें गरीब व्यक्ति की स्थिति का मूल्यांकन उसके आस-पास के समाज के आर्थिक स्तर के संदर्भ में किया जाता है।

2. निरपेक्ष निर्धनता (Absolute Poverty)

निरपेक्ष निर्धनता वह स्थिति है जब व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताएं–जैसे भोजन, पानी, आश्रय, स्वास्थ्य सेवाएं, और शिक्षा–संतुष्ट नहीं हो पाती हैं। यह एक निश्चित मापदंड पर आधारित होती है, जिसमें यह तय किया जाता है कि किसी व्यक्ति की न्यूनतम जरूरतों को पूरा करने के लिए कितनी आय या संसाधनों की आवश्यकता है। यदि कोई व्यक्ति इस न्यूनतम सीमा से नीचे जीवन जीता है, तो उसे निरपेक्ष निर्धन माना जाता है।

1.5निर्धनता रेखा (Poverty Line) निर्धनता रेखा वह मापदंड है जिसके द्वारा किसी देश में गरीबी का आकलन किया जाता है। यह उस औसत मासिक खर्च को दर्शाती है जो एक व्यक्ति को अपनी न्यूनतम जरूरतों को पूरा करने के लिए करना होता है। भारत में गरीबी रेखा का निर्धारण करने के लिए कई बार नीति आयोग और अन्य संगठनों द्वारा नए-नए मानदंड अपनाए गए हैं। यह रेखा ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए अलग-अलग तय की जाती है, क्योंकि दोनों क्षेत्रों की आवश्यकताओं और खर्चों में भिन्नताएं होती हैं।गरीबी को समझने और उससे निपटने के लिए एक व्यापक और बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसका समाधान केवल आर्थिक नीतियों के माध्यम से नहीं किया जा सकता, बल्कि इसमें सामाजिक और राजनीतिक नीतियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। गरीबी उन्मूलन के लिए शिक्षा,

स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, रोजगार सृजन, और सामाजिक सुरक्षा जैसे उपायों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

1.6निर्धनता के कारण (Causes of Poverty) भारत में निर्धनता के कई प्रमुख कारण हैं, जो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना पर गहरा प्रभाव डालते हैं। निर्धनता न केवल आर्थिक समस्याओं का परिणाम है, बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक कारक भी शामिल होते हैं। नीचे दिए गए बिंदु इस जटिल समस्या के प्रमुख कारणों को विस्तार से समझाते हैं:

1. राष्ट्रीय उत्पाद का निम्न स्तर (Low National Output)

राष्ट्रीय उत्पाद (Gross Domestic Product या GDP) का निम्न स्तर किसी भी देश की समग्र आर्थिक स्थिति को कमजोर करता है। जब किसी देश का उत्पादन कम होता है, तो रोजगार के अवसर भी सीमित होते हैं, जिससे लोगों की आय कम हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं और गरीबी की ओर धकेले जाते हैं। उच्च राष्ट्रीय उत्पाद एक मजबूत अर्थव्यवस्था का संकेत होता है, लेकिन जब यह स्तर निम्न होता है, तो देश में निर्धनता का विस्तार होता है।

2. विकास की कम दर (Low Rate of Development)

विकास दर किसी भी देश की आर्थिक प्रगति को मापने का एक महत्वपूर्ण मानदंड है। जब विकास की दर धीमी होती है, तो रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं और लोगों की आय में वृद्धि नहीं होती है। कम विकास दर का अर्थ है कि आर्थिक संसाधनों का उचित और समुचित वितरण नहीं हो पाता, जिससे निर्धनता बढ़ती है। विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में विकास की कम दर लोगों को निर्धनता के दुष्चक्र में फंसा देती है, क्योंकि उन्हें अपनी आजीविका के लिए पर्याप्त साधन नहीं मिल पाते।

3. कीमतों में वृद्धि (Inflation or Price Rise)

कीमतों में निरंतर वृद्धि या मुद्रास्फीति गरीबी के बढ़ने का एक बड़ा कारण है। जब आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ती हैं, तो गरीब और निम्न-आय वाले लोगों पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। उनकी आय स्थिर रहती है, लेकिन जीवन-यापन की लागत बढ़ती जाती है, जिससे वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस स्थिति में, खाद्य पदार्थ, कपड़े, स्वास्थ्य सेवाएं, और शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यकताएं भी उनकी पहुंच से बाहर हो जाती हैं, जिससे निर्धनता की स्थिति और भी गंभीर हो जाती है।

4. जनसंख्या का दबाव (Population Pressure)

भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में बढ़ती जनसंख्या एक प्रमुख समस्या है, जो गरीबी को बढ़ावा देती है। जनसंख्या के तेजी से बढ़ने से संसाधनों पर दबाव बढ़ता है, जिससे प्रति व्यक्ति संसाधनों की उपलब्धता कम हो जाती है। बढ़ती जनसंख्या के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, और रोजगार जैसे बुनियादी सेवाओं की मांग तेजी से बढ़ती है, जबकि इन सेवाओं की

आपूर्ति सीमित होती है। इसके परिणामस्वरूप लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते और निर्धनता की स्थिति में आ जाते हैं।

5. बेरोजगारी (Unemployment)

बेरोजगारी गरीबी का एक प्रमुख कारण है। जब लोग रोजगार से वंचित होते हैं, तो उनकी आय का कोई स्रोत नहीं होता, जिससे वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो जाते हैं। बेरोजगारी की स्थिति में लोगों को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इसके अलावा, जब रोजगार के अवसर कम होते हैं, तो लोग अस्थिर और अनौपचारिक कार्यों में संलग्न हो जाते हैं, जिससे उनकी आय स्थिर नहीं होती और उनकी आर्थिक स्थिति असुरक्षित हो जाती है।

6. पूंजी की कमी (Lack of Capital)

किसी भी देश की आर्थिक प्रगति के लिए पर्याप्त पूंजी का होना आवश्यक है। पूंजी की कमी का अर्थ है कि नए उद्योगों की स्थापना, कृषि में सुधार, और बुनियादी ढांचे के विकास के लिए आवश्यक निवेश नहीं हो पाता। जब उद्योग और व्यापार में पूंजी का अभाव होता है, तो रोजगार के अवसर भी सीमित हो जाते हैं। इसके अलावा, पूंजी की कमी से उत्पादकता और तकनीकी उन्नति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे लोगों की आय और जीवन स्तर में सुधार नहीं हो पाता, और निर्धनता की स्थिति बनी रहती है।

7. कुशल श्रम और तकनीकी ज्ञान की कमी (Lack of Skilled Labor and Technical Knowledge)

कुशल श्रम और तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण लोग उच्च उत्पादकता और उन्नत तकनीक के साथ कार्य नहीं कर पाते। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी आय सीमित रहती है और वे गरीबी की स्थिति में रहते हैं। विशेष रूप से कृषि और छोटे उद्योगों में, उन्नत तकनीकों और कुशल श्रमिकों की कमी से उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। इसके साथ ही, लोग नए उद्योगों और व्यवसायों में काम करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान से वंचित रहते हैं, जिससे वे रोजगार के बेहतर अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते और निर्धन बने रहते हैं।

8. उचित औद्योगीकरण का अभाव (Lack of Proper Industrialization)

उचित औद्योगीकरण का अभाव गरीबी का एक अन्य प्रमुख कारण है। औद्योगीकरण से रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं और लोगों की आय में वृद्धि होती है। लेकिन जब किसी देश में औद्योगिक विकास धीमा होता है या अपर्याप्त होता है, तो रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं, और लोगों की आय में वृद्धि नहीं होती। इसके अलावा, बिना उचित औद्योगीकरण के, लोग पारंपरिक कृषि और अन्य कम आय वाले कार्यों पर निर्भर रहते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो पाता।

9. सामाजिक संस्थाएं (Social Institutions)

सामाजिक संस्थाएं, जैसे जाति व्यवस्था, भूमि का असमान वितरण, और पारिवारिक संरचनाएं, निर्धनता के फैलाव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जाति और वर्ग आधारित भेदभाव, महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता की कमी, और भूमि वितरण में असमानता जैसी समस्याएं गरीब वर्गों को विकास और प्रगति से दूर रखती हैं। कई बार सामाजिक संस्थाएं गरीबों के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसरों तक पहुंच को सीमित कर देती हैं, जिससे वे निर्धनता के चक्र से बाहर नहीं निकल पाते। सामाजिक असमानता और भेदभाव गरीबी को जटिल बनाते हैं और लोगों को अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

1.7 निर्धनता मापन की विभिन्न समितियां (Various Committees for Poverty Measurement)

भारत में निर्धनता का आकलन और मापन एक जटिल प्रक्रिया रही है, जिसे कई समितियों और विशेषज्ञ समूहों द्वारा समय-समय पर परिभाषित और संशोधित किया गया है। निर्धनता के मापन के लिए मुख्य रूप से विभिन्न मानदंडों को अपनाया गया है, जैसे कैलोरी उपभोग, आय, और खर्च। निर्धनता मापने की प्रक्रिया में बदलाव के साथ-साथ विभिन्न समितियों द्वारा नए सुझाव और सिफारिशें भी दी गईं, जो समय के साथ गरीबी के आकलन में महत्वपूर्ण साबित हुईं। इनमें प्रमुख रूप से लकड़वाला समिति, सुरेंद्र तेंदुलकर समिति, और रंगराजन समिति हैं, जिन्होंने गरीबी रेखा के निर्धारण और गरीबी आकलन के लिए विभिन्न मापदंडों का सुझाव दिया।

स्वतंत्रता-पूर्व गरीबी का अनुमान Pre-Independence Poverty Estimation

1.दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक, "भारत में गरीबी और गैर-ब्रिटिश शासन" के माध्यम से गरीबी रेखा (प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ₹16 से ₹35) का सबसे पहला अनुमान लगाया। उनके द्वारा प्रस्तावित गरीबी रेखा निर्वाह या न्यूनतम बुनियादी आहार (चावल या आटा, दाल, मटन, सब्जियाँ, घी, वनस्पति तेल और नमक) की लागत पर आधारित थी।

2.राष्ट्रीय योजना समिति (1938) की गरीबी रेखा (प्रति व्यक्ति प्रति माह ₹15 से ₹20 तक) भी न्यूनतम जीवन स्तर के दृष्टिकोण पर आधारित थी जिसमें पोषण संबंधी आवश्यकताएँ निहित थीं। 1938 में, जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में सुभाष चंद्र बोस द्वारा राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की गई थी, जिसका उद्देश्य आम जनता के लिए पर्याप्त जीवन स्तर सुनिश्चित करने के मूल उद्देश्य के साथ एक आर्थिक योजना तैयार करना था।

3.बॉम्बे योजना (1944) के समर्थकों ने प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ₹75 की गरीबी रेखा का सुझाव दिया था। बॉम्बे योजना भारत की स्वतंत्रता के बाद की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए बॉम्बे के प्रभावशाली व्यापारिक नेताओं के एक छोटे समूह के प्रस्तावों का एक समूह था।

Post-Independence Poverty Estimation स्वतंत्रता के बाद गरीबी का अनुमान

1.योजना आयोग विशेषज्ञ समूह (1962), योजना आयोग द्वारा गठित कार्य समूह ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग गरीबी रेखाएँ तैयार कीं (क्रमशः ₹20 और ₹25 प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष)।

2.वीएम दांडेकर और एन रथ (1971) ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के आंकड़ों के आधार पर भारत में गरीबी का पहला व्यवस्थित आकलन किया। पिछले विद्वानों के विपरीत, जिन्होंने निर्वाह जीवन या बुनियादी न्यूनतम जरूरतों के मानदंड को गरीबी रेखा के उपाय के रूप में माना था, **वीएम दांडेकर और एन रथ** का विचार था कि गरीबी रेखा को उस व्यय से प्राप्त किया जाना चाहिए जो ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में प्रति दिन 2250 कैलोरी प्रदान करने के लिए पर्याप्त था। व्यय आधारित गरीबी रेखा के अनुमान ने न्यूनतम कैलोरी उपभोग मानदंडों पर बहस को जन्म दिया।

3.अलघ समिति (1979): वाईके अलघ की अध्यक्षता में योजना आयोग द्वारा गठित टास्क फोर्स ने पोषण संबंधी आवश्यकताओं और संबंधित उपभोग व्यय के आधार पर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए गरीबी रेखा का निर्माण किया।

4. लकड़वाला समिति (Lakdavala Committee)

सितंबर 1989 में तत्कालीन योजना आयोग ने प्रोफेसर डी. टी. लकड़वाला की अध्यक्षता में एक विशेष समूह का गठन किया। इस समूह ने गरीबी रेखा का निर्धारण करने के लिए प्रति व्यक्ति कैलोरी उपभोग को मुख्य आधार माना। इसके अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2,400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2,100 कैलोरी का उपभोग गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए उपयुक्त माना गया। लकड़वाला समिति ने कहा कि यदि किसी व्यक्ति की आय इतनी है कि वह इस कैलोरी सीमा से नीचे जीवन यापन करता है, तो उसे गरीब माना जाएगा।समिति ने गरीबी का आकलन करने के लिए शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का भी इस्तेमाल किया। शहरी निर्धनता के आकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) का उपयोग किया गया, जबकि ग्रामीण निर्धनता के लिए कृषि श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का आधार बनाया गया।

5. सुरेंद्र तेंदुलकर समिति (Surendra Tendulkar Committee)

सुरेंद्र तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट, जिसे 2009 में पेश किया गया था, गरीबी मापन के लिए एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर रही है। तेंदुलकर समिति ने गरीबी रेखा का निर्धारण केवल कैलोरी उपभोग के बजाय व्यय-आधारित पद्धति से किया। इसका उद्देश्य गरीबी के आकलन में शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और अन्य जीवन संबंधी आवश्यकताओं को भी शामिल करना था। इस समिति के अनुसार, 2011-12 में देश में गरीबी दर 37.2% थी।तेंदुलकर समिति ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा इकट्ठे किए गए आंकड़ों के आधार पर गरीबी का आकलन किया। इसके अनुसार, 2012 में भारत की कुल जनसंख्या का 22% गरीबी रेखा के नीचे था। गरीबी मापन के दृष्टिकोण से, समिति ने शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में जीवन

यापन की लागत को ध्यान में रखते हुए मापदंड तय किए। निर्धनता के संबंध में उत्तर प्रदेश देश में सर्वाधिक निर्धनों की निरपेक्ष संख्या के मामले में सबसे ऊपर था, जबकि निर्धनता अनुपात के संदर्भ में ओडिशा का स्थान सर्वोच्च (46.8%) था। इसके विपरीत, जम्मू-कश्मीर में राज्यों के बीच सबसे कम निर्धनता दर पाई गई, जबकि संपूर्ण भारत में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में सबसे कम गरीबी (0.4%) दर दर्ज की गई।

- **सिफारिशें**

कैलोरी खपत आधारित गरीबी आकलन से बदलाव: इसने अनाज, दालें, दूध, खाद्य तेल, मांसाहारी खाद्य पदार्थ, सब्जियां, ताजे फल, सूखे मेवे, चीनी, नमक और मसाले, अन्य खाद्य पदार्थ, मादक पदार्थ, ईंधन, कपड़े, जूते, शिक्षा, चिकित्सा (गैर-संस्थागत और संस्थागत), मनोरंजन, व्यक्तिगत और शौचालय के सामान जैसी वस्तुओं की खपत पर अपनी गणना आधारित की।

समान गरीबी रेखा टोकरी: अलघ समिति (जो ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग पीएलबी पर निर्भर थी) के विपरीत, तेंदुलकर समिति ने समान गरीबी रेखा टोकरी के आधार पर प्रत्येक राज्य के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए नई गरीबी रेखाओं की गणना की और पाया कि अखिल भारतीय गरीबी रेखा (2004-05) थी:

- ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति माह ₹446.68
- शहरी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति माह ₹578.80

निजी व्यय: गरीबी का आकलन करते समय स्वास्थ्य और शिक्षा पर निजी व्यय को शामिल करना।

मूल्य समायोजन प्रक्रिया: समिति ने गरीबी रेखा को अद्यतन करने, कीमतों में परिवर्तन और उपभोग के पैटर्न (मूल्य समायोजन के साथ स्थानिक और लौकिक मुद्दों को सही करने के लिए) को समायोजित करने, गरीबी रेखा के करीब लोगों की खपत टोकरी का उपयोग करने की एक नई विधि की भी सिफारिश की।

मिश्रित संदर्भ अवधि: समिति ने मिश्रित संदर्भ अवधि आधारित अनुमानों का उपयोग करने की सिफारिश की, जो कि गरीबी का अनुमान लगाने के लिए पहले के तरीकों में इस्तेमाल किए गए समान संदर्भ अवधि आधारित अनुमानों के विपरीत है।

तेंदुलकर समिति ने 2004-05 के लिए गरीबी रेखाओं की गणना उस स्तर पर की जो क्रय शक्ति समता (पीपीपी) के संदर्भ में 33 रुपये प्रति दिन के बराबर थी।

क्रय शक्ति समता: पीपीपी मॉडल एक ऐसी विधि को संदर्भित करता है जिसका उपयोग दो देशों में समान वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने के लिए आवश्यक धन की गणना करने के लिए किया जाता है।

3. रंगराजन समिति (Rangarajan Committee)

रंगराजन समिति की स्थापना 2012 में की गई थी, जब तेंदुलकर समिति की गरीबी मापन पद्धति पर विवाद हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की सरकार में रंगराजन समिति

का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य गरीबी के आकलन पर तेंदुलकर समिति की सिफारिशों की समीक्षा करना था। सी. रंगराजन, जो उस समय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के प्रमुख थे, की अध्यक्षता में यह समिति गठित की गई।

रंगराजन समिति ने तेंदुलकर समिति की कार्यपद्धति की समीक्षा करने के बाद नई सिफारिशें दीं। इसके अनुसार, शहरी क्षेत्रों में ₹45 प्रतिदिन से कम खर्च करने वाले व्यक्ति को गरीब माना जाए, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह सीमा ₹32 प्रतिदिन थी। मासिक आधार पर यह सीमा ग्रामीण क्षेत्रों में ₹972 और शहरी क्षेत्रों में ₹1407 प्रतिमाह तय की गई। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि गरीबी मापन केवल भोजन पर होने वाले खर्च के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि अन्य आवश्यकताओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, और आश्रय की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

- **सिफारिशें**

प्रयुक्त पद्धति: रंगराजन समिति का अनुमान सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) द्वारा घरों के एक स्वतंत्र बड़े सर्वेक्षण पर आधारित है। इसने अलग-अलग पद्धति का भी इस्तेमाल किया है, जिसमें एक घर को गरीब माना जाता है अगर वह बचत करने में असमर्थ है।

मानक और व्यवहारिक स्तर: गरीबी रेखा इस पर आधारित होनी चाहिए:

पर्याप्त पोषण का मानक स्तर: पोषण का आदर्श और वांछनीय स्तर।

गैर-खाद्य व्यय का व्यवहारिक निर्धारण: लोग सामान्य व्यवहार के अनुसार क्या उपयोग करते हैं या उपभोग करते हैं।

पोषण संबंधी आवश्यकता: पर्याप्त पोषण के मानक स्तरों के लिए - भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (ICMR) के मानदंडों के आधार पर कैलोरी, प्रोटीन और वसा की औसत आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है, जो अखिल भारतीय ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए आयु, लिंग और गतिविधि के आधार पर विभेदित होती हैं:

कैलोरी: शहरी क्षेत्रों में 2090 किलो कैलोरी और ग्रामीण क्षेत्रों में 2155 किलो कैलोरी।

प्रोटीन: ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 48 ग्राम और शहरी क्षेत्रों के लिए 50 ग्राम।

वसा: शहरी क्षेत्रों के लिए 28 ग्राम और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 26 ग्राम।

गरीबी सीमा: शहरों में प्रतिदिन ₹47 और गांवों में ₹32 से कम खर्च करने वाले व्यक्ति गरीब माने जाएंगे। इस पद्धति के आधार पर, रंगराजन समिति ने अनुमान लगाया कि तेंदुलकर समिति के फार्मूले का उपयोग करके अनुमानित की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की संख्या 19% अधिक और शहरी क्षेत्रों में 41% अधिक थी।

संशोधित मिश्रित संदर्भ अवधि: मिश्रित संदर्भ अवधि (एमआरपी) के बजाय इसने संशोधित मिश्रित संदर्भ अवधि (एमएमआरपी) की सिफारिश की, जिसमें विभिन्न वस्तुओं के लिए संदर्भ अवधि इस प्रकार ली गई:

कपड़े, जूते, शिक्षा, संस्थागत चिकित्सा देखभाल और टिकाऊ वस्तुओं के लिए 365 दिन। खाद्य तेल, अंडा, मछली और मांस, सब्जियां, फल, मसाले, पेय पदार्थ, जलपान, प्रसंस्कृत खाद्य, पान, तंबाकू और नशीले पदार्थों के लिए 7 दिन। शेष खाद्य पदार्थों, ईंधन और प्रकाश, विविध वस्तुओं और सेवाओं सहित गैर-संस्थागत चिकित्सा; किराए और करों के लिए 30 दिन।

1.8भारत में गरीबी के अन्य अनुमान

'2005-06 से भारत में बहुआयामी गरीबी: एक चर्चा पत्र': नीति आयोग: भारत में बहुआयामी गरीबी 2013-14 में 29.17% से घटकर 2022-23 में 11.28% हो गई। 2022-23 तक नौ वर्षों में 24.82 करोड़ लोग बहुआयामी गरीबी से बाहर निकल आए, जिसमें उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में सबसे बड़ी गिरावट दर्ज की गई।

1.9 बहुआयामी गरीबी सूचकांक 2023:

एमपीआई 2023 के अनुमान भारत के राष्ट्रीय एमपीआई मूल्य में लगभग आधी कमी और 2015-16 और 2019-21 के बीच 24.85% से घटकर 14.96% होने का संकेत देते हैं। 9.89 प्रतिशत अंकों की यह कमी यह दर्शाती है कि 2015-16 और 2019-21 के बीच लगभग 135.5 मिलियन लोग गरीबी से बाहर निकले हैं। इसके अलावा, गरीबी की तीव्रता, जो बहुआयामी गरीबी में रहने वाले लोगों के बीच औसत अभाव को मापती है, 47.14% से घटकर 44.39% हो गई।

2014 के बाद भारत में गरीबी का अनुमान लगाने के कई तरीके हैं, जिनमें बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई) और घरेलू उपभोग व्यय सर्वेक्षण डेटा शामिल हैं:

बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई)

पीआईबी के अनुसार, एमपीआई से पता चलता है कि भारत की बहुआयामी गरीबी दर 2013-14 में 29.17% से घटकर 2022-23 में 11.28% हो गई है।

घरेलू उपभोग व्यय सर्वेक्षण डेटा

एसबीआई रिसर्च के अनुसार, भारत की गरीबी दर 2022-23 में घटकर 4.5-5% हो गई है। ग्रामीण गरीबी 2011-12 में 25.7% से घटकर 7.2% हो गई, और शहरी गरीबी एक दशक पहले की अवधि से घटकर 4.6% हो गई

लोरेंज वक्र और गिनी गुणांक

गरीबी और आय असमानता को मापने के लिए लोरेंज वक्र और गिनी गुणांक जैसे मापदंडों का भी उपयोग किया जाता है। लोरेंज वक्र किसी देश के लोगों के बीच आय और संपत्ति के वितरण में असमानता को मापने का एक तरीका है। गिनी गुणांक, जिसे इटली के प्रसिद्ध सांख्यिकीविद कोरेडो गिनी ने विकसित किया था, आय असमानता को मापने का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। गिनी गुणांक 0 से 1 के बीच होता है, जहां 0 पूर्ण समानता और 1

पूर्ण असमानता को दर्शाता है। जितना अधिक गिनी गुणांक होगा, उतनी ही अधिक असमानता उस देश में मानी जाती है।

बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई)

नीति आयोग बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई) के लिए नोडल मंत्रालय है। नीति आयोग सूचकांक की प्रकाशन एजेंसियों (ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की ऑक्सफोर्ड गरीबी और मानव विकास पहल (ओपीएचआई) और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी)) के साथ जुड़ने के लिए भी जिम्मेदार है। राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को उनके प्रदर्शन के आधार पर रैंकिंग देता है और प्रत्येक राष्ट्रीय एमपीआई संकेतक से जुड़े बारह मंत्रालयों से परामर्श करने के लिए एक अंतर-मंत्रालयी एमपीआई समन्वय समिति (एमपीआईसीसी) का गठन भी किया है।

राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक वैश्विक बहुआयामी गरीबी सूचकांक पर आधारित है, जिसे ऑक्सफोर्ड गरीबी और मानव विकास पहल (ओपीएचआई) और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित किया जाता है। नीति आयोग बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई) के लिए नोडल एजेंसी है। यह राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को उनके प्रदर्शन के आधार पर रैंक करता है और प्रत्येक राष्ट्रीय एमपीआई संकेतक से जुड़े बारह मंत्रालयों से परामर्श करने के लिए एक अंतर-मंत्रालयी एमपीआई समन्वय समिति (एमपीआईसीसी) का गठन भी किया है। राष्ट्रीय एमपीआई परियोजना का उद्देश्य वैश्विक एमपीआई का विघटन करना और वैश्विक रूप से संरेखित और फिर भी अनुकूलित भारत एमपीआई बनाना है, ताकि वैश्विक एमपीआई रैंकिंग में भारत की स्थिति में सुधार लाने के बड़े लक्ष्य के साथ व्यापक सुधार कार्य योजनाएँ तैयार की जा सकें। यह बहुआयामी गरीबी का पता लगाने के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर तथा जीवन के अन्य व्यापक गुणात्मक पहलुओं, जैसे बाल मृत्यु दर, आवास की स्थिति, तथा जल और स्वच्छता जैसी अन्य बुनियादी सेवाओं में व्याप्त अतिव्यापी अभावों को दर्शाता है।

सूचकांक की गणना राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) रिपोर्ट से एकत्रित 12 संकेतकों का उपयोग करके की जाती है। राष्ट्रीय MPI स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर के तीन समान रूप से भारित आयामों में एक साथ अभावों को मापता है, जिन्हें 12 सतत विकास लक्ष्य (SDG) संरेखित संकेतकों द्वारा दर्शाया जाता है। इनमें से प्रत्येक विशिष्ट पैरामीटर को एक मान दिया जाता है जिसे 'वंचितता स्कोर' कहा जाता है। अभाव स्कोर किसी व्यक्ति के लिए सभी संकेतकों की भारित स्थिति का योग है यदि यह 0.33 से अधिक है, तभी किसी व्यक्ति को बहुआयामी रूप से गरीब माना जाता है।

NMPI by NITI Aayog

आयाम भार		सूचक	वंचित यदि
स्वास्थ्य 1/6		1/6 पोषण	यदि कोई बच्चा (0 से 59 महीने), या महिला (15 से 49 वर्ष), या पुरुष (15 से 54 वर्ष) जिसके लिए पोषण संबंधी जानकारी उपलब्ध है, कुपोषित पाया जाता है तो एक परिवार को वंचित माना जाता है।
		1/12 बच्चे एवं किशोर मृत्यु दर	सर्वेक्षण से पहले पांच साल की अवधि में परिवार में 18 वर्ष से कम उम्र के किसी बच्चे/किशोर की मृत्यु हो गई हो।
		1/12 प्रसवपूर्व देखभाल	एक परिवार को वंचित कर दिया जाता है यदि घर की कोई भी महिला जिसने सर्वेक्षण से पहले 5 वर्षों में बच्चे को जन्म दिया हो, हाल के जन्म के लिए कम से कम 4 प्रसवपूर्व देखभाल का दौरा नहीं किया हो, या इस दौरान प्रशिक्षित कुशल चिकित्सा कर्मियों से सहायता प्राप्त नहीं की हो। सबसे हालिया प्रसव
शिक्षा 1/3		1/6 वर्ष की स्कूली शिक्षा	परिवार में 10 वर्ष या उससे अधिक उम्र के एक भी सदस्य ने छह साल की स्कूली शिक्षा पूरी नहीं की है।
		1/6 स्कूल उपस्थिति	कोई भी स्कूली उम्र का बच्चा उस उम्र तक स्कूल नहीं जा रहा है, जिस उम्र में वह 8वीं कक्षा पूरी करेगा।
जीवन स्तर		1/21 खाना पकाने का ईंधन	एक परिवार गोबर, कृषि फसलों, झाड़ियों, लकड़ी, लकड़ी का कोयला या कोयले से खाना बनाता है।
		1/21 स्वच्छता	घर में कोई सुधार नहीं हुआ है या कोई स्वच्छता सुविधा नहीं है या इसमें सुधार हुआ है लेकिन इसे अन्य घरों के साथ साझा किया जाता है
		1/21 पीने का पानी	परिवार के पास बेहतर पेयजल तक पहुंच नहीं है या सुरक्षित पेयजल घर से कम से कम 30 मिनट की पैदल दूरी पर है (आने-जाने के लिए)।
		1/3-1/21 बिजली	घर में बिजली नहीं है.
		1/21 आवास	परिवार के पास अपर्याप्त आवास है: फर्श प्राकृतिक सामग्री से बना है, या छत या दीवार प्राथमिक सामग्री से बनी है
		1/21 संपत्ति	परिवार के पास इनमें से एक से अधिक संपत्ति रेडियो, टीवी, टेलीफोन, कंप्यूटर, पशु गाड़ी, साइकिल, मोटरसाइकिल या रेफ्रिजरेटर नहीं है, और कार या ट्रक का मालिक नहीं है।
		1/21 बैंक खाता	घर के किसी भी सदस्य के पास बैंक खाता नहीं है डाकघर खाता.

रिपोर्ट के प्रमुख बिंदु (Main point of report)

2009-10 में 38.2 प्रतिशत आबादी गरीब थी जो 2011-12 में घटकर 29.5 प्रतिशत पर आ गई इसके विपरीत तेंदुलकर समिति ने कहा था कि 2009-10 में गरीबों की आबादी 29.8 प्रतिशत थी जो 2011-12 में घटकर 21.9 प्रतिशत रह गई

कोई शहरी व्यक्ति यदि एक महीने में 1,407 रुपये (47 रुपये प्रतिदिन) से कम खर्च करता है तो उसे गरीब समझा जाए, जबकि तेंदुलकर समिति के पैमाने में यह राशि प्रति माह 1,000 रुपए (33 रुपये प्रतिदिन) थी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति माह 972 रुपये (32 रुपये प्रतिदिन) से कम खर्च करने वाले लोगों को गरीबी की श्रेणी में रखा है, जबकि तेंदुलकर समिति ने यह राशि 816 रुपये प्रति माह (27 रुपये प्रतिदिन) निर्धारित की थी 2011-12 में भारत में गरीबों की संख्या 36.3 करोड़ थी, जबकि 2009-10 में यह आंकड़ा 45.4 करोड़ था।तेंदुलकर समिति के अनुसार, 2009-10 में देश में गरीबों की संख्या 35.4 करोड़ थी जो 2011-12 में घटकर 26.9 करोड़ रह गई आशा है कि समिति की इस रिपोर्ट से देश में गरीबों की संख्या के बारे में जो संशय बना था वह दूर हो जाएगा।विशेषज्ञ समूह को अपनी रिपोर्ट गठन के 7 से 9 माह में देनी थी,इसे कई बार विस्तार दिया गया उल्लेखनीय है कि गरीबी के बारे में व्यक्त अनुमान को लेकर योजना आयोग को तब कड़ी आलोचना झेलनी पड़ी थी जब उसने सितंबर 2011 में सर्वोच्च न्यायालय में दिए एक हलफनामे में यह कहा कि शहरी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 32 रुपये और ग्रामीण क्षेत्रों में 26 रुपये प्रति व्यक्ति दैनिक खर्च करने वाला गरीब नहीं है। तेंदुलकर पद्धति पर आधारित पिछले वर्ष जुलाई में जारी आयोग के अनुमान के अनुसार देश में गरीबी का अनुपात 2011-12 में घटकर 21.9 प्रतिशत रह गया जो कि 2004-05 में 37.2 प्रतिशत पर था। बीपीएल जनसंख्या में भारतीय राज्यों की स्थिति यह बहुत ही दयनीय स्थिति है कि, भारत को एक विकासशील देश भी कहा जाता है और अभी भी यहां गरीबी रेखा से नीचे इतनी बड़ी आबादी रहती है।.सामान्य रूप से भारत में 15 से 59 वर्ष के आयु वर्ग के व्यक्तियों को आर्थिक रुप से सक्रिय माना जाता है .भारत में बेरोजगारी से संबंधित आंकड़े राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा जारी किए जाते हैं वार्षिक रोजगार के आकलन के लिए कार्य दिवसों की मानक संख्या 270 है .अगर किसी व्यक्ति के पास 35 दिनों से भी कम दिनों का रोजगार वह तो राष्ट्रीय स्तर तक उसे पूर्ण बेरोजगार मान लिया जाता है यदि उसके कार्य दिवस पर 30 दिनों से ज्यादा एवं 135 से कम दिनों का हो तो उसे अर्थ बेरोजगार माना जाता है वह 135 दिनों से ज्यादा दिनों के रोजगार की स्थिति हो तो उसे पूर्ण रोजगार कहा जाएगा

सापेक्ष गरीबी तुलनात्मक रूप से आय की असमानता को कहा जाता हैनिरपेक्ष गरीबी-न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति जुटा पाने में असमर्थ हैआय गरीबी- भोजन, कपड़ा,की पूर्ति नही कर पाने वाला वर्गमानव गरीबी -जिनको संतोष जनक जीवन दीर्घ आयुता स्वस्थ रहनसहन से वंचित वर्ग

1.10 लोरेंज वक्र विधि ग्राफ पर 1905 में अमेरिकी अर्थशास्त्री मैक्स लोरेन्ज द्वारा विकसित धन वितरण की एक चित्रमय प्रतिनिधित्व, एक सीधे विकर्ण लाइन धन वितरण की सही समानता का प्रतिनिधित्व करता हैलॉरेंज वक्र धन वितरण की वास्तविकता दिखा रहा है, यह नीचे सीधी रेखा और घुमावदार लाइन के बीच के अंतर को धन वितरण, गिनी गुणांक द्वारा वर्णित एक आंकड़ा की असमानता की राशि है।

जोतों का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	**जोतो की संख्या (लाख में)**	**जोतों का क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर में)**	**जोतों का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)**	**जोतो की संख्या (लाख में)**	**जोतों का क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर में)**
1 से कम	198	92	5 - 10	45	306
1 - 3	180	321	10 - 20	18	231
3 - 5	61	230	20 से अधिक	5	151
			योग	**507**	**1331**

हल: क्षेत्रफल के अनुसार जोतों को प्रदर्शित करने वाले लारेंज वक्र के लिए दूसरे तथा तीसरे स्तम्भों में कुल योग के प्रतिशत मानों को दिया जाता है। ये प्रतिशत मान निम्न सारणी में दिए गए हैं। इनके साथ ही प्रत्येक स्तम्भ में उनके संचयी मान भी निकाले गए हैं। जोतों की संख्या की विभिन्न प्रतिशत संचयी बारम्बारता को X-अक्ष पर तथा उनके क्षेत्रफल की प्रतिशत संचयी बारम्बारता को Y-अक्ष् पर अंकित किया जाता है। इन क्रमागत बिन्दुओं को मिलाने से लारेंज वक्र प्राप्त होता है। यह वक्र चित्र 22 में दिखाया गया है।

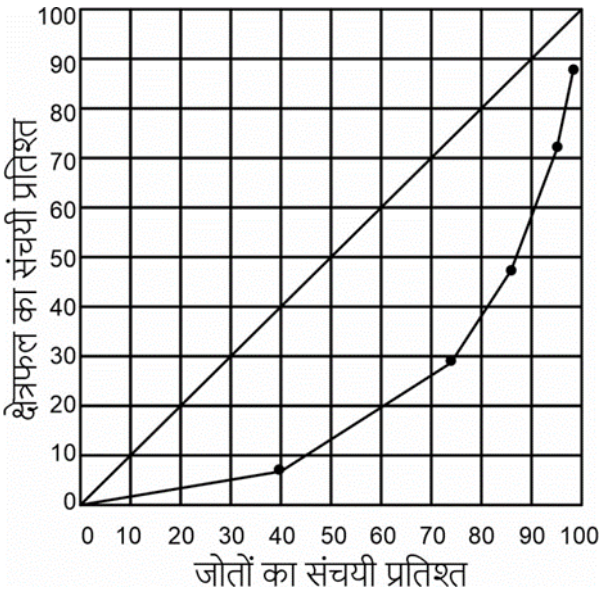

इसका प्रत्येक बिंदु परिस्थिति को व्यक्तं करता है अलग अलग आय वाले व्यक्तियों का अलग अलग प्रदर्शन बिंदु होता है मापन 0 से 100 तक होता है इसमे मापन ऋणात्मक नही होता है

समता रेखा से ऊपर रेखा नहीं उठती लोरेंज वक्र जितना पास होगा विषमता उतनी ही कम होगी जबकि रेखा जितनी दूर होगी विषमता ज्यादा होगी.

चित्र

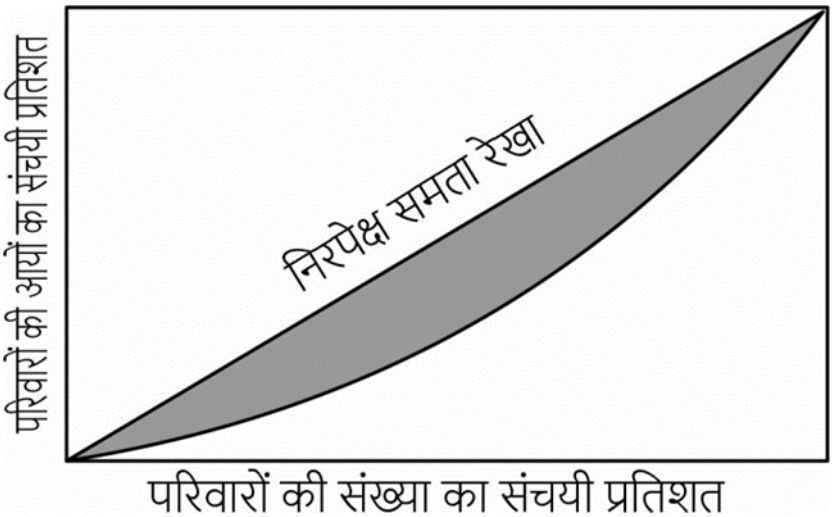

🔰 गिनी गुणांक (Gini Multiplier)

गिनी गुणांक एक सांख्यिकीय फैलाव का माप हैं, जिसका उद्देश्य किसी राष्ट्र के निवासियों के आय वितरण का प्रतिनिधित्व करना हैं, और यह सर्वाधिक प्रयोग होने वाला असमानता का माप हैं इसका विकास समाजशास्त्री कोराडो गिनी द्वारा किया गया और यह उनके 1912 के पत्र "वरिएबिलिटी एण्ड म्युटेबिलिटी" में प्रकाशित हुआ समाज मे व्याप्त आय एवं संपत्ति के असमान वितरण की माप सांख्यकी आधार पर करना गिनी गुणाक है यदि गिनी गुणाक शून्य है तो समाज मे सभी व्यक्तियों की आय समान मानी जायेगी इसके विपरीत गिनी गुणाक का मान 1 का अर्थ है की समाज के कुछ विशेष वर्ग के पास देश की समस्त आय केंद्रित है गिनी गुणांक, प्रासंगिक संयुक्त राष्ट्र संगठन के प्रावधानों के अनुसार:

कम से कम 0.2 :-पूर्ण आय मीन

- **0.2-0.3** :-औसत आय की तुलना
- **0.3-0.4** :-अपेक्षाकृत उचित आय
- **0.4-0.5** :-बड़ी आय की खाई

ऊपर 0.5 :-आय की खाई

G =छायांकित क्षेत्रफल A/समानता रेखा के नीचे का सम्पूर्ण क्षेत्रफल BCD

G=0 आय सभी मे समान है

G=1 एक ही व्यक्ति के पास आय है

यह किसी आवृति वितरण के संकेन्द्रण को मापने वाला गुणांक है। गिनी का गुणांक उसके द्वारा बताये गए माध्य अन्तर को समान्तर माध्य के दोगुने से भाग देने पर प्राप्त होता है। समान विरण में यह 0 होगा, वितरण में जैसे-जैसे असमानता बढ़ेगी, वैसे-वैसे गुणांक का मान बढ़ेगा, पूर्ण संकेन्द्रण की अवस्था में यह 1 होगा-

सूत्र रूप में G = $\frac{\Delta 1}{2a}$

जहाँ - G = गिनी गुणांक

$\Delta 1$ = गिनी का माध्य अन्तर

a = समान्तर माध्य

गिनी गुणाक में आय स्तर 0 से 1 के मध्य होती है

आयानगर व ब्रह्मनद 1 से 6 योजना काल तक के व्यय को उपभोग पर लोरेंज वक्र का गिनी गुणाक निकाला तो पाया पिछले बीस वर्षों से विषमता ज्यो की त्यों बरकरार हैकाल्पनिक समता रेखा के नीचे का सम्पूर्ण क्षेत्रफल के अनुपात को प्रदर्शित करता है

गिनी गुणाक ×100 =गिनी सूचकांक कहलाता है

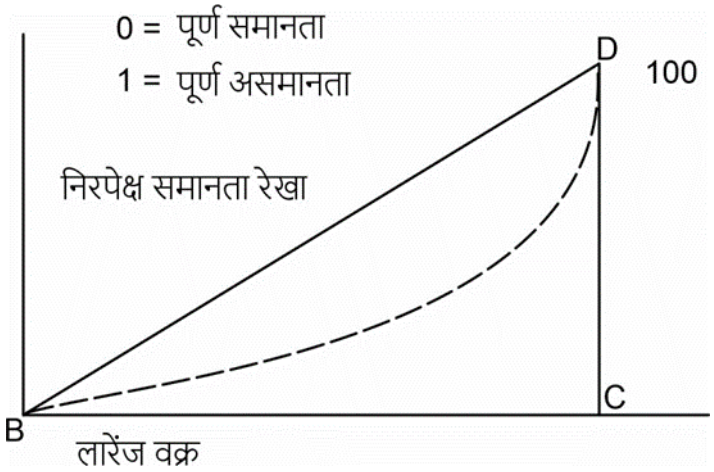

निरपेक्ष गरीबी

सापेक्ष गरीबी मात्रा को नही बताती है इसकी कमी को दूर करने के लिए निरपेक्ष माप का प्रयोग किया जाता हैसर्वप्रथम प्रयोग FAO के प्रथम महानिदेशक R वाइड ने 1945 में किया थागरीबी के निश्चित मापदण्ड को हम गरीबी रेखा कहते है 1978 में योजना आयोग द्वारा ग्रामीण स्तर पर 2400 क्लोरी प्रतिदिन तथा सहरी क्षेत्रों में 2100 क्लोरी प्रतिदिन मानी है जिस व्यक्ति का दैनिक उपभोग व्यय स्तर नीचे होगा वह गरीबी है इस विधि को हम हैंड काउंट विधि कहते है सिर गणना विधि

1.11 गरीबी का सेन दृष्टिकोण उपरोक्त विद्या यह बताने में असक्षम रही की गरीबी रेखा के नीचे व्यक्ति कितना गरीब है वह उसमे कितनी असमानता है विषमता समायोजित प्रति व्यक्ति आय की धारणा अमर्त्यसेन ने 1973 में प्रस्तुत की इस में आय स्तर में वितरण का आयाम जोड़ कर एक नया माप विकसित किया

w=u(1-G)

कल्याण =प्रतिव्यक्ति आय (1-विषमता की आय)

सेन निर्देशाक का विकसित किया की गरीबी रेखा से कितना नीचे गिरावट उस आधार पर गणना की जा सकती है

1961 में 20 रुपया वांछित न्यूतम उपभोग प्रस्तुत कियाजीवन की कुछ निर्दिस्ट आवश्यकता की पूर्ति से वंचित रहना गरीबी हैभारत मे आकलन के लिए योजना आयोग(नीति आयोग) द्वारा सुरेश तेंदुलकर की अद्यक्षता में expart group का गठन किया जिसमे 2009 में रिपोर्ट प्रस्तुत कीगरीबी का अनुमान प्रति 5 वर्ष में nsso द्वारा किया जाता हैश्रम विभाजन की धारणा का समर्थन स्मिथ ने किया थाकौशल विकाश मई 2017 में प्रारंभ हुआअपना गांव अपना काम योजना प्रारम्भ 1 जनवरी 1991 में हुवा इसका उद्देश्य गांव के प्रत्येक के लिए रोजगार उत्पन्न कर गरीबी दूर करनानियोजन गारन्टी योजना का ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम महाराष्ट्र से प्रारम्भ हुवाभारत मे बेरोजगारी का मापन चालू मासिक स्तर पर किया जाता हैदांडेकर रथ फार्मूला का इस्तेमाल 1971 से किया गया उसने भोजन की क्लोरी की मात्रा को आधार माना सुरेश तेंदुलकर समिति ने कास्ट आफ लिविंग को निर्धनता की पहचान के लिए आधार स्वीकार कियाछट्टी पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन का नारा दिया गया लकड़वाला विसेसज्ञ दल 1989 में गठन किया गया व 1993 में रिपोर्ट प्रस्तुत की गई 9 वी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता माप को स्वीकार कर लिया गया परत7 राज्य में अलग अलग निर्धनता रेखा है प्रारंभ में 28 बाद में 35 रेखाएं है

1.12 सारांश

गरीबी केवल पैसे की कमी नहीं है। यह एक या अधिक बुनियादी क्षमताओं का अभाव है जो समाज में न्यूनतम कामकाज हासिल करने के लिए आवश्यक हैं। लेकिन मोटे तौर पर, गरीबी का माप गरीबी रेखा की अवधारणा पर आधारित है, जो न्यूनतम आवश्यकताओं के मौद्रिक अनुमानों से निर्मित होती है। इस इकाई में, हमने विभिन्न दृष्टिकोणों पर चर्चा की जिसके माध्यम से गरीबी को देखा जा सकता है (मौद्रिक, भोजन, क्षमता का अभाव)। हमने गरीबी के विभिन्न प्रकारों (पूर्ण, सापेक्ष, वस्तुनिष्ठ, व्यक्तिपरक, अनुप्रस्थ और स्थायी) की व्याख्या की। इसके बाद, गरीबी रेखा के गठन पर विस्तार से चर्चा की गई। गरीबी रेखा उनकी लागत के संदर्भ में न्यूनतम बुनियादी आवश्यकताओं का अनुमान लगाती है। हमने भारत की गरीबी रेखा के आकलन के लिए गठित विभिन्न विशेषज्ञ समूहों/समितियों की सिफारिशों की आलोचनात्मक व्याख्या की। अंत में, हम भारत में मुख्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर संक्षेप में चर्चा करते हैं।

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "भारतीय अर्थव्यवस्था" - रुद्र दत्त और के.पी.एम. सुंदरम इस पुस्तक में भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को सरल भाषा में समझाया गया है, जो स्नातक छात्रों के लिए उपयोगी है।
2. "भारतीय अर्थव्यवस्था का परिचय" - प्रणब बर्धन इस पुस्तक में भारतीय अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक और समकालीन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो छात्रों को मूलभूत जानकारी प्रदान करता है।

➢ बोध प्रश्न

1. गरीबी क्या है?गरीबी की परिभाषा और इसका महत्व स्पष्ट करें।
2. भारत में गरीबी के प्रमुख कारण क्या हैं?गरीबी विस्तार में राष्ट्रीय उत्पाद की क्या भूमिका होती है?
3. प्रच्छन्न बेरोजगारी क्या होती है?मौसमी बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं?
4. गरीबी और बेरोजगारी के बीच क्या संबंध है?बेरोजगारी कैसे गरीबी को बढ़ावा देती है?

खंड 03 - गरीबी एवं बेरोजगारी

इकाई - 02 गरीबी निवारण की विधियों अवसर, सशक्तीकरण एवं सुरक्षा

इकाई की रूपरेखा

2.0उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 गरीबी निवारण की विधियों अवसर, सशक्तीकरण एवं सुरक्षा
2.3 गरीबी उन्मूलन क्या है
2.4 भारत में गरीबी उन्मूलन
2.5 भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमभारत
2.76गरीबी उन्मूलन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भूमिका
2.7 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभावीता के क्या कारण हैं?
2.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप निम्न कार्य करने में सक्षम होंगे:

- ग्रामीण विकास और गरीबी की अवधारणा को परिभाषित करना;
- गरीबी उन्मूलन की आवश्यकता को स्पष्ट करना;
- गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर अपनाई गई रणनीतियों की आलोचनात्मक जांच करना;
- विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की सूची बनाना; और
- यह स्पष्ट करना कि विभिन्न कार्यक्रमों का गरीबों और ग्रामीण क्षेत्रों पर क्या प्रभाव पड़ा है।

2.1प्रस्तावना

स्वतंत्रता के बाद के युग में भारत ने कई मोर्चों पर सराहनीय सफलता हासिल की है। कृषि के मामले में, एक समय आयातक होने के नाते, हम अब न केवल शुद्ध निर्यातक हैं, बल्कि दुनिया में खाद्यान्न के सबसे बड़े दाताओं में से एक हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, हम अंतरिक्ष, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे कई क्षेत्रों में अग्रणी हैं। इन सबके बावजूद, हमारे देश में दुनिया में सबसे ज़्यादा ग़रीब लोग हैं और इसलिए ग्रामीण विकास और ग़रीबी उन्मूलन राष्ट्रीय विकास नीति के प्रमुख क्षेत्रों में से एक बना हुआ है।

2.2 गरीबी निवारण की विधियों अवसर, सशक्तीकरण एवं सुरक्षा

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को भोजन, मौद्रिक सहायता और बुनियादी आवश्यक वस्तुओं तक उचित पहुंच प्रदान करके देश में गरीबी की दर को कम करना है।

विश्व बैंक के अनुसार, *गरीबी का तात्पर्य खुशहाली से वंचित होना है और इसमें कई आयाम शामिल हैं। इसमें कम आय और गरिमा के साथ जीवित रहने के लिए आवश्यक बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं को प्राप्त करने में असमर्थता शामिल है। गरीबी में स्वास्थ्य और शिक्षा का निम्न स्तर, स्वच्छ पानी और स्वच्छता की खराब पहुंच, अपर्याप्त शारीरिक सुरक्षा, आवाज की कमी और किसी के जीवन को बेहतर बनाने के लिए अपर्याप्त क्षमता और अवसर भी शामिल हैं।*

2.3गरीबी उन्मूलन क्या है? गरीबी उन्मूलन किसी देश से गरीबी उन्मूलन के लिए आर्थिक और मानवीय तरीके से उठाए गए कदमों का समूह है। विश्व बैंक के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन 1.90(अभी 2.15) डॉलर या उससे कम पर जीवन यापन कर रहा है, तो वह अत्यधिक गरीबी में जी रहा है और वर्तमान में दुनिया के 767 मिलियन लोग उस श्रेणी में आते हैं। अंतिम जारी आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, 2011 में, भारत में 268 मिलियन लोग प्रतिदिन 1.90 डॉलर से कम पर जीवित रह रहे थे। गरीबी उन्मूलन और गरीब परिवारों को बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने के लिए भारत सरकार के तहत विभिन्न कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की गईं। ग्रामीण और शहरी गरीबों को आवास उपलब्ध कराने के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना और 2022 तक सभी के लिए आवास जैसी योजनाएं विकसित की गईं। स्टार्ट-अप इंडिया और स्टैंड अप इंडिया जैसी नवीनतम सरकारी योजनाएं लोगों को अपनी आजीविका कमाने के लिए सशक्त बनाने पर केंद्रित हैं।

गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) क्या है? गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) को आर्थिक रूप से कमजोर लोगों और परिवारों की पहचान में उपयोग किए जाने वाले आर्थिक बेंचमार्क के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। बीपीएल भारत सरकार द्वारा एक सीमा आय के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस सीमा मूल्य से कम आय वाले परिवारों या व्यक्तियों को गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।

भारत में बीपीएल मापना भारत में गरीबी रेखा कीमतों के स्तर के बजाय पूरी तरह से प्रति व्यक्ति आय पर निर्भर करती है। गरीबी रेखा बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने के लिए आवश्यक न्यूनतम आय है जो बुनियादी मानवीय जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक है। इस गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या के अनुपात को गरीबी अनुपात या हेडकाउंट अनुपात कहा जाता है। बीपीएल निर्धारित करने के लिए अधिकांश देशों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा समान दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं। भारत में, राष्ट्रीय स्तर पर पहली आधिकारिक ग्रामीण और शहरी गरीबी रेखा 1979 में वाईके अलघ समिति द्वारा पेश की गई थी। बीपीएल की माप के मानदंड ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग हैं। वर्तमान में, दसवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार, अभाव की डिग्री को 13 मापदंडों के साथ

0-4 तक दिए गए अंकों के साथ मापदंडों की मदद से मापा जाता है। अधिकतम 52 अंकों में से 17 अंक या उससे कम (पूर्व में 15 अंक या उससे कम) अंक वाले परिवारों को बीपीएल के रूप में वर्गीकृत किया गया है। गरीबी रेखा की गणना हर 5 साल में की जाती है। मुद्रास्फीति पर आधारित हालिया अनुमान के अनुसार, सीमा आय रुपये से अधिक होनी चाहिए। शहरी क्षेत्रों के लिए 962 रुपये प्रति माह और ग्रामीण क्षेत्रों में 768 रुपये प्रति माह यानी, रुपये से ऊपर। शहरी क्षेत्र में प्रतिदिन 32 रुपये और उससे अधिक। ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिदिन 26 रु.

2.4भारत में गरीबी उन्मूलन- पंचवर्षीय योजनाएँ भारत से गरीबी उन्मूलन के लिए ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की गईं। वर्ष 1951 में शुरू हुई इन पंचवर्षीय योजनाओं की सूची नीचे दी गई है: प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956): यह योजना मुख्य रूप से कृषि और सिंचाई पर केंद्रित थी और इसका उद्देश्य सर्वांगीण संतुलित विकास प्राप्त करना था। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-1961): इसमें बुनियादी और भारी उद्योगों के विकास, रोजगार के अवसरों में विस्तार और राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि पर ध्यान केंद्रित किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-1966): चीनी आक्रमण (1962), भारत-पाक युद्ध (1965) और भयंकर सूखे के कारण तीसरी पंचवर्षीय योजना पूरी तरह विफल हो गई। इसे तीन वार्षिक योजनाओं द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो 1966 से 1969 तक जारी रहीं।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1966-1974): इसका उद्देश्य राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत की वृद्धि करना, आर्थिक स्थिरता बनाना, आय वितरण में असमानताओं को कम करना और समानता के साथ सामाजिक न्याय प्राप्त करना था।पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1979): यह योजना मुख्य रूप से गरीबी हटाने (गरीबी हटाओ) पर केंद्रित थी और इसका उद्देश्य गरीब जनता के बड़े हिस्से को गरीबी रेखा से ऊपर लाना था। इसने रुपये की न्यूनतम आय का भी आश्वासन दिया। 1972-73 की कीमतों पर प्रति व्यक्ति प्रति माह 40 की गणना की गई। जनता सरकार के सत्ता में आने पर योजना (1979) के बजाय 1978 में समाप्त कर दी गई।छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1985): छठी पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी हटाना था, जिसमें आर्थिक विकास, बेरोजगारी उन्मूलन, प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता और कमजोर वर्गों की जीवन शैली को ऊपर उठाने पर प्रमुख ध्यान दिया गया था। समाज का.सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90): सातवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य गरीबी की घटनाओं में उल्लेखनीय कमी के साथ गरीबों के जीवन स्तर में सुधार करना था। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97): इस योजना का लक्ष्य रोजगार सृजन करना था लेकिन बाद में यह अपने अधिकांश लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रही।नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002): नौवीं पंचवर्षीय योजना कृषि, रोजगार, गरीबी और बुनियादी ढांचे के क्षेत्रों पर केंद्रित थी। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007): दसवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य वर्ष 2007 तक गरीबी अनुपात को 26 प्रतिशत से घटाकर 21 प्रतिशत करना और बच्चों को 2007 तक पांच साल की स्कूली शिक्षा पूरी करने में मदद करना था। .

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012): ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य गरीबी को 10 प्रतिशत अंक कम करना, 7 करोड़ नए रोजगार के अवसर पैदा करना और सभी गांवों में बिजली कनेक्शन सुनिश्चित करना है।

2.5भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमभारत के योजना आयोग के 2011-2012 के अनुमान के अनुसार, ग्रामीण आबादी का 25.7% गरीबी रेखा से नीचे था और शहरी क्षेत्रों के लिए, यह 13.7% था। उचित बुनियादी ढांचे की कमी, अपर्याप्त खाद्य आपूर्ति और खराब रोजगार प्रणाली के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की दर शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। गरीबी उन्मूलन की पहल के साथ विकसित किए गए प्रमुख गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का उल्लेख नीचे दी गई तालिका में किया गया है:

योजना/कार्यक्रम का नाम	**गठन का वर्ष**	**सरकारी मंत्रालय**	**उद्देश्य**
एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी)	**1978**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• ग्रामीण क्षेत्र में स्वरोजगार के स्थायी अवसरों के विकास के माध्यम से गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले चिन्हित लक्षित समूहों के परिवारों का उत्थान करना।
प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना	**1985**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• ग्रामीण क्षेत्रों में 13 लाख आवास इकाइयाँ उपलब्ध कराने के साथ-साथ सभी के लिए आवास इकाइयाँ बनाना। • लोगों को रियायती दरों पर ऋण उपलब्ध कराना। • मांग पर रोजगार प्रदान करके और हर साल विशिष्ट गारंटीकृत मजदूरी रोजगार के माध्यम से परिवारों को मजदूरी रोजगार के अवसर बढ़ाना।
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना	**15 अगस्त 1995**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• भारत के 65 वर्ष या उससे अधिक आयु के तथा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले वरिष्ठ नागरिकों

(एनओएपीएस)			को पेंशन प्रदान करना। • यह 60-79 वर्ष की आयु के लोगों के लिए 200 रुपये और 80 वर्ष से अधिक आयु के लोगों के लिए 500 रुपये की मासिक पेंशन प्रदान करता है।
राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना (एनएफबीएस)	**अगस्त 1995**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• लाभार्थी को 20,000 रुपये की राशि प्रदान करना जो परिवार के मुख्य कमाने वाले की मृत्यु के बाद परिवार का अगला मुखिया होगा।
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (जेजीएसवाई)	**1 अप्रैल 1999**	ग्राम पंचायतों द्वारा कार्यान्वित किया गया।	• ग्रामीण क्षेत्रों के बुनियादी ढांचे का विकास करना जिसमें संपर्क सड़कें, स्कूल और अस्पताल शामिल हैं। • गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को निरंतर मजदूरी रोजगार प्रदान करना।
अन्नपूर्णा	**1999-2000**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के तहत पंजीकृत नहीं होने वाले पात्र वरिष्ठ नागरिकों को 10 किलोग्राम मुफ्त खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
काम के बदले अनाज कार्यक्रम	**-2000**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• इसका उद्देश्य मजदूरी रोजगार के माध्यम से खाद्य सुरक्षा को बढ़ाना है। राज्यों को मुफ्त में खाद्यान्न की आपूर्ति की जाती है, हालांकि, भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) के गोदामों से खाद्यान्न की आपूर्ति धीमी है।

संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना (एसजीआरवाई)	-	-	• योजना का मुख्य उद्देश्य मजदूरी रोजगार सृजन, ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ आर्थिक बुनियादी ढांचे का निर्माण और गरीबों के लिए भोजन और पोषण सुरक्षा का प्रावधान करना है।
महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)	**2005**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• यह अधिनियम प्रत्येक ग्रामीण परिवार को हर साल 100 दिन का सुनिश्चित रोजगार प्रदान करता है। प्रस्तावित नौकरियों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। केंद्र सरकार राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कोष भी स्थापित करेगी। • इसी प्रकार, राज्य सरकारें योजना के कार्यान्वयन के लिए राज्य रोजगार गारंटी कोष की स्थापना करेंगी। कार्यक्रम के तहत, यदि किसी आवेदक को 15 दिनों के भीतर रोजगार प्रदान नहीं किया जाता है, तो वह दैनिक बेरोजगारी भत्ते का हकदार होगा।
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन	**2007**	कृषि मंत्रालय	• देश के चिन्हित जिलों में क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता वृद्धि के माध्यम से चावल, गेहूं, दालों और मोटे अनाजों का उत्पादन स्थायी तरीके से बढ़ाना
राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन	**2011**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• यह ग्रामीण गरीबों की जरूरतों में विविधता लाने

			और उन्हें मासिक आधार पर नियमित आय के साथ रोजगार प्रदान करने की आवश्यकता को विकसित करता है। जरूरतमंदों की मदद के लिए ग्राम स्तर पर स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जाता है
राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन	**2013**	आवास और शहरी मामलों का मंत्रालय	• यह स्वयं सहायता समूहों में शहरी गरीबों को संगठित करने, बाजार-आधारित रोजगार के लिए कौशल विकास के अवसर पैदा करने और ऋण तक आसान पहुंच सुनिश्चित करके उन्हें स्व-रोज़गार उद्यम स्थापित करने में मदद करने पर केंद्रित है।
प्रधानमंत्री जनधन योजना	**2014**	वित्त मंत्रित्व	• इसका उद्देश्य सब्सिडी, पेंशन, बीमा आदि का प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण करना था और 1.5 करोड़ बैंक खाते खोलने का लक्ष्य प्राप्त किया। यह योजना विशेष रूप से बैंक रहित गरीबों को लक्षित करती है
प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना	**2015**	कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय	• यह श्रम बाजार में नए प्रवेशकों, विशेष रूप से श्रम बाजार और दसवीं और बारहवीं कक्षा छोड़ने वालों पर ध्यान केंद्रित करेगा
सांसद आदर्श ग्राम योजना (एसएजीवाई)	**2014**	ग्रामीण विकास मंत्रालय	• 2019 तक तीन गांवों में संस्थागत और भौतिक बुनियादी ढांचे का विकास करना। इस योजना का लक्ष्य

			2024 तक पांच 'आदर्श गांव' या 'मॉडल गांव' विकसित करना है।
प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना	**2015**	वित्त मंत्रित्व	• यह योजना समाज के गरीब और कम आय वाले वर्ग को जीवन कवरेज प्रदान करती है। यह योजना अधिकतम 2 लाख रुपये की सुनिश्चित राशि प्रदान करती है
प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना	**2015**	वित्त मंत्रित्व	• यह योजना समाज के वंचित वर्ग के लोगों के लिए एक बीमा पॉलिसी है
राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना	**2016**	स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (MoHFW)	• 19 वर्ष से अधिक आयु की गर्भवती माता को 6000 रूपये की धनराशि प्रदान करना। • यह राशि आम तौर पर जन्म से 12-8 सप्ताह पहले तीन किश्तों में प्रदान की जाती है और बच्चे की मृत्यु के बाद भी इसका लाभ उठाया जा सकता है।
प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (पीएमयूवाई)	**2016**	पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय	• इसमें गरीबी रेखा से नीचे की महिलाओं को 50 मिलियन एलपीजी कनेक्शन वितरित करने की परिकल्पना की गई है
प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना (पीएमजीकेवाई)	**2016**	वित्त मंत्रित्व	• यह योजना गोपनीय तरीके से बेहिसाब संपत्ति और काले धन की घोषणा करने और अघोषित आय पर 50% जुर्माना भरने के बाद अभियोजन से बचने का अवसर प्रदान करती

			है। योजना में अघोषित आय का अतिरिक्त 25% निवेश किया जाता है जिसे चार साल के बाद बिना किसी ब्याज के वापस किया जा सकता है।
सोलर चरखा मिशन	**2018**	सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय (एमएसएमई)	• इसका लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में सौर चरखा समूहों के माध्यम से लगभग एक लाख लोगों के लिए रोजगार सृजन करना है
राष्ट्रीय पोषण मिशन (एनएनएम), पोषण अभियान	**2018**	महिला एवं बाल विकास मंत्रालय	• कुपोषण के स्तर को कम करना और देश में बच्चों की पोषण स्थिति को बढ़ाना। साथ ही, किशोरों, बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के पोषण संबंधी परिणामों में सुधार करना
प्रधान मंत्री श्रम योगी मान-धन (PM-SYM)	**2019**	श्रम और रोजगार मंत्रालय	• यह एक केंद्र सरकार की योजना है जो असंगठित श्रमिकों (यूडब्ल्यू) की वृद्धावस्था सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा के लिए शुरू की गई है।
प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर्स आत्मनिर्भर निधि-पीएम स्वनिधि	**2020**	आवास और शहरी कार्य मंत्रालय (MoHUA)	• इसका उद्देश्य COVID-19 महामारी के कारण प्रभावित स्ट्रीट वेंडरों को सूक्ष्म-ऋण सुविधाएं प्रदान करना है

भारत में गरीबी उन्मूलन के अलावा, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों ने बीपीएल श्रेणियों के परिवारों को रोजगार के अवसर प्रदान करने की भी पहल की।

2.6गरीबी उन्मूलन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भूमिका सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) जो भोजन और खाद्यान्न वितरण के प्रबंधन की एक प्रणाली के रूप में विकसित हुई, गरीबी उन्मूलन में एक प्रमुख भूमिका निभाती है। यह कार्यक्रम भारत की केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा संयुक्त रूप से संचालित किया जाता है। जिम्मेदारियों में शामिल हैं: राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को चावल, गेहूं, मिट्टी का तेल और चीनी जैसी वस्तुओं का आवंटन।गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए राशन कार्ड जारी करना।गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों की पहचान।भोजन की कमी का प्रबंधन एवं खाद्यान्न वितरण।पीडीएस को बाद में जून 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) के रूप में फिर से लॉन्च किया गया और इसे भारत सरकार के उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय द्वारा नियंत्रित किया जाता है। टीपीडीएस खाद्यान्न की उचित व्यवस्था और वितरण के लिए गरीबों की पहचान और कार्यान्वयन में प्रमुख भूमिका निभाता है। इसलिए, भारत सरकार के तहत लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) पीडीएस के समान ही भूमिका निभाती है लेकिन गरीबी रेखा से नीचे के लोगों पर विशेष ध्यान केंद्रित करती है।

भारत में गरीबी उन्मूलन में रोजगार सृजन क्यों महत्वपूर्ण है?भारत में बेरोजगारी की समस्या को भारत में गरीबी का एक प्रमुख कारण माना जाता है। किसी देश की गरीबी दर को उच्च आर्थिक विकास और बेरोजगारी की समस्या को कम करके कम किया जा सकता है। भारत सरकार के तहत विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम स्थापित किए गए हैं जिनका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को हर साल मांग पर रोजगार और विशिष्ट गारंटीकृत मजदूरी रोजगार प्रदान करके गरीबी उन्मूलन करना है।

गरीबी उन्मूलन में रोजगार सृजन निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है:इससे गरीब परिवारों की आय का स्तर बढ़ेगा और देश में गरीबी की दर को कम करने में मदद मिलेगी। इसलिए, बेरोजगारी और गरीबी के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार कार्यक्रमों के सृजन के माध्यम से ग्रामीण-शहरी प्रवास को कम करेगा।रोजगार कार्यक्रमों के सृजन के माध्यम से आय स्तर में वृद्धि से गरीबों को शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं और स्वच्छता सहित बुनियादी सुविधाओं तक पहुंचने में मदद मिलेगी।

2.7गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभावीता के क्या कारण हैं?

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभावीता के प्रमुख कारण नीचे दिये गये हैं: गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवारों की सटीक संख्या की सही पहचान और लक्ष्यीकरण नहीं कर सकता है। परिणामस्वरूप, कुछ परिवार जो इन कार्यक्रमों के तहत पंजीकृत नहीं हैं, वे पात्र लोगों के बजाय सुविधाओं से लाभान्वित होते हैंसमान सरकारी योजनाओं का ओवरलैप होना अप्रभावीता का एक प्रमुख कारण है क्योंकि इससे गरीब लोगों और अधिकारियों के बीच भ्रम पैदा होता है और योजना का लाभ गरीबों तक नहीं पहुंच पाता है।देश की अधिक जनसंख्या के कारण बड़ी संख्या में लोगों तक योजनाओं का लाभ पहुंचाने का बोझ बढ़ जाता

है और इससे कार्यक्रमों की प्रभावशीलता कम हो जाती है।योजनाओं के कार्यान्वयन के विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार एक और बड़ा कारण है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "विकास और योजना" - एम.एल. झिंगन यह पुस्तक विकास अर्थशास्त्र और योजना के सिद्धांतों पर आधारित है, जो स्नातक छात्रों के लिए उपयुक्त है।
2. "भारतीय आर्थिक विकास" - मीरा सुल्तानिया यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के विभिन्न पहलुओं और चुनौतियों का परिचय देती है।
3. "इंडियन इकॉनमी: परफॉर्मेंस एंड पॉलिसी" - उमा कपिला यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था की समकालीन नीतियों और प्रदर्शन का गहन विश्लेषण करती है, जो स्नातकोत्तर छात्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

- बोध प्रश्न

1. भारत में गरीबी मापन के लिए किन समितियों का गठन किया गया है?लकड़वाला समिति, तेंदुलकर समिति और रंगराजन समिति की रिपोर्ट के प्रमुख बिंदु बताएं।
2. बेरोजगारी के प्रकार क्या हैं?भारत में बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारों पर विस्तार से चर्चा करें, जैसे प्रच्छन्न, मौसमी, संरचनात्मक बेरोजगारी।
3. बेरोजगारी के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव क्या होते हैं?बेरोजगारी से समाज और व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति पर क्या असर पड़ता है?
4. भारत में गरीबी उन्मूलन के लिए कौन-कौन सी योजनाएं चलाई जा रही हैं?प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना (PMGKY) और मनरेगा के प्रमुख उद्देश्य बताएं।

खंड 03 - गरीबी एवं बेरोजगारी

इकाई - 03 भारत में बेरोजगारी : अदृश्य बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी

इकाई की रूपरेखा

3.0उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भारत में बेरोजगारी; अदृश्य बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी

3.3बेरोजगारी के प्रकार:

3.4सरकारी उपाय और योजनाएँ

3 5बेरोजगारी मापने में चुनौतियाँ:

. 3.6भारत में बेरोज़गारी का कारण

3.7आगे की राह

3.8 रोजगार योजनाएँ MANREGA आदि

3.9 सारांश

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तके

3.0 उद्देश्य

यह इकाई भारत में बेरोजगारी की समस्या और इस समस्या से निपटने के लिए अपनाए गए नीतिगत उपायों का अवलोकन प्रदान करती है। इसे पढ़ने के बाद आप निम्न कार्य कर सकेंगे:

- मैं बेरोजगारी का अर्थ समझा पाऊंगा;
- मैं भारत में पाई जाने वाली बेरोजगारी के प्रकारों की पहचान कर पाऊंगा;
- मैं भारत में बेरोजगारी की सीमा का वर्णन कर पाऊंगा;
- मैं बेरोजगारी के कारणों की पहचान कर पाऊंगा;
- मैं बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार की नीति की जांच कर पाऊंगा;
- मैं भारत में बेरोजगारी उन्मूलन की विभिन्न योजनाओं की व्याख्या कर पाऊंगा।

3.1 प्रस्तावना

रोजगार के अवसरों का विस्तार भारत में विकास नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में रोजगार के अवसरों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, लेकिन तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि हुई है। सभी बाजार अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी एक सामान्य घटना है, चाहे उनका विकास का स्तर कुछ भी हो। लेकिन एक अविकसित अर्थव्यवस्था में व्यापक गरीबी के कारण बेरोजगारी न केवल समाज के लिए दर्दनाक है, बल्कि संसाधनों की बर्बादी भी है, जिसका उपयोग अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता था। इस प्रकार, भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए मूल उद्देश्य अधिकतम संभव रोजगार प्राप्त करना है।

3.2 भारत में बेरोजगारी; अदृश्य बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी किसी व्यक्ति द्वारा सक्रियता से रोज़गार की तलाश किये जाने के बावजूद जब उसे काम नहीं मिल पाता तो यह अवस्था बेरोजगारी कहलाती है।बेरोजगारी का प्रयोग प्रायः अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के मापक के रूप में किया जाता है।बेरोज़गारी को सामान्यत: बेरोज़गारी दर के रूप में मापा जाता है, जिसे श्रमबल में शामिल व्यक्तियों की संख्या में से बेरोज़गार व्यक्तियों की संख्या को भाग देकर प्राप्त किया जाता है।राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) किसी व्यक्ति की निम्नलिखित स्थितियों पर रोज़गार और बेरोज़गारी को परिभाषित करता है:कार्यरत (आर्थिक गतिविधि में संलग्न) यानी 'रोज़गार'।काम की तलाश में या काम के लियेउपलब्ध यानी 'बेरोज़गार'।न तो काम की तलाश में है और न ही उपलब्ध।पहले दो श्रम बल का गठन करते हैं और बेरोजगारी दर उस श्रम बल का प्रतिशत है जो बिना काम के है।

बेरोज़गारी दर = (बेरोज़गार श्रमिक/कुल श्रम शक्ति) × 100

3.3बेरोजगारी के प्रकार:

1. **प्रच्छन्न बेरोजगारी**: यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें आवश्यकता से अधिक लोगों को काम पर रखा जाता है। इसमें व्यक्ति कार्यरत होने के बावजूद उनकी उत्पादकता न्यूनतम होती है। यह बेरोजगारी मुख्यतः भारत के कृषि और असंगठित क्षेत्रों में पाई जाती है, जहाँ बहुत से लोग एक ही काम में लगे रहते हैं, जबकि आवश्यकता केवल कुछ लोगों की होती है। यह बेरोजगारी विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में अधिक देखी जाती है, जहाँ किसान परिवार के सभी सदस्य खेती के काम में लगे रहते हैं, परंतु उनकी उत्पादकता इतनी अधिक नहीं होती कि सभी की आवश्यकता हो। इसका अर्थ यह है कि अगर कुछ लोग काम छोड़ दें, तो भी उत्पादन में कोई गिरावट नहीं होगी। प्रच्छन्न बेरोजगारी का एक और उदाहरण छोटे पारिवारिक व्यवसायों में देखा जा सकता है।
2. **मौसमी बेरोजगारी**: यह बेरोजगारी का वह प्रकार है जो वर्ष के कुछ निश्चित मौसमों में उत्पन्न होती है। भारत में यह खास तौर पर खेतिहर मज़दूरों में देखी जाती है, जो फसल के समय तो काम करते हैं, परंतु बाकी समय में उनके पास काम नहीं होता। मौसमी बेरोजगारी को कम करने के लिए सरकार को वैकल्पिक रोजगार योजनाएँ बनानी चाहिए, जैसे कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से इतर रोजगार के अवसर प्रदान करना। सरकार की मनरेगा योजना (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम) इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जो ग्रामीण बेरोजगारों को काम उपलब्ध कराती है।
3. **संरचनात्मक बेरोजगारी**: जब बाज़ार में उपलब्ध नौकरियों और श्रमिकों के कौशल के बीच असंतुलन होता है, तो इसे संरचनात्मक बेरोजगारी कहा जाता है। भारत में कई लोग आवश्यक कौशल की कमी के कारण बेरोजगार होते हैं। शिक्षा और प्रशिक्षण के

निम्न स्तर के कारण उन्हें नौकरियों के योग्य बनाना कठिन हो जाता है। संरचनात्मक बेरोजगारी का प्रमुख कारण शिक्षा और कौशल में कमी है। भारत में तकनीकी शिक्षा का स्तर और व्यावसायिक प्रशिक्षण की कमी के कारण कई लोग बाज़ार की मांग के अनुसार काम करने में असमर्थ रहते हैं। यह समस्या अधिकतर उन क्षेत्रों में देखी जाती है जहाँ तकनीकी नवाचार या औद्योगिक परिवर्तन होते हैं, और पुराने कामों की जगह नई तकनीकों की मांग होती है।

4. **चक्रीय बेरोजगारी**: यह बेरोजगारी व्यापार चक्र के कारण होती है। आर्थिक मंदी के दौरान बेरोजगारी की दर बढ़ती है, जबकि आर्थिक वृद्धि के समय यह घट जाती है। भारत में चक्रीय बेरोजगारी का प्रभाव कम देखा जाता है, क्योंकि यह अधिकतर पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में प्रमुख होती है। चक्रीय बेरोजगारी का प्रभाव पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, खासकर मंदी के समय। मंदी में उत्पादन में गिरावट आती है, जिससे नौकरियों की संख्या घटती है। चक्रीय बेरोजगारी अधिकतर विकसित पूंजीवादी देशों में देखी जाती है, लेकिन वैश्वीकरण के कारण इसके प्रभाव अब विकासशील देशों, जैसे भारत में भी देखे जा सकते हैं।

- **तकनीकी बेरोजगारी**: प्रौद्योगिकी के विकास के कारण नौकरियों का समाप्त हो जाना तकनीकी बेरोजगारी कहलाता है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2016 में भारत में ऑटोमेशन के कारण 69% नौकरियाँ खतरे में थीं। प्रौद्योगिकी में हो रहे तेजी से विकास के कारण बहुत से पारंपरिक नौकरियाँ समाप्त हो रही हैं, जैसे कि मैनुअल लेबर और पुराने उद्योगों में काम करने वाले लोग। ऑटोमेशन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), और मशीन लर्निंग जैसी तकनीकों के आगमन से नौकरियों की प्रकृति बदल रही है, जिससे असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को रोजगार ढूँढ़ना कठिन हो जाता है।

5. **घर्षण बेरोजगारी**: घर्षण बेरोजगारी तब होती है जब लोग एक नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी की तलाश में होते हैं। इसमें नौकरी के बीच समय का अंतराल देखा जाता है, और यह बेरोजगारी अक्सर स्वैच्छिक होती है, क्योंकि श्रमिक बेहतर अवसरों की तलाश में पुरानी नौकरी छोड़ देते हैं। यद्यपि घर्षण बेरोजगारी अस्थायी बेरोजगारी होती है, इसे श्रमिकों के लिए सकारात्मक माना जा सकता है क्योंकि यह दर्शाता है कि श्रमिक अपने कौशल को बेहतर करने और उच्च वेतन या बेहतर कार्य स्थितियों की तलाश में हैं। यह बेरोजगारी अर्थव्यवस्था के भीतर गतिशीलता को दर्शाती है और रोजगार के अवसरों में सुधार को भी दर्शाती है।

6. **सुभेद्य रोज़गार**: सुभेद्य रोजगार का अर्थ है कि लोग अनौपचारिक रूप से बिना उचित नौकरी अनुबंध के काम कर रहे होते हैं, और उनके कार्य का कोई कानूनी या सामाजिक सुरक्षा नहीं होता। यह रोजगार अस्थिर होता है और इस स्थिति में कार्यरत लोगों को बेरोजगार माना जा सकता है, क्योंकि उनका काम आधिकारिक रूप से रिकॉर्ड नहीं किया जाता है। सुभेद्य रोजगार का मतलब है कि जो लोग अनौपचारिक रूप से

कार्यरत हैं, उन्हें कोई सामाजिक सुरक्षा या स्थायित्व नहीं मिलता। यह समस्या विशेष रूप से अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के लिए होती है, जैसे कि दिहाड़ी मज़दूर, घरों में काम करने वाले श्रमिक, और अस्थायी रूप से काम करने वाले लोग। इस तरह के रोजगार में श्रमिकों को किसी भी प्रकार की कानूनी या सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती है, जिससे उनका भविष्य अनिश्चित हो जाता है।

7. **स्वैच्छिक बेरोजगारी**: स्वैच्छिक बेरोजगारी तब होती है जब व्यक्ति अपनी नौकरी स्वयं छोड़ देता है, जैसे कि बेहतर अवसर या उच्च वेतन की तलाश में। इस प्रकार की बेरोजगारी अर्थव्यवस्था में अस्थायी होती है और इसे घर्षण बेरोजगारी के रूप में भी देखा जाता है।
8. **अप्रकट बेरोजगारी (Disguised Unemployment)**: यह तब होता है जब श्रमिक एक काम में लगे होते हैं लेकिन उनका योगदान शून्य होता है। यह मुख्य रूप से विकासशील देशों में अधिक पाया जाता है जहाँ श्रम अधिक होता है और उत्पादन में सभी का योगदान नहीं होता।
9. **दीर्घकालिक बेरोजगारी**: यह बेरोजगारी तब होती है जब लोग लंबे समय तक बेरोजगार रहते हैं, यानी एक निश्चित अवधि (जैसे 6 महीने या उससे अधिक) तक उन्हें कोई काम नहीं मिलता। यह समस्या तब उत्पन्न होती है जब अर्थव्यवस्था में व्यापक और गंभीर समस्याएँ होती हैं, जैसे मंदी या संरचनात्मक बदलाव।

3.4सरकारी उपाय और योजनाएँ: भारत सरकार ने बेरोजगारी से निपटने के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं, जैसे कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), स्टार्टअप इंडिया, स्टैंडअप इंडिया, और मनरेगा। इन योजनाओं का उद्देश्य बेरोजगार लोगों को कौशल विकास, रोजगार सृजन और स्वरोजगार के अवसर प्रदान करना है।

भारत में बेरोजगारी को मापने के कई तरीके हैं, जो विभिन्न सरकारी संगठनों और एजेंसियों द्वारा किए जाते हैं। बेरोजगारी को मापने के लिए निम्नलिखित प्रमुख उपाय और तरीकों का उपयोग किया जाता है:

1. **राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) के सर्वेक्षण**:**साप्ताहिक स्थिति**: इस विधि में यह देखा जाता है कि सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक व्यक्ति ने कम से कम एक घंटे का काम किया या नहीं। जो व्यक्ति उस सप्ताह में किसी भी कार्य में नहीं लगा, उसे बेरोजगार माना जाता है।**आर्थिक स्थिति (Current Daily Status)**: इस विधि में व्यक्ति की दैनिक स्थिति को मापा जाता है। जो लोग एक दिन के लिए भी काम नहीं करते हैं, उन्हें बेरोजगार माना जाता है।**स्थायी स्थिति (Usual Principal Status)**: इस विधि में यह देखा जाता है कि पिछले एक साल में व्यक्ति मुख्य रूप से किस गतिविधि में शामिल था। अगर व्यक्ति का मुख्य रोजगार पिछले एक वर्ष में बेरोजगारी का था, तो उसे बेरोजगार माना जाता है।

2. **सीएमआईई (CMIE) के उपभोक्ता पिरामिड घरेलू सर्वेक्षण (CPHS)**: सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (CMIE) बेरोजगारी को मापने के लिए नियमित रूप से घरेलू सर्वेक्षण करता

है। यह सर्वेक्षण देशभर के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में किया जाता है। इसमें बेरोजगार व्यक्तियों का प्रतिशत मापा जाता है, यानी कार्यबल में शामिल लोगों में से कितने लोग काम की तलाश कर रहे हैं, लेकिन उन्हें काम नहीं मिल रहा है।

3. **श्रम और रोजगार मंत्रालय के अधीन Periodic Labour Force Survey (PLFS):**2017 में सरकार ने PLFS शुरू किया, जो NSSO द्वारा संचालित होता है। यह सर्वेक्षण रोजगार और बेरोजगारी की तात्कालिक स्थिति को मापता है। इसमें यह देखा जाता है कि कितने लोग कार्यशील आबादी में हैं, कितने लोग कार्यरत हैं और कितने लोग बेरोजगार हैं।PLFS के आंकड़ों के अनुसार बेरोजगारी दर की गणना की जाती है और इसे त्रैमासिक या वार्षिक रूप से प्रकाशित किया जाता है।

4. **सेंसेक्स डेटा और अन्य आर्थिक संकेतक:** भारत की बेरोजगारी दर को आर्थिक संकेतकों के साथ भी मापा जाता है। जैसे GDP विकास दर, विनिर्माण क्षेत्र की उत्पादकता, और श्रमिकों के कौशल स्तर से भी बेरोजगारी की प्रवृत्तियों को समझा जाता है।अगर आर्थिक विकास कम होता है, तो बेरोजगारी बढ़ सकती है और इसके विपरीत।

5. **राज्यवार और क्षेत्रीय बेरोजगारी सर्वेक्षण:** कई राज्य सरकारें और क्षेत्रीय निकाय भी बेरोजगारी दर मापने के लिए अपने-अपने सर्वेक्षण आयोजित करती हैं। इनसे राज्य और क्षेत्र विशेष की बेरोजगारी के वास्तविक कारणों और आंकड़ों को जानने में मदद मिलती है।

6. **कार्यबल भागीदारी दर (Labour Force Participation Rate - LFPR):** बेरोजगारी को मापने का एक महत्वपूर्ण तरीका कार्यबल भागीदारी दर (LFPR) को देखना भी होता है। यह दर उस प्रतिशत को मापती है, जो कार्यशील उम्र की आबादी में से काम की तलाश कर रही होती है। अगर LFPR कम होता है, तो इसका मतलब यह हो सकता है कि कई लोग काम की तलाश में नहीं हैं, जो वास्तविक बेरोजगारी दर को छिपा सकता है।

7. **रोज़गार और बेरोज़गारी एक्सचेंज डेटा:** सरकार द्वारा संचालित रोज़गार एक्सचेंजों के पास पंजीकृत बेरोजगार लोगों का डेटा होता है। हालांकि, यह पूर्ण तस्वीर नहीं दिखाता क्योंकि कई लोग रोजगार एक्सचेंज में पंजीकरण नहीं कराते हैं।

8. **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA) के आँकड़े:**MGNREGA के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को मापा जा सकता है, क्योंकि जो लोग बेरोजगार होते हैं, वे इस योजना के तहत काम की मांग करते हैं। इस योजना के तहत कितने लोगों ने काम माँगा, यह भी बेरोजगारी का एक संकेत हो सकता है।

9. **औद्योगिक विकास और निजी क्षेत्र के रोजगार आँकड़े**: बेरोजगारी मापने का एक और तरीका यह भी है कि विभिन्न उद्योगों और निजी क्षेत्रों में कितने लोगों को रोजगार मिला है, उसका विश्लेषण करना। जैसे कि आईटी, निर्माण, कृषि, और अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को मापकर बेरोजगारी की स्थिति को समझा जा सकता है।

3.5बेरोजगारी मापने में चुनौतियाँ:

असंगठित क्षेत्र का योगदान: भारत में एक बड़ा हिस्सा असंगठित क्षेत्र से आता है, जहाँ सटीक बेरोजगारी का माप करना मुश्किल होता है क्योंकि इस क्षेत्र में कोई पुख्ता रिकॉर्ड नहीं होते।

प्रच्छन्न बेरोजगारी की पहचान: कृषि और अन्य असंगठित क्षेत्रों में प्रच्छन्न बेरोजगारी की पहचान और मापना कठिन होता है क्योंकि यहाँ उत्पादकता का स्पष्ट पैमाना नहीं होता।

आंकड़ों का अभाव: ग्रामीण क्षेत्रों और छोटी जगहों पर बेरोजगारी के सटीक आंकड़ों का अभाव एक बड़ी समस्या है, जिससे समग्र राष्ट्रीय बेरोजगारी दर का आकलन करना मुश्किल हो जाता है।भारत में बेरोजगारी के मापन के लिए विभिन्न विधियाँ और सर्वेक्षण उपलब्ध हैं, जो समय-समय पर अद्यतन होते हैं। हालांकि बेरोजगारी का मापन चुनौतीपूर्ण है, खासकर असंगठित और ग्रामीण क्षेत्रों में, लेकिन सरकारी प्रयासों और सर्वेक्षणों के माध्यम से इसे बेहतर तरीके से समझने की कोशिश की जा रही है।

3.6भारत में बेरोज़गारी का कारण:

सामाजिक कारक: भारत में जाति व्यवस्था प्रचलित है कुछ क्षेत्रों में विशिष्ट जातियों के लिये कार्य निषिद्ध है।बड़े व्यवसाय वाले **बड़े संयुक्त परिवारों** में बहुत से ऐसे व्यक्ति होंगे जो कोई काम नहीं करते हैं तथा परिवार की संयुक्त आय पर निर्भर रहते हैं।

जनसंख्या का तीव्र विकास: भारत में जनसंख्या में निरंतर वृद्धि एक बड़ी समस्या बन गई है।यह बेरोज़गारी के प्रमुख कारणों में से एक है।

कृषि का प्रभुत्व: भारत में अभी भी लगभग आधा कार्यबल कृषि पर निर्भर है।हालाँकि भारत में कृषि अविकसित है।साथ ही यह मौसमी रोज़गार भी प्रदान करती है।

कुटीर और लघु उद्योगों का पतन: औद्योगिक विकास का कुटीर और लघु उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।कुटीर उद्योगों का उत्पादन गिरने से कई कारीगर बेरोज़गार हो गए।

श्रम की गतिहीनता: भारत में श्रम की गतिशीलता कम है। परिवार से लगाव के कारण लोग नौकरी के लिये दूर-दराज़ के इलाकों में नहीं जाते हैं।कम गतिशीलता के लिये **भाषा, धर्म और जलवायु जैसे कारक भी ज़िम्मेदार** हैं।

शिक्षा प्रणाली में दोष: पूंजीवादी दुनिया में नौकरियाँ अत्यधिक विशिष्ट हो गई हैं लेकिन भारत की शिक्षा प्रणाली इन नौकरियों के लिये आवश्यक सही प्रशिक्षण और विशेषज्ञता प्रदान नहीं करती है।इस प्रकार बहुत से लोग जो कार्य करने के इच्छुक हैं वे कौशल की कमी के कारण बेरोज़गार हो जाते हैं।

सरकार द्वारा हाल की पहल : आजीविका और उद्यम हेतु सीमांत व्यक्तियों के लिये समर्थन (SMILE),पीएम-दक्ष (प्रधानमंत्री दक्ष और कुशल संपूर्ण हितग्राही),महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा),प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई),स्टार्टअप इंडिया योजना

3.7आगे की राह

श्रम गहन उद्योगों को बढ़ावा देना: भारत में **खाद्य प्रसंस्करण, चमड़ा और जूते, लकड़ी के निर्माता और फर्नीचर, कपड़ा तथा परिधान एवं वस्त्र** जैसे कई श्रम गहन विनिर्माण क्षेत्र हैं।रोज़गार सृजित करने हेतु प्रत्येक उद्योग के लिये व्यक्तिगत रूप से डिज़ाइन किये गए

विशेष पैकेजों की आवश्यकता होती है।**उद्योगों का विकेंद्रीकरण:** औद्योगिक गतिविधियों का विकेंद्रीकरण आवश्यक है ताकि हर **क्षेत्र के लोगों को रोज़गार** मिल सके।ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से **शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण लोगों के प्रवास को कम** करने में मदद मिलेगी जिससे शहरी क्षेत्र की नौकरियों पर दबाव कम होगा।**राष्ट्रीय रोज़गार नीति का मसौदा तैयार करना:** एक राष्ट्रीय रोज़गार नीति (एनईपी) की आवश्यकता है जिसमें बहुआयामी हस्तक्षेपों का एक समूह शामिल हो जिसमें कई नीति क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले सामाजिक और आर्थिक मुद्दों की एक पूरी शृंखला शामिल हो, न कि केवल श्रम और रोज़गार के क्षेत्र। **राष्ट्रीय रोज़गार नीति के अंतर्निहित सिद्धांतों में शामिल हो सकते हैं:**कौशल विकास के माध्यम से मानव **पूंजी में वृद्धि** करना।**औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों में सभी नागरिकों के लिये पर्याप्त** संख्या में अच्छी गुणवत्ता वाली नौकरियों का सृजन करना।**श्रम बाज़ार में सामाजिक एकता और समानता** को मज़बूत करना।सरकार द्वारा की गई विभिन्न पहलों में **सुसंगतता और अभिसरण**।उत्पादक उद्यमों में प्रमुख निवेशक बनने के लिये निजी क्षेत्र का समर्थन करना।अपनी आय में सुधार करने के लिये अपनी क्षमताओं को मज़बूत करके स्वरोज़गार करने वाले व्यक्तियों का समर्थन करना।

3.8 रोजगार योजनाएँ MANREGA आदि

एक कल्याणकारी राज्य की सफलता का आकलन इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वहाँ सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति के विकास को सुनिश्चित करने के लिये क्या प्रयास किये गए हैं। समग्र विकास की इस पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम अर्थात् मनरेगा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि कृषि संकट और आर्थिक मंदी के दौर में मनरेगा ने ग्रामीण किसानों और भूमिहीन मज़दूरों के लिये एक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य किया है। मौजूदा आर्थिक मंदी ने खासतौर पर देश के ग्रामीण क्षेत्रों को प्रभावित किया है और रोज़गार के अवसरों को काफी कम कर दिया है और मनरेगा के तहत मिलने वाले काम की मांग अचानक बढ़ गई है, जिसके कारण राज्यों के समक्ष बजट की चुनौती उत्पन्न हो गई है। वर्ष 2019-20 के लिये प्रस्तावित बजट में मनरेगा के लिये 60,000 करोड़ रुपए की धनराशि आवंटित की गई थी। कार्यक्रम के वित्तीय विवरण के अनुसार इस राशि का 96 प्रतिशत से अधिक हिस्सा खर्च किया जा चुका है, नया बजट आवंटित होने में अभी दो महीने का समय और लगेगा।

मनरेगा कार्यक्रम

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम अर्थात् मनरेगा को भारत सरकार द्वारा वर्ष 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम, 2005 (NREGA-नरेगा) के रूप में प्रस्तुत किया गया था। वर्ष 2010 में नरेगा (NREGA) का नाम बदलकर मनरेगा (MGNREGA) कर दिया गया।ग्रामीण भारत को 'श्रम की गरिमा' से परिचित कराने वाला मनरेगा रोज़गार की कानूनी स्तर पर गारंटी देने वाला विश्व का सबसे बड़ा सामाजिक

कल्याणकारी कार्यक्रम है।मनरेगा कार्यक्रम के तहत प्रत्येक परिवार के अकुशल श्रम करने के इच्छुक वयस्क सदस्यों के लिये 100 दिन का गारंटीयुक्त रोज़गार, दैनिक बेरोज़गारी भत्ता और परिवहन भत्ता (5 किमी. से अधिक दूरी की दशा में) का प्रावधान किया गया है।ध्यातव्य है कि सूखाग्रस्त क्षेत्रों और जनजातीय इलाकों में मनरेगा के तहत 150 दिनों के रोज़गार का प्रावधान है।मनरेगा एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम है। वर्तमान में इस कार्यक्रम में पूर्णरूप से शहरों की श्रेणी में आने वाले कुछ ज़िलों को छोड़कर देश के सभी ज़िले शामिल हैं। मनरेगा के तहत मिलने वाले वेतन के निर्धारण का अधिकार केंद्र एवं राज्य सरकारों के पास है। जनवरी 2009 से केंद्र सरकार सभी राज्यों के लिये अधिसूचित की गई मनरेगा मज़दूरी दरों को प्रतिवर्ष संशोधित करती है।

मनरेगा की प्रमुख विशेषताएँ

पूर्व की रोज़गार गारंटी योजनाओं के विपरीत मनरेगा के तहत ग्रामीण परिवारों के व्यस्क युवाओं को रोज़गार का कानूनी अधिकार प्रदान किया गया है।प्रावधान के मुताबिक, मनरेगा लाभार्थियों में एक-तिहाई महिलाओं का होना अनिवार्य है। साथ ही विकलांग एवं अकेली महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने का प्रावधान किया गया है।मनरेगा के तहत मज़दूरी का भुगतान न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 के तहत राज्य में खेतिहर मज़दूरों के लिये निर्दिष्ट मज़दूरी के अनुसार ही किया जाता है, जब तक कि केंद्र सरकार मज़दूरी दर को अधिसूचित नहीं करती और यह 60 रुपए प्रतिदिन से कम नहीं हो सकती।प्रावधान के अनुसार, आवेदन जमा करने के 15 दिनों के भीतर या जिस दिन से काम की मांग की जाती है, आवेदक को रोज़गार प्रदान किया जाएगा।पंचायती राज संस्थानों को मनरेगा के तहत किये जा रहे कार्यों के नियोजन, कार्यान्वयन और निगरानी हेतु उत्तरदायी बनाया गया है।मनरेगा में सभी कर्मचारियों के लिये बुनियादी सुविधाओं जैसे- पीने का पानी और प्राथमिक चिकित्सा आदि के प्रावधान भी किये गए हैं।मनरेगा के तहत आर्थिक बोझ केंद्र और राज्य सरकार द्वारा साझा किया जाता है। इस कार्यक्रम के तहत कुल तीन क्षेत्रों पर धन व्यय किया जाता है (1) अकुशल, अर्द्ध-कुशल और कुशल श्रमिकों की मज़दूरी (2) आवश्यक सामग्री (3) प्रशासनिक लागत। केंद्र सरकार अकुशल श्रम की लागत का 100 प्रतिशत, अर्द्ध-कुशल और कुशल श्रम की लागत का 75 प्रतिशत, सामग्री की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का 6 प्रतिशत वहन करती है, वहीं शेष लागत का वहन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।

मनरेगा की उपलब्धियाँमनरेगा दुनिया का सबसे बड़ा सामाजिक कल्याण कार्यक्रम है जिसने ग्रामीण श्रम में एक सकारात्मक बदलाव को प्रेरित किया है। आँकड़ों के अनुसार, कार्यक्रम के शुरुआती 10 वर्षों में कुल 3.14 लाख करोड़ रुपए खर्च किये गए।इस कार्यक्रम ने ग्रामीण गरीबी को कम करने के अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हुए यकीनन ग्रामीण क्षेत्र के लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकालने में कामयाबी हासिल की है।आजीविका और सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से मनरेगा ग्रामीण गरीब महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु एक सशक्त साधन के रूप में सामने आया है। आँकड़ों के अनुसार, वित्तीय वर्ष 2015-16 में मनरेगा के माध्यम से उत्पन्न

कुल रोज़गार में से 56 प्रतिशत महिलाओं के लिये था।आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2013-14 में मनरेगा के तहत कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 7.95 करोड़ थी जो कि वर्ष 2014-15 में घटकर 6.71 करोड़ रह गई किंतु उसके बाद यह बढ़कर क्रमशः वर्ष 2015-16 में 7.21 करोड़, वर्ष 2016-17 में 7.65 करोड़ तथा वर्ष 2018-19 में 7.76 करोड़ हो गई।मनरेगा में कार्यरत व्यक्तियों के आयु-वार आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि वित्त वर्ष 2017-18 के बाद 18-30 वर्ष के आयु वर्ग के श्रमिकों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है।मनरेगा ने आजीविका के अवसरों के सृजन के माध्यम से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उत्थान में भी मदद की है। मनरेगा को 2015 में विश्व बैंक ने दुनिया के सबसे बड़े लोकनिर्माण कार्यक्रम के रूप में मान्यता दी थी।नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (NCAER) की रिपोर्ट के मुताबिक, गरीब व सामाजिक रूप से कमज़ोर वर्गों, जैसे-मज़दूर, आदिवासी, दलित एवं छोटे सीमांत कृषकों के बीच गरीबी कम करने में मनरेगा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

मनरेगा से संबंधित चुनौतियाँ

अपर्याप्त बजट आवंटनपिछले कुछ वर्षों में मनरेगा के तहत आवंटित बजट काफी कम रहा है, जिसका प्रभाव मनरेगा में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन पर देखने को मिलता है। वेतन में कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रामीणों की शक्ति पर पड़ता है और वे अपनी मांग में कमी कर देते हैं।

मज़दूरी के भुगतान में देरीएक अध्ययन में पता चला कि मनरेगा के तहत किये जाने वाले 78 प्रतिशत भुगतान समय पर नहीं किये जाते और 45 प्रतिशत भुगतानों में विलंबित भुगतानों के लिये दिशा-निर्देशों के अनुसार मुआवज़ा शामिल नहीं था, जो अर्जित मज़दूरी का 0.05 प्रतिशत प्रतिदिन है। आँकड़ों के अनुसार, वित्त वर्ष 2017-18 में अदत्त मज़दूरी 11,000 करोड़ रुपए थी।

खराब मज़दूरी दरन्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 के आधार पर मनरेगा की मज़दूरी दर निर्धारित न करने के कारण मज़दूरी दर काफी स्थिर हो गई है। वर्तमान में अधिकांश राज्यों में मनरेगा के तहत मिलने वाली मज़दूरी न्यूनतम मज़दूरी से काफी कम है। यह स्थिति कमज़ोर वर्गों को वैकल्पिक रोज़गार तलाशने को विवश करता है।

भ्रष्टाचारवर्ष 2012 में कर्नाटक में मनरेगा को लेकर एक घोटाला सामने आया था जिसमें तकरीबन 10 लाख फर्ज़ी मनरेगा कार्ड बनाए गए थे, जिसके परिणामस्वरूप सरकार को तकरीबन 600 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ था। भ्रष्टाचार मनरेगा से संबंधित एक बड़ी चुनौती है जिससे निपटना आवश्यक है। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि इसके तहत आवंटित धन का अधिकतर हिस्सा मध्यस्थों के पास चला जाता है।

आगे की राहजॉब कार्ड में रोज़गार संबंधी सूचना दर्ज नहीं करने जैसे अपराधों को अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध घोषित किया जाना चाहिये।ध्यातव्य है कि पुरुष श्रमिकों की तुलना में महिला श्रमिकों की आय घर के जीवन स्तर को सुधारने में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसलिये मनरेगा में महिलाओं की भागीदारी को और अधिक बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।केंद्र सरकार को आवंटित धन के अल्प-उपयोग के कारणों का विश्लेषण करना चाहिये और इसमें सुधार के लिये आवश्यक कदम उठाने चाहिये।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY)

सरकार द्वारा स्वरोजगार को प्रोत्साहित करने के लिए इसे शुरू किया गया था। इस योजना के तहत छोटे/सूक्ष्म व्यवसाय उद्यमों और व्यक्तियों को 10 लाख रुपये तक के जमानत-मुक्त ऋण प्रदान किए जाते हैं, ताकि वे अपनी व्यावसायिक गतिविधियों को स्थापित या विस्तारित कर सकें।

प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना

इसे श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा 2016-17 में शुरू किया गया था। इसमें सरकार नए कर्मचारी के पंजीकरण की तिथि से अगले 3 वर्षों के लिए सभी पात्र नए कर्मचारियों को सभी क्षेत्रों के लिए EPS और EPF के लिए नियोक्ता का पूरा अंशदान (12% या स्वीकार्य) देती है।

कौशल भारत मिशन

इसे कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय द्वारा चार वर्षों के लिए देश भर में लघु अवधि प्रशिक्षण (STT), पूर्व शिक्षा की मान्यता (RPL) और विशेष परियोजना (SP) के तहत एक करोड़ लोगों को कौशल प्रदान करने के उद्देश्य से कार्यान्वित किया जाता है, जिसके लिए 12,000 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है।

इस योजना के तहत, देश में बीपीएल से संबंधित उम्मीदवारों सहित सभी संभावित उम्मीदवारों को एक छोटी अवधि का कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम दिया जा रहा है।

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना (पीएमजीकेवाई)

इसमें भारत सरकार कर्मचारी भविष्य निधि (ईपीएफ) के तहत नियोक्ता के हिस्से का 12% और कर्मचारी के हिस्से का 12% योगदान देती है, जो मार्च से अगस्त 2020 तक वेतन महीने के लिए वेतन का कुल 24% है, जिसमें 100 कर्मचारी हैं और ऐसे 90% कर्मचारी 15000/- रुपये से कम कमाते हैं।

पीएम स्वनिधि

यह योजना आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय द्वारा शुरू की गई थी। यह कोविड-19 लॉकडाउन के दौरान प्रभावित हुई अपनी आजीविका को फिर से शुरू करने के लिए स्ट्रीट वेंडर्स को किफायती कार्यशील पूंजी ऋण प्रदान करने पर केंद्रित है। वेंडर 10,000 रुपये तक का कार्यशील पूंजी ऋण ले सकते हैं, जिसे एक वर्ष की अवधि में मासिक किस्तों में चुकाया जा सकता है

राष्ट्रीय कैरियर सेवा

इसकी परिकल्पना राष्ट्रीय रोजगार सेवा को ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से विभिन्न रोजगार-संबंधी सेवाएँ जैसे कि नौकरी मिलान, कैरियर परामर्श, व्यावसायिक मार्गदर्शन, कौशल विकास पाठ्यक्रमों की जानकारी, प्रशिक्षुता, इंटर्नशिप आदि प्रदान करने के लिए की गई थी। राष्ट्रीय कैरियर सेवा (NCS) भारत के नागरिकों को रोजगार और कैरियर से संबंधित विभिन्न सेवाएँ प्रदान करने के लिए वन-स्टॉप समाधान पर केंद्रित है। यह कार्यक्रम श्रम और रोजगार मंत्रालय के रोजगार महानिदेशालय द्वारा कार्यान्वित किया जाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम)

ग्रामीण विकास मंत्रालय, सरकार द्वारा दीनदयाल अंत्योदय योजना-एनआरएलएम (राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन) नामक योजना शुरू की गई थी। भारत में जून 2011 में स्वर्ण जयंती ग्राम सरोजा योजना (एसजीएसवाई) का पुनर्गठित रूप शुरू किया गया। यह योजना पूरी तरह से स्वरोजगार को बढ़ावा देने और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के संगठन पर केंद्रित है। इस कार्यक्रम में, मुख्य विचार गरीबों को एक स्वयं सहायता समूह में संगठित करना है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण गरीबों के लिए कुशल और प्रभावी संस्थागत मंच बनाना है, जिससे वे अपनी आजीविका और अच्छे जीवन स्तर का निर्माण कर सकें। इसका उद्देश्य देश भर में 7 करोड़ निम्न परिवारों, 600 जिलों, 6000 ब्लॉकों, 2.5 लाख ग्राम पंचायतों और 6 लाख गांवों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से कवर करना और 8 से 10 वर्षों की अवधि में उन्हें आजीविका के लिए मदद करना है।

राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम), 2013

यह आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय द्वारा शुरू की गई एक योजना है। 1997 से केंद्र प्रायोजित स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (एसजेएसआरवाई) को 2013 से डीएवाई - राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन के रूप में पुनर्गठित किया गया है। यह 1 लाख या उससे अधिक की आबादी वाले सभी शहरों के लिए है। इसे गरीबी कम करने, स्वरोजगार और कुशल मजदूरी रोजगार प्राप्त करने और मजबूत जमीनी स्तर के संस्थानों का निर्माण करने के लिए लाया गया था। मिशन का उद्देश्य शहरी बेघरों को आवश्यक सेवाओं से सुसज्जित आश्रय प्रदान करना होगा।

3.9 सारांश

संक्षेप में कहें तो जैसा कि पिछली चर्चाओं से पता चलता है, बेरोजगारी की समस्या पर सीधे हमला करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। योजनाओं के निर्माण में बहुत अधिक गलतियां नहीं दिखती हैं। लेकिन इन योजनाओं के वास्तविक प्रदर्शन में, शोधकर्ताओं ने पाया है कि इनमें से अधिकांश कार्यक्रम, जो समाज के कमजोर वर्गों को लाभ पहुंचाने के लिए थे, अभिजात वर्ग द्वारा हड़पे गए। ऐसा इसलिए है क्योंकि इन कार्यक्रमों में पंचायती राज संस्थाओं पर अनुचित निर्भरता रखी जा रही है, जो गंभीर भ्रष्टाचार से ग्रस्त हैं। भारत जैसी अविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी की समस्या व्यापक है। यह ग्रामीण और शहरी दोनों

क्षेत्रों में पाई जाती है। धीमी आर्थिक विकास प्रक्रिया, श्रम शक्ति के आकार में वृद्धि, अनुपयुक्त तकनीक और जनशक्ति नियोजन की कमी मुख्य रूप से इस समस्या के लिए जिम्मेदार हैं। बेरोजगारी की सीमा का आकलन करने के लिए विभिन्न प्रकार के मापों का उपयोग किया जाता है। इस समस्या को विभिन्न कोणों से देखना दिलचस्प होगा, जैसे शिक्षा और बेरोजगारी, महिलाओं में बेरोजगारी की घटना और बेरोजगारी का क्षेत्रीय आयाम।

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "इंडियन इकॉनमी: परफॉर्मेंस एंड पॉलिसी" - उमा कपिला यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था की समकालीन नीतियों और प्रदर्शन का गहन विश्लेषण करती है, जो स्नातकोत्तर छात्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।
2. "इंडियन इकॉनमी: इशूज़, परफॉर्मेंस एंड ग्रोथ" - एम.बी. शर्मा यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख मुद्दों और विकास की चुनौतियों पर केंद्रित है, जो अनुसंधान के लिए सहायक है।

➢ बोध प्रश्न

1. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत में गरीबी और बेरोजगारी की स्थिति क्या है?अन्य विकासशील देशों और विकसित देशों से भारत की तुलना करें।
2. कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं?ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी दूर करने के लिए आवश्यक सुधारों पर चर्चा करें।
3. गरीबी और बेरोजगारी के बीच क्या संबंध है?बेरोजगारी कैसे गरीबी को बढ़ावा देती है?
4. गरीबी रेखा क्या होती है और इसे कैसे मापा जाता है?निर्धनता रेखा के मापदंडों पर चर्चा करें।
5. गरीबी और बेरोजगारी की स्थिति सुधारने में शिक्षा की भूमिका क्या है?शिक्षा और कौशल विकास का महत्त्व समझाएँ।

खंड 03 - गरीबी एवं बेरोजगारी

इकाई–4

रोजगार योजनाएँ, मनरेगा

इकाई की रुपरेखा–

4.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

4.2 रोजगार योजनाओं की भूमिका

4.3 पीएमएमवाई

4.4 पीएमकेवीवाई

4.5 डीडीयू–जीकेवाई

4.6 रोजगार योजनाओं के महत्व

4.7 मनरेगा

4.8 रोजगार योजनाओं द्वारा सृजित रोजगार

4.9 विभिन्न रोजगार योजनाओं द्वारा लाभान्वित परिवारों का कवरेज

4.10 निष्कर्ष

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रस्तावना

भारत, एक विशाल और विविधतापूर्ण देश, गरीबी व बेरोजगारी जैसी विकट समस्याओं का सामना कर रहा है। यह समस्याएँ आर्थिक विकास में रुकावट उत्पन्न करती हैं और सामाजिक असमानताओं को काफी गहरा करती हैं। भारतीय समाज के वंचित एवं हाशिए पर रहने वाले निम्न वर्गों के लिए रोजगार की स्थायी व स्थिर अवसरों की कमी एक गंभीर चिंता का विषय है। इसी संदर्भ में, रोजगार योजनाएँ, विशेषकर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मनरेगा, जो ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवारों को सौ दिनों का गारंटीकृत रोजगार प्रदान करता है, न केवल रोजगार सृजन का एक साधन है, बल्कि यह गरीबी उन्मूलन, सामाजिक सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास के लिए एक बहुआयामी उपकरण भी है। इसके अलावा, अन्य सरकारी योजनाएँ जैसे प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, और दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना भी इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य इन रोजगार योजनाओं के महत्व, उनके उद्देश्यों, और उनके प्रभावों पर व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करना है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि ये योजनाएँ न केवल आर्थिक रूप से बल्कि सामाजिक व संरचनात्मक दृष्टिकोण से भी देश के समग्र विकास में कैसे योगदान देती हैं। इन योजनाओं का सफल क्रियान्वयन और निरंतर सुधार भारत को गरीबी व बेरोजगारी जैसी विकट समस्याओं से मुक्त कर, एक समृद्ध एवं समान समाज की ओर अग्रसर कर सकता है।

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी–

- रोजगार योजनाओं की भूमिका को समझ सकेंगे।
- सरकार द्वारा चलायी जा रही विभिन्न रोजगार योजनायें जैसे पीएमएमवाई, मनरेगा आदि के विषय में समझ विकसित होगी।
- रोजगार योजनाओं से लाभान्वित परिवारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रोजगार योजनाओं के महत्व को जान सकेगें।
- रोजगार सृजन करने के क्षेत्रों के विषय में जान पायेगे।

- मनरेगा की विस्तृत समझ विकसित होगी।

रोजगार योजनाओं की भूमिका

भारत में रोजगार योजनाओं ने देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये योजनाएँ न केवल बेरोजगारी और गरीबी को कम करने में सहायक रही हैं, बल्कि उन्होंने ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया है। रोजगार योजनाओं ने भारत में सामाजिक और आर्थिक विकास को गति दी है। इन योजनाओं ने बेरोजगारी और गरीबी को कम किया है, आर्थिक समावेशन को बढ़ावा दिया है, इसके साथ ही महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भविष्य में भी इन योजनाओं का विस्तार व सुधार आवश्यक है, ताकि देश के हर नागरिक को रोजगार व आर्थिक सुरक्षा मिल सके, और भारत एक समृद्ध व आत्मनिर्भर राष्ट्र बन सके। रोजगार योजनाओं की भूमिका को विभिन्न पहलुओं में देखा जा सकता है:

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (पीएमएमवाई):

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (पीएमएमवाई) का उद्देश्य भारत में छोटे उद्यमों और स्वरोजगार को बढ़ावा देना है। यह योजना 8अप्रैल 2015को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू की गई थी। इसका मुख्य लक्ष्य उन छोटे व्यवसायों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है, जो पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था से बाहर हैं और जिनकी वित्तीय आवश्यकताएं छोटी होती हैं। इस योजना के अंतर्गत माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट एंड रिफाइनेंस एजेंसी (मुद्रा) की स्थापना की गई है, जो विभिन्न वित्तीय संस्थानों को पुनर्वित्तीयन की सुविधा प्रदान करती है।

पीएमएमवाई के मुख्य उद्देश्य:

- वित्तीय समावेशन के अन्तर्गत छोटे उद्यमों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली में शामिल करना और उन्हें सस्ती दरों पर ऋण उपलब्ध कराना।
- स्वरोजगार के अन्तर्गत स्वरोजगार और छोटे व्यवसायों को बढ़ावा देकर बेरोजगारी को कम करना।
- आर्थिक विकास के अन्तर्गत छोटे उद्यमों के माध्यम से ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देना।
- महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत महिला उद्यमियों को प्राथमिकता देकर उनके आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करना।

पीएमएमवाई के तहत ऋण की श्रेणियाँ:

मुद्रा योजना के तहत तीन प्रकार के ऋण प्रदान किए जाते हैं, जो विभिन्न उद्यमों की आवश्यकताओं के अनुसार वर्गीकृत हैं:

शिशु (Shishu):

ऋण राशि: रुपये 50,000 तक

उद्देश्य : छोटे स्तर के नए उद्यमों के लिए प्रारंभिक पूंजी प्रदान करना।

किशोर (Kishore):

ऋण राशि: रुपये 50,001 से रुपये 5 लाख तक

उद्देश्यरू पहले से स्थापित उद्यमों के विकास और विस्तार के लिए।

तरुण (Tarun):

ऋण राशि: रुपये 5,00,001 से रुपये 10 लाख तक

उद्देश्य: बड़े स्तर के व्यवसायों के विकास और विस्तार के लिए।

पीएमएमवाई के लाभ:

- सुगम पूर्वक बिना किसी संपार्श्विक या गारंटी के ऋण प्रदान किया जाता है।
- बैंक और वित्तीय संस्थान सस्ती दरों पर ऋण उपलब्ध कराना।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में छोटे उद्यमों को शामिल करके व्यापक आर्थिक विकास सुनिश्चित करना।

- युवाओं और महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान कर उद्यमिता को बढ़ावा देना।

पीएमएमवाई के अंतर्गत आने वाले व्यवसाय:

- छोटी विनिर्माण इकाइयाँ
- सेवा क्षेत्र के उद्यम
- दुकानदार, विक्रेता और ट्रैडर्स
- फल और सब्जी विक्रेता
- ट्रक और टैक्सी ऑपरेटर्स
- खाद्य–प्रसंस्करण इकाइयाँ
- मरम्मत की दुकानें
- छोटे उद्योग और कुटीर उद्योग

पीएमएमवाई की उपलब्धियाँ:

- बड़े पैमाने पर छोटे उद्यमों और व्यवसायों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली में शामिल किया गया है।
- स्वरोजगार और छोटे व्यवसायों के माध्यम से लाखों लोगों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए हैं।
- महिला उद्यमियों की संख्या में वृद्धि हुई है, जिससे महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में मदद मिली है।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (पीएमएमवाई) ने भारत में छोटे व मध्यम उद्यमों को प्रोत्साहित करने और वित्तीय समावेशन में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस योजना ने न केवल आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया है, बल्कि समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों को भी आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया है। आगे चलकर, इस योजना में सुधार एवं इसके प्रभावी कार्यान्वयन से देश की आर्थिक स्थिति को और मजबूत किया जा सकता है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई):

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) भारत सरकार की एक प्रमुख योजना है, जिसे 2015 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू किया गया था। इस योजना का उद्देश्य युवाओं को उद्योग–प्रासंगिक कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना और उन्हें रोजगार के योग्य बनाना है। पीएमकेवीवाई का संचालन राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (NSDC) द्वारा किया जाता है और इसका लक्ष्य देश में कौशल विकास की संस्कृति को बढ़ावा देना है।

पीएमकेवीवाई के उद्देश्य:

- कौशल प्रशिक्षण प्रदान करने के अन्तर्गत युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में उद्योग–प्रासंगिक कौशल प्रदान करना ताकि वे रोजगार के लिए तैयार हो सकें।
- रोजगार में वृद्धि के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त युवाओं को रोजगार के अवसर प्रदान करना और उनकी रोजगार योग्यताओं में सुधार करना।
- कौशल मानकों का निर्माण के अन्तर्गत उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार कौशल मानकों का विकास और उन्हें लागू करना।
- शिक्षा और प्रशिक्षण को प्रोत्साहन के अन्तर्गत युवाओं को औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण में भी प्रोत्साहित करना।

पीएमकेवीवाई के प्रमुख घटक:

शॉर्ट टर्म ट्रेनिंग (STT):

यह कार्यक्रम 150 से 300 घंटे की अवधि का होता है और इसमें स्कूल/कॉलेज छोड़ने वाले और बेरोजगार युवाओं को प्रशिक्षित किया जाता है। इसमें तकनीकी और गैर–तकनीकी दोनों तरह के प्रशिक्षण शामिल होते हैं।

विशेष परियोजनाएँ:

विशेष परियोजनाओं के माध्यम से विशिष्ट क्षेत्रों में कौशल विकास को प्रोत्साहित करना, जो सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बाहर होते हैं।
कौशल प्रमाणन और पुरस्कार:
कौशल प्रशिक्षण पूरा करने पर प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र और मौद्रिक पुरस्कार प्रदान करना।
कौशल और व्यवसाय मार्गदर्शन:
प्रशिक्षण के दौरान और बाद में मार्गदर्शन प्रदान करना, ताकि युवाओं को सही करियर पथ चुनने में सहायता मिल सके।
पीएमकेवीवाई के तहत प्रशिक्षण क्षेत्रों का कवरेज:

- कृषि
- निर्माण
- इलेक्ट्रॉनिक्स और हार्डवेयर
- ऑटोमोटिव
- बैंकिंग, वित्तीय सेवाएं और बीमा (ठथ्ै)
- पर्यटन और आतिथ्य
- स्वास्थ्य देखभाल
- सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और आईटी–सक्षम सेवाएं (आईटीईएस)
- वस्त्र और हथकरघा

पीएमकेवीवाई के लाभ:
रोजगार के अवसर:
प्रशिक्षित युवाओं को रोजगार के अधिक अवसर मिलते हैं और उनकी आय क्षमता बढ़ती है।
स्वरोजगार:
युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने और स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित करना।
उद्योग की मांग पूरी करना:
उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुसार कौशल प्रदान कर, कौशल अंतर को पाटना और उत्पादकता में वृद्धि करना।
राष्ट्रीय कौशल मानक:
राष्ट्रीय कौशल मानकों के अनुसार प्रशिक्षण प्रदान करना, जिससे गुणवत्ता सुनिश्चित हो सके।
पीएमकेवीवाई की उपलब्धियाँ :

- लाखों युवाओं को विभिन्न कौशल क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया गया है, जिससे उनकी रोजगार योग्यताओं में सुधार हुआ है।
- प्रशिक्षण प्राप्त युवाओं की रोजगार दर में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है।
- बड़ी संख्या में महिलाओं ने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लिया और रोजगार प्राप्त किया, जिससे उनके आर्थिक सशक्तिकरण में वृद्धि हुई है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) ने भारत में युवाओं के कौशल विकास एवं रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस योजना ने युवाओं को उद्योग–प्रासंगिक कौशल प्रदान कर, उन्हें आत्मनिर्भर एवं रोजगार योग्य बनाया है। आगे चलकर, इस योजना में निरंतर सुधार और विस्तार से देश की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को और बेहतर बनाया जा सकता है। पीएमकेवीवाई का सही और प्रभावी क्रियान्वयन देश की युवा शक्ति को सशक्त बनाकर, भारत को एक कौशलयुक्त राष्ट्र बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।
दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना (डीडीयू–जीकेवाई):
दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना (डीडीयू–जीकेवाई) भारत सरकार की एक प्रमुख योजना है जिसका उद्देश्य ग्रामीण युवाओं को कौशल विकास एवं रोजगार के अवसर प्रदान करना है। इस योजना का शुभारंभ 25 सितंबर 2014 को, पंडित दीनदयाल उपाध्याय की जयंती पर किया गया था। डीडीयू–जीकेवाई, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) का एक हिस्सा है और यह ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब युवाओं को बेहतर जीवन व स्थायी आजीविका प्रदान करने के लिए समर्पित है।

डीडीयू–जीकेवाई के उद्देश्य :

- ग्रामीण युवाओं को विभिन्न उद्योग–प्रासंगिक कौशल प्रदान करना ताकि वे रोजगार के लिए तैयार हो सकें।
- प्रशिक्षित युवाओं को रोजगार के अवसर प्रदान करना एवं उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारना।
- वंचित और कमजोर वर्गों, विशेषकर महिलाओं, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यकों और दिव्यांग व्यक्तियों को प्राथमिकता देकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण युवाओं को स्थायी और दीर्घकालिक रोजगार के अवसर प्रदान करना।

डीडीयू–जीकेवाई के प्रमुख घटक:

- गुणवत्तापूर्ण कौशल प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए देशभर में विभिन्न प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए गए हैं।
- उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार करना ताकि युवाओं को रोजगार के लिए तैयार किया जा सके।
- प्रशिक्षण प्राप्त युवाओं को रोजगार पाने में सहायता प्रदान करना और उन्हें रोजगार मेलों, कंपनियों के साथ संपर्क, व प्लेसमेंट सेवाओं के माध्यम से जोड़ना।
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए निरंतर मॉनिटरिंग और मूल्यांकन प्रणाली।

डीडीयू–जीकेवाई के तहत प्रशिक्षण क्षेत्रों का कवरेज:

- आईटी और आईटी–सक्षम सेवाएं
- स्वास्थ्य देखभाल
- विनिर्माण
- सेवा क्षेत्र
- निर्माण
- खुदरा व्यापार
- हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग

डीडीयू–जीकेवाई के लाभ:

- उच्च गुणवत्ता वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम जो उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार तैयार किए जाते हैं।
- रोजगार प्राप्त करने के बाद युवाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार और उनकी जीवन स्तर में वृद्धि।
- सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों और महिलाओं को प्राथमिकता देकर समावेशी विकास को प्रोत्साहित करना।
- कौशलयुक्त कार्यबल के माध्यम से स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।

डीडीयू–जीकेवाई की उपलब्धियाँ :

- लाखों ग्रामीण युवाओं को विभिन्न कौशल क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान किया गया है, जिससे उनकी रोजगार योग्यताओं में सुधार हुआ है।
- प्रशिक्षण प्राप्त युवाओं की रोजगार दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।
- महिलाओं की बड़ी संख्या ने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लिया और रोजगार प्राप्त किया, जिससे उनके आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण में वृद्धि हुई है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कौशलयुक्त कार्यबल की उपलब्धता से स्थानीय उद्योगों और व्यवसायों को प्रोत्साहन मिला है।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना (डीडीयू–जीकेवाई) ने ग्रामीण युवाओं के कौशल विकास एवं रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस योजना ने न केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को आर्थिक स्वतंत्रता एवं स्थायी आजीविका प्रदान की है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास को भी प्रोत्साहित किया है। इस योजना में निरंतर सुधार और विस्तार से देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को और मजबूत किया जा सकता है। डीडीयू–जीकेवाई का सफल क्रियान्वयन ग्रामीण युवाओं के उज्ज्वल भविष्य एवं देश के सतत विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

रोजगार योजनाएं के महत्व

भारत में रोजगार योजनाओं ने देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये योजनाएँ न केवल बेरोजगारी और गरीबी को कम करने में सहायक रही हैं, बल्कि उन्होंने ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया है। रोजगार योजनाओं की भूमिका को विभिन्न पहलुओं में देखा जा सकता हैरू

- महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके तहत ग्रामीण परिवारों को 100 दिनों का रोजगार प्रदान किया जाता है, जिससे उन्हें आर्थिक सुरक्षा मिलती है।
- प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) और दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना (डीडीयू–जीकेवाई) ने युवाओं को कौशल प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें रोजगार के योग्य बनाया है।
- प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (पीएमएमवाई) ने छोटे उद्यमों और स्टार्टअप्स को वित्तीय सहायता प्रदान कर उन्हें विकसित होने में मदद की है, जिससे स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विकास हुआ है।
- मनरेगा योजना ने ग्रामीण बुनियादी ढांचे का विकास कर आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया है।
- मनरेगा योजना के माध्यम से गरीब परिवारों को नियमित आय प्राप्त होती है, जिससे उनकी गरीबी में कमी आती है।
- पीएमकेवीवाई और डीडीयू–जीकेवाई के तहत प्रशिक्षित युवाओं को रोजगार प्राप्त होता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।
- महिलाओं को रोजगार में प्राथमिकता दी जाती है, जिससे उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार होता है।
- पीएमकेवीवाई और डीडीयू–जीकेवाई के अन्तर्गत महिला उद्यमियों और कामकाजी महिलाओं को विशेष प्रशिक्षण और सहायता प्रदान कर उन्हें सशक्त बनाया जाता है।
- डीडीयू–जीकेवाई योजना ने ग्रामीण युवाओं को दीर्घकालिक और स्थायी रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं, जिससे उनकी आजीविका सुरक्षित होती है।
- मनरेगा ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास के माध्यम से स्थायी आजीविका के साधन प्रदान किए जाते हैं।
- पीएमकेवीवाई योजना ने युवाओं को उद्योग–प्रासंगिक कौशल प्रशिक्षण प्रदान कर उनकी रोजगार योग्यताओं में सुधार किया है।
- मुद्रा योजना छोटे और मध्यम उद्यमों को वित्तीय सहायता प्रदान कर स्थानीय उद्योगों और व्यवसायों को प्रोत्साहन मिला है।
- मनरेगा ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों, जल संरक्षण संरचनाओं और अन्य बुनियादी ढांचों का निर्माण कर स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला है।

रोजगार योजनाओं ने भारत में सामाजिक व आर्थिक विकास को गति दी है। इन योजनाओं ने बेरोजगारी और गरीबी को कम किया है, आर्थिक समावेशन को बढ़ावा दिया है, और महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भविष्य में भी इन योजनाओं का विस्तार और सुधार आवश्यक है, जिससे देश

के हर नागरिक को रोजगार एवं आर्थिक सुरक्षा मिल सके, और भारत एक समृद्ध व आत्मनिर्भर राष्ट्र बन सके।

मनरेगा की भूमिका:

भारत गांवों का देश है और इसकी लगभग 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। इन क्षेत्रों में गरीबी, अशिक्षा, निम्न आय स्तर, बेरोजगारी, खराब पोषण एवं स्वास्थ्य मानकों जैसी विभिन्न सामाजिक व आर्थिक समस्याएं व्याप्त हैं। इन समस्याओं के समाधान व ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए, भारत सरकार ने कई ग्रामीण विकास कार्यक्रम लागू किए हैं। इनमें से महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) को सबसे प्रभावी दृष्टिकोण माना गया है। इस अधिनियम का उद्देश्य प्रत्येक ग्रामीण परिवार को कम से कम सौ दिनों का मजदूरी रोजगार प्रदान करना है, जिसमें वे अकुशल शारीरिक कार्य करने के लिए कानूनी गारंटी के तहत स्वेच्छा से काम कर सकते हैं। सरकार ने पहले मनरेगा के तहत 40,000 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि आवंटित की थी ताकि घर लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों को रोजगार प्रदान किया जा सके। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने घोषणा की थी कि मनरेगा के लिए पहले से आवंटित 61,000 करोड़ रुपये के बजट में 40,000 करोड़ रुपये की वृद्धि की गई है। यह योजना मुख्य रूप से ग्राम पंचायतों द्वारा लागू की जाती है और इसमें किसी भी ठेकेदार का समावेश नहीं होता है। मनरेगा का लक्ष्य ग्रामीण गरीब लोगों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ावा देना है। यह अधिनियम सड़क निर्माण, भूमि विकास, जल संरक्षण और सिंचाई जैसी टिकाऊ परिसंपत्तियों के निर्माण पर केंद्रित है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं और ग्रामीण गरीब लोगों के आजीविका संसाधन आधार को मजबूत करते हैं। हाल के वर्षों में, राज्यों की ओर से नए कार्यों को शामिल करने की मांग बढ़ी है, जिससे मनरेगा, कृषि व संबंधित ग्रामीण आजीविका के बीच काफी मजबूती से आपसी सहयोग देखा जा सकता है। ग्रामीण आजीविका आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का मिश्रण है, जिसके माध्यम से ग्रामीण परिवार अपनी जीविका चलाते हैं। कृषि अभी भी एक महत्वपूर्ण गतिविधि है और इसे जीवनयापन का मुख्य साधन माना जाता है। इसके साथ ही, मनरेगा ने ग्रामीण गरीबों एवं विशेष रूप से कमजोर वर्गों के लिए आजीविका सुरक्षित करने में एक नई उम्मीद की किरण लायी है।

गरीबी और बेरोजगारी जैसे जटिल व बहुआयामी समस्याओं का समाधान केवल आर्थिक प्रोत्साहन एवं रोजगार के अवसरों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि सामाजिक व संरचनात्मक परिवर्तन के माध्यम से भी करना आवश्यक है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) और अन्य रोजगार योजनाओं के माध्यम से भारत सरकार इन समस्याओं को प्रभावी ढंग से कम करने के लिए प्रयासरत है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के उद्देश्य स्पष्ट रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षा और विकास को बढ़ावा देने पर केंद्रित हैं। इसके प्रमुख उद्देश्यों को निम्नलिखित बिंदुओं में संक्षेपित किया जा सकता है:

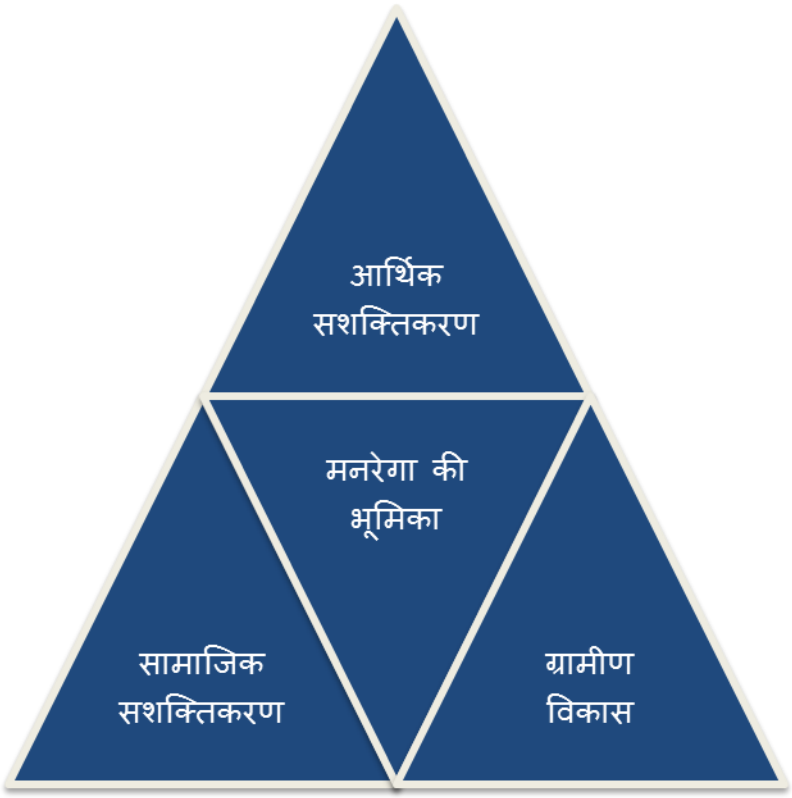

- ग्रामीण परिवारों को प्रति वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिनों का गारंटीकृत रोजगार प्रदान करना, जिससे वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।
- ग्रामीण गरीबों की आय बढ़ाकर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार करना, जिससे गरीबी में कमी लाई जा सके।
- प्रत्येक ग्रामीण परिवार के वयस्क सदस्यों को अकुशल शारीरिक कार्य के लिए रोजगार की कानूनी गारंटी देना, जिससे उन्हें काम करने का अधिकार मिले।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सके।
- सड़क निर्माण, भूमि विकास, जल संरक्षण, और सिंचाई सुविधाओं का निर्माण करना, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे का विकास के साथ कृषि उत्पादकता में वृध्दि हो।
- योजना का कार्यान्वयन ग्राम पंचायतों के माध्यम से करना, जिससे स्थानीय स्तर पर सामुदायिक भागीदारी और पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके।
- रोजगार के अवसरों में महिलाओं को प्राथमिकता देकर उनके आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देना।
- जल संरक्षण, वनीकरण, और भूमि सुधार कार्यों के माध्यम से पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करना और स्थानीय बाजारों में क्रय शक्ति बढ़ाना।
- पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करके जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करना

मनरेगा का उद्देश्य केवल रोजगार सृजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण विकास, सामाजिक सशक्तिकरण, और पर्यावरण संरक्षण के व्यापक लक्ष्यों को भी साधता है। इन उद्देश्यों के माध्यम से मनरेगा ग्रामीण समुदायों की समग्र प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

लाभान्वित परिवारों का कवरेज

मनरेगा एक मांग–संचालित कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य ग्रामीण परिवारों के लिए आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। यह योग्य परिवारों को रोजगार प्रदान करता है जो इसकी मांग करते हैं, और इसका कवरेज आपूर्ति–पक्ष और मांग–पक्ष दोनों कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है। मनरेगा रोजगार के लिए श्रमिकों

की मांग स्थानीय कृषि एवं गैर–कृषि रोजगार के अवसरों की उपलब्धता पर निर्भर करती है, जिससे यह अन्य ग्रामीण रोजगार–संबंधी परिदृश्यों का एक अनिवार्य हिस्सा बन जाता है। कृषि व इसके संबद्ध क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के महत्वपूर्ण स्रोत बने हुए हैं, और ग्रामीण परिवार अक्सर कम कृषि मौसम के दौरान मनरेगा रोजगार की तलाश करते हैं। 2006–2007 और 2020–21 के बीच परिवारों का कवरेज 2.11 करोड़ से बढ़कर 7.56 करोड़ हो गया है, जिसमें कुल ग्रामीण परिवारों का औसतन लगभग %27 हिस्सा मनरेगा कार्यों में भाग ले रहा है। पिछले 15 वर्षों में, कवरेज ने तीन प्रमुख रुझान दिखाए हैंरू 2006–2007 और 2010–11 के बीच वृद्धि, 2011–12 और 2014–15 के बीच गिरावट, और 2015–16 के बाद वृद्धि। कोविड–19 महामारी ने परिवारों के कवरेज में वृद्धि को और बढ़ा दिया है, लॉकडाउन के दौरान वापसी प्रवास और आर्थिक बाधाओं के कारण परिवारों की MGNREGS पर निर्भरता बढ़ रही है। निष्कर्ष रूप में, MGNREGS ग्रामीण परिवारों के लिए आजीविका सुरक्षा बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इसकी सफलता स्थानीय कृषि व गैर–कृषि रोजगार अवसरों की उपलब्धता और कवरेज पर महामारी के प्रभाव पर निर्भर करती है।

तालिका 1एमजीएनआरईजीएस के तहत परिवारों का कवरेज (2006–21)

	Households Worked Under MGNREGS		
Year	*Number of Households (in Crores)*	*Annual Growth (%)*	*Percentage of Rural Households $*
2006–7	2.11	–	12.5
2007–8	3.39	60.4	20.1
2008–9	4.51	33.1	26.8
2009–10	5.25	16.4	31.2
2010–11	5.50	4.6	32.6
2011–12	4.99	–9.2	29.6
2012–13	4.86	–2.7	28.8
2013–14	4.80	–1.2	28.5
2014–15	4.13	–14.0	24.5
2015–16	4.81	16.6	28.5
2016–17	5.12	6.4	30.4
2017–18	5.12	0.0	30.3
2018–19	5.27	2.9	31.2
2019–20	5.48	4.1	32.5
2020-21	7.56	37.8	44.8

Source: DMU (2006–14) and MIS (2014–21) reports of MGNREGS, Government of India. Note: $ indicates the percentage of rural households covered under MGNREGS against total Census 2011 rural households.

महामारी के दौरान, मनरेगा ने लगभग 7.56 करोड़ ग्रामीण परिवारों को रोजगार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो सभी ग्रामीण परिवारों का 44.%8 है। भारत के दक्षिणी और उत्तरी राज्यों में परिवारों की निर्भरता के बीच स्पष्ट अंतर के साथ कवरेज में सालाना 37.%8 की वृद्धि हुई। दक्षिणी राज्यों में रोजगार के महत्वपूर्ण अवसर मौजूद हैं।

चित्र 2राज्यों में एमजीएनआरईजीएस के तहत ग्रामीण परिवारों का कवरेज (2006–21) (प्रतिशत में)

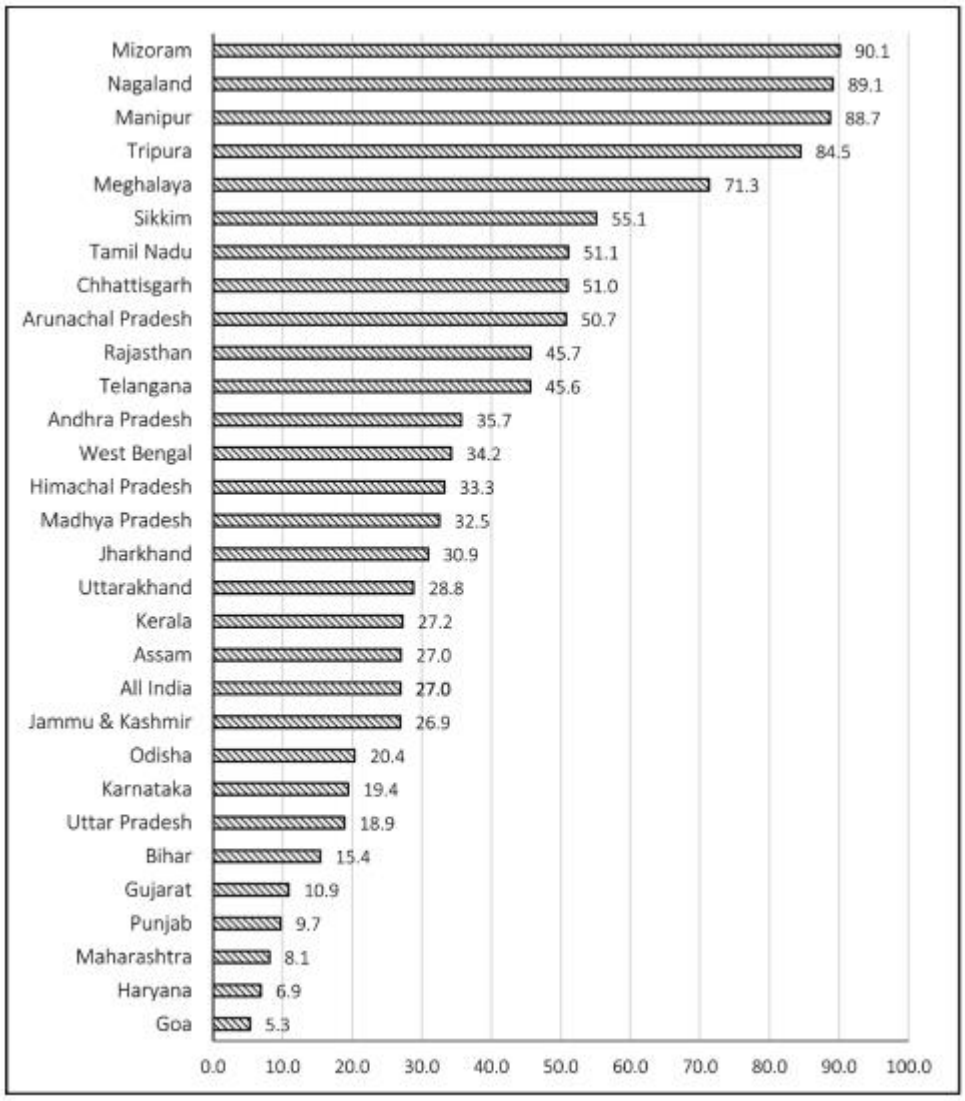

Source: The author.

आर्थिक विकास के कारण ग्रामीण कृषि संबंधों में बदलाव आया है जिसमें कुछ मजदूर छोटे उत्पादक बन गए है जिसकी वजह से बाहर पलायन कर रहे है। इसमें दक्षिणी राज्यों में परिवारों की मनरेगा रोजगार पर निर्भरता कम हो गई है लेकिन उत्तरी राज्यों में अधिक परिवार मनरेगा रोजगार पर निर्भर है। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे आर्थिक रुप से पिछड़े राज्यों में ग्रामीण शहरी प्रवास संकट व सामाजिक रीति रिवाजों से प्रभावित है। असम को छोड़कर पूर्वोत्तर में मनरेगा कवरेज विशेष रुप से बेहतर है। तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, राजस्थान, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में कवरेज 32.5प्रतिशत से 51.1प्रतिशत तक है। हालांकि शेष राज्यों में कवरेज 20प्रतिशत से कम है। कोविड 19महामारी ने मनरेगा के तहत राज्यों में परिवारों के कवरेज को प्रभावित किया है।2020 – 21में सक्रिय जाब कार्ड में लगभग 12प्रतिशत की वृध्दि हुई है।

ग्राफ कोविड– 19महामारी के दौरान मनरेगा कवरेज और रोजगार में वृध्दि (प्रतिशत में)

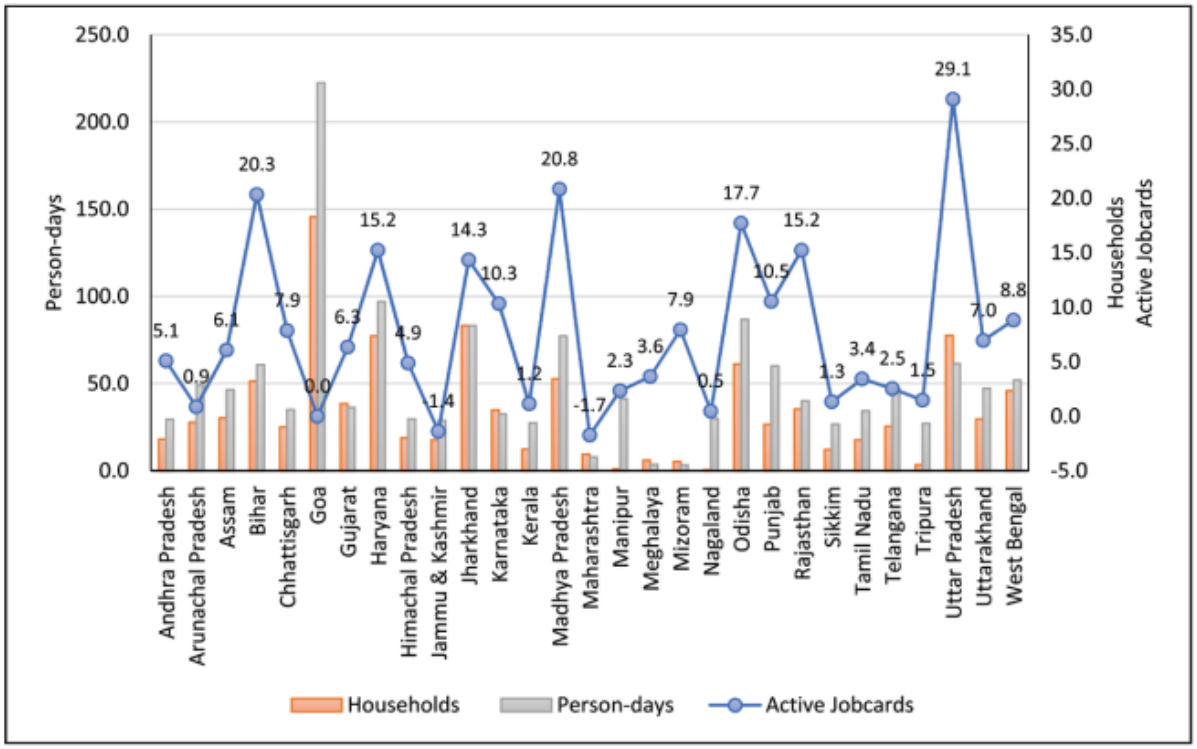

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और ओडिशा में सक्रिय जॉब कार्ड सबसे ज़्यादा हैं, क्योंकि कोविड–19 महामारी के दौरान ग्रामीण–शहरी प्रवास और बड़े पैमाने पर घर वापसी हुई है। इसके विपरीत, महाराष्ट्र और जम्मू–कश्मीर में नकारात्मक वृद्धि देखी गई है, जो संभवतः महामारी की गंभीरता और लंबे समय तक लॉकडाउन के कारण है। जम्मू–कश्मीर में मौजूदा सामाजिक–राजनीतिक कारक और प्रशासनिक कारण भी सक्रिय जॉब कार्ड में गिरावट में योगदान दे सकते हैं।

रोजगार सृजन

ग्रामीण रोजगार योजना, एमजीएनआरईजीएस का लक्ष्य ग्रामीण इलाकों में भाग लेने वाले प्रत्येक परिवार को कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराना है। हालांकि, आधिकारिक आंकड़े बताते हैं कि यह योजना प्रस्तावित लक्ष्य का आधा ही प्रदान कर सकती है। औसत घरेलू रोजगार 2009–10 में अपने अधिकतम 54 दिनों तक पहुंच गया था, लेकिन COVID–19 महामारी के दौरान भी यह फिर कभी इस स्तर पर नहीं पहुंचा। इसके कार्यान्वयन के पिछले 15 वर्षों में रोजगार सृजन का कोई स्पष्ट रुझान नहीं दिखता है। 2014–15 तक, एमजीएनआरईजीएस रोजगार प्रति परिवार 38 दिनों तक गिर गया, लेकिन फिर 2020–21 में लगातार बढ़कर प्रति परिवार 52 दिन हो गया। पिछले 15 वर्षों के दौरान 100 दिनों तक रोजगार पाने वाले परिवारों का अनुपात कभी भी %15 से अधिक नहीं रहा है। यह दर्शाता है कि एमजीएनआरईजीएस अधिकांश ग्रामीण परिवारों के लिए रोजगार का एक पूरक स्रोत है ग्रामीण गरीबों को आजीविका सुरक्षा प्रदान करने में मनरेगा की भूमिका कोविड–19 प्रकोप के दौरान स्पष्ट हुई, क्योंकि यह कई ग्रामीण गरीब परिवारों के लिए एकमात्र आजीविका विकल्प था और इसने कई वापस लौटे प्रवासियों को रोजगार प्रदान किया।

ग्राफ एमजीएनआरईजीएस रोजगार सृजन (2006–21)

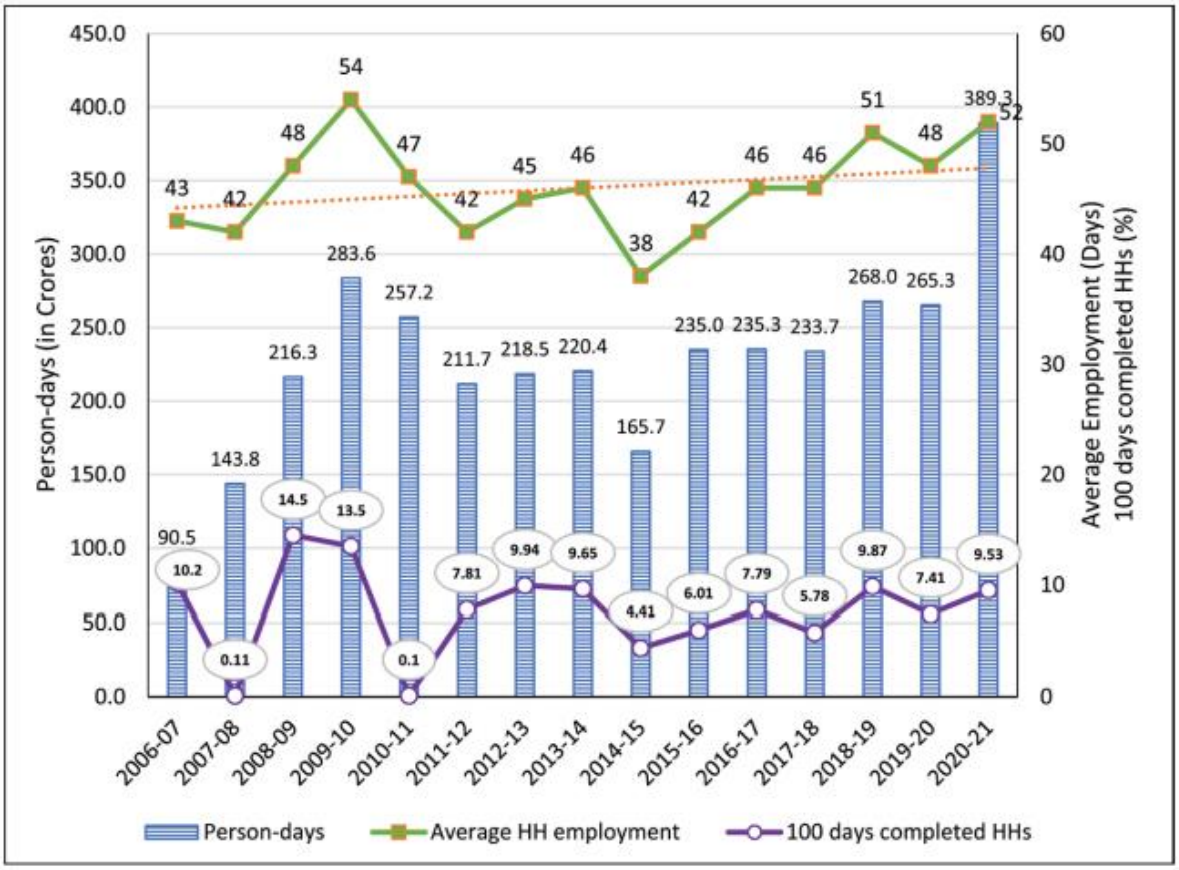

महामारी के दौरान, मनरेगा ने परित्यक्त शहरी क्षेत्रों और निष्क्रिय श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे उनकी आजीविका सुरक्षा में वृद्धि हुई। लॉकडाउन और अनलॉक के दौरान सृजित व्यक्ति–दिवसों की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि देखी गई, 2020–21 में सबसे अधिक व्यक्ति–दिवसों की संख्या लगभग 389.3 करोड़ थी। प्रति परिवार औसतन 51 दिन का रोजगार दिए जाने के बावजूद, इस योजना ने पहली बार लगभग आधे ग्रामीण परिवारों को रोजगार दिया। हालांकि, प्रति परिवार दिए जाने वाले रोजगार का पंचवर्षीय औसत 48 दिन प्रति वर्ष था, जो लक्षित रोजगार के आधे से भी कम था। अपर्याप्त वित्तीय सहायता को मनरेगा के तहत प्रत्येक ग्रामीण परिवार को कम से कम 100 दिन का रोजगार प्रदान करने में एक बड़ी बाधा के रूप में पहचाना गया है।

ग्राफ एमजीएनआरईजीएस के तहत राज्यवार रोजगार सृजन (2006–21)

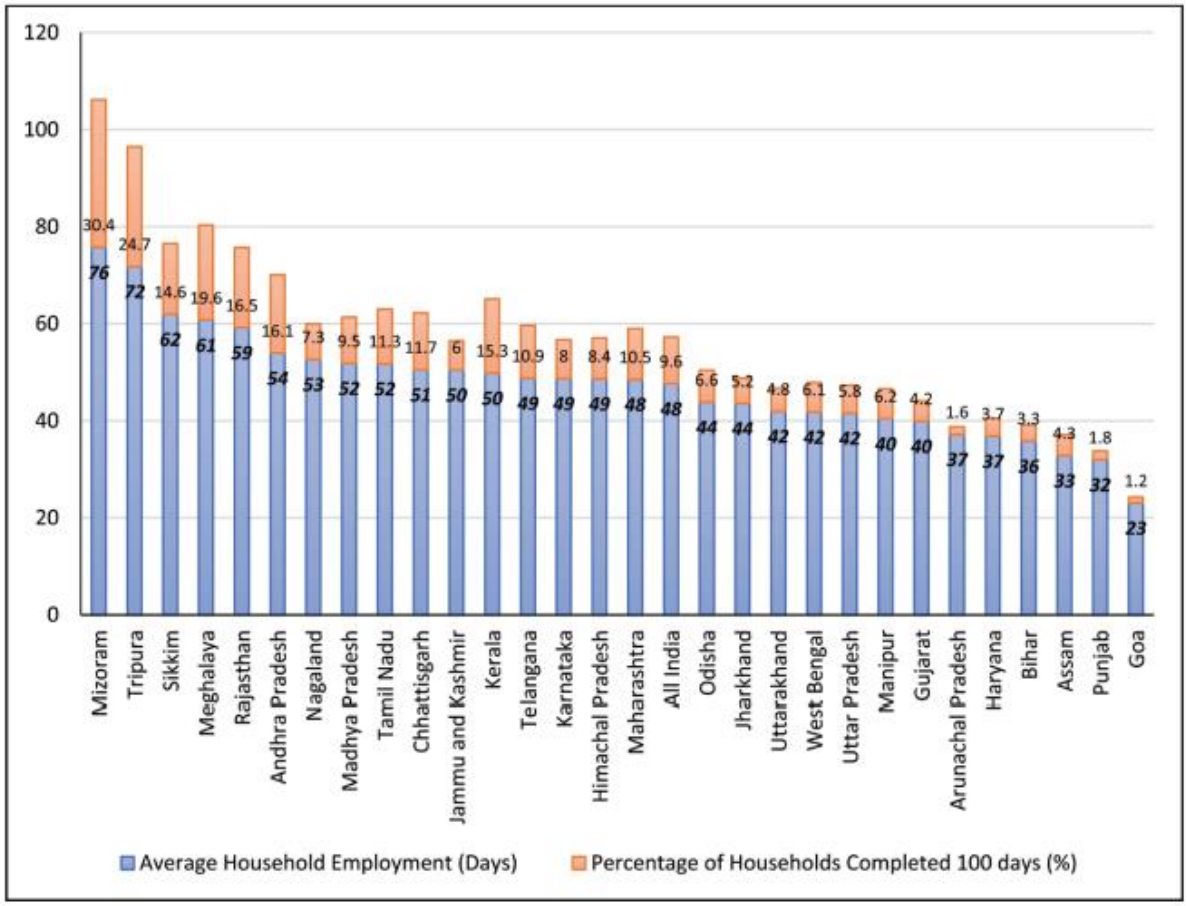

पिछले 15वर्षों में MGNREGS (पुरुष और बाल श्रम गारंटी) कार्यक्रम ने राज्यों में रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ दिखाई हैं। मिजोरम और त्रिपुरा में प्रति परिवार रोजगार के दिनों की संख्या सबसे अधिक है, जबकि हिमाचल प्रदेश औसत दर्जे का राज्य है। उत्तर–पूर्वी राज्यों मिजोरम, त्रिपुरा, सिक्किम, मेघालय और नागालैंड में रोजगार सृजन अधिक है, इसके बाद राजस्थान, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, जम्मू और कश्मीर, केरल, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना और महाराष्ट्र जैसे बड़े राज्य हैं। ओडिशा, झारखंड, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में रोजगार सृजन राष्ट्रीय औसत के करीब है। हालांकि, गोवा, पंजाब, असम, बिहार, हरियाणा, अरुणाचल प्रदेश, गुजरात और मणिपुर जैसे राज्य कम रोजगार प्रदान करते हैं। कृषि और गैर–कृषि क्षेत्रों में अधिक रोजगार के अवसरों के कारण गोवा और पंजाब में सबसे कम रोजगार सृजन होता है। अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, उत्तर प्रदेश और ओडिशा जैसे गरीब राज्यों में कमजोर प्रशासनिक संरचनाओं और कम सशक्त गरीब लोगों के कारण कार्यान्वयन कम है। 2006– 21तक 100दिन का रोजगार पाने वाले परिवारों की औसत संख्या केवल 9. %6है, तथा उच्च रोजगार वाले राज्यों में यह प्रतिशत अधिक है।

निष्कर्ष

गरीबी और बेरोजगारी जैसी गम्भीर समस्याओं के लिए मनरेगा व अन्य रोजगार योजनाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये योजनाएँ न केवल आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण में सहायक हैं, बल्कि ग्रामीण विकास और संरचनात्मक सुधार में भी योगदान देती हैं। सरकारी नीतियों एवं योजनाओं के सही प्रारुप में पारदर्शी क्रियान्वयन से ही इन लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इन योजनाओं में निरंतर सुधार और नवाचार आवश्यक हैं ताकि वे बदलती परिस्थितियों व चुनौतियों के अनुरूप बने रहें। इस प्रकार, रोजगार योजनाएँ गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी में कमी लाने के साथ–साथ, समाज में समग्र प्रगति और विकास के पथ पर अग्रसर होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रोजगार क्या है?
2. रोजगार के लाभ व महत्व को बतायें।

3. सरकार द्वारा चलायी जा रही विभिन्न रोजगार योजनाायें क्या हैं?
4. रोजगार योजनाओं से जनसंख्या का कितना प्रतिशत लाभान्वित है?
5. मनरेगा को विस्तार से समझाइये?
6. विभिन्न रोजगार योजनाओं के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा करें?

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- वर्णवाल, महेश कुमार (2018), भारतीय अर्थव्यवस्था, नई दिल्ली कासमॉस पब्लिकेशन
- दन्त सुन्दरय, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र एवं क्र. न्यू दिल्ली 2009
- https://www.myscheme.gov.in/schemes/pmmy
- आईबी, सिरप्पा और महानिदेशक, डॉ. पुनीत कुमार, प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के कार्यान्वयन में ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका (9 जून, 2019) SSRN पर उपलब्ध: https://ssrn.com/abstract=3863107 **या** http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.3863107
- Dr. B.C. M. Patnaik, Dr. Ipseeta Satpathy and Snigdha Suhagi, Role of ITeS in Pradhanmantri Kaushal Vikash Yojana (PMKVY): A Conceptual Study, International Journal of Mechanical Engineering and Technology 9(8), 2018, pp. 907–914.
- भट बशारत और मरियप्पन पी अक्टूबर (2014), "अकुशल मजदूरों पर मनरेगा का प्रभाव", थर्ड कॉन्सेप्ट , खंड (28)।
- कुमार शशि बी और रेंगासामी के (2012), "भारत में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम में ग्रामीण श्रमिकों की भागीदारी"। इंटरनेशनल मल्टी डिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 2(2)।
- कुमार शशि बी और रेंगासामी के (2012), "भारत में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम में ग्रामीण श्रमिकों की भागीदारी"। इंटरनेशनल मल्टी डिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 2(2)।
- पांडा एस और मजूमदार ए (2013), "भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की समीक्षा"। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशियोलॉजी एंड सोशल एंथ्रोपोलॉजी, 1(2)।
- राव मल्लिकार्जुन के नवंबर (2013), "महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एमजीएनआरईजीए) का प्रदर्शन"। स्कॉलर्स वर्ल्ड–आईआरएमजेसीआर , खंड (I)।
- राव मल्लिकार्जुन के नवंबर (2013), "महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एमजीएनआरईजीए) का प्रदर्शन"। स्कॉलर्स वर्ल्ड–आईआरएमजेसीआर , खंड (I)

इकाई - 05, बाजार व्यवस्था एवं आर्थिक विषमताएँ

इकाई की रूपरेखा

4.0उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2बाजार व्यवस्था एवं आर्थिक विषमताएँ

4.3भारत में सामाजिक-आर्थिक विषमता:

4.4विश्व असमानता रिपोर्ट के भारत संबंधित विशिष्ट निष्कर्ष

4.5आगे की राह

4.6 सारांश

4.7कुछ उपयोगी पुस्तके

4.0उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्न कार्य करने में सक्षम होंगे:

- गरीबी और असमानता की अवधारणाओं का वर्णन करना;
- गरीबी और असमानता के बीच अंतर करना;
- आर्थिक विकास के साथ लैंगिक समानता और गरीबी का अध्ययन करने की आवश्यकता की पहचान करना;
- यह स्पष्ट करना कि क्या आर्थिक विकास गरीबी और लैंगिक असमानता को कम करता है;
- असमानता और गरीबी के बीच संबंधों का वर्णन करना

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य ने हमेशा अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने का प्रयास किया है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति, विशेष रूप से पिछली दो शताब्दियों के दौरान, मानव जीवन को सबसे असामान्य तरीके से प्रभावित किया है। इसने समाजों को उत्तरी अमेरिका और यूरोप के देशों में विशेष रूप से शानदार आर्थिक प्रगति हासिल करने में मदद की है। हाल ही में, एशिया और अफ्रीका की अर्थव्यवस्थाओं ने भी आर्थिक वृद्धि और विकास का अनुभव किया है, जिससे उनके लोगों को कई तरह से लाभ हुआ है। हालाँकि, आर्थिक प्रगति पूरी तरह से न्यायसंगत नहीं रही है। समाज के कुछ वर्ग, मुख्य रूप से सामाजिक पदानुक्रम के कारण, दूसरों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करने में सक्षम रहे हैं, जिससे अंततः आर्थिक असमानताएँ पैदा हुई हैं। अच्छी शिक्षा, उचित प्रशिक्षण और प्रासंगिक कौशल से अपेक्षाकृत कम सुसज्जित लोग मात्रात्मक और/या गुणात्मक रूप से योगदान नहीं दे पाए हैं, और इसलिए, आर्थिक रूप से गरीब बने हुए हैं। समाज के कुछ वर्गों का वर्चस्वशाली और विशेषाधिकार प्राप्त लोगों द्वारा ऐतिहासिक शोषण ने अमीर और गरीब के बीच की खाई को

चौड़ा कर दिया है और वंचितों को पूर्ण गरीबी में धकेल दिया है। एम. के. गांधी ने एक बार कहा था, "गरीबी हिंसा का सबसे बुरा रूप है।"

4.2बाजार व्यवस्था एवं आर्थिक विषमताएँ

निस्संदेह भारत एक अत्यधिक विषमतापूर्ण अर्थव्यवस्था है। भारत का घरेलू सर्वेक्षण उपभोग, आय और धन को व्यापक रूप से कम करके दिखाने की प्रवृत्ति रखते हैं।इसके साथ ही इस अनुमान पर संदेह कर सकना कठिन है कि कोविड-19 ने विद्यमान दोषों को और गहरा कर दिया है, जिससे गहन रूप से व्याप्त असमानताओं में और वृद्धि हो रही है।इस अवधि के दौरान अत्यंत अमीर लोगों की संपत्ति में हुई वृद्धि की तुलना पैदल ही अपने गाँव लौटने को विवश उन लाखों प्रवासी श्रमिकों की विपदा के साथ करें तो देश में आर्थिक विषमताओं की चरम स्थिति स्पष्ट नज़र आ जाती है।इस संदर्भ में, **विश्व असमानता रिपोर्ट (2022)** का नवीनतम संस्करण एक उपयोगी अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है और यह दर्शाता है कि आय की एकाग्रता पिरामिड के शीर्ष पर हो रही है।

4.3भारत में सामाजिक-आर्थिक विषमता:

असमानता के क्षेत्र: सामान्यतः समग्र रूप से भारत में असमानता की चर्चा उपभोग, आय और धन के मामले में असमानताओं के इर्द-गिर्द केंद्रित होने की प्रवृत्ति रखती है।किंतु देश में 'अवसरों' के मामलों में भी उच्च स्तर की असमानता विद्यमान है।

अवसरों में असमानता को प्रभावित करने वाले कारक: किसी व्यक्ति की उत्पत्ति का वर्ग, उसके जन्म का घर, उसके माता-पिता कौन हैं- ये सभी विषय उसकी शैक्षिक उपलब्धि, रोज़गार और आय की संभावनाओं पर उल्लेखनीय प्रभाव डालते हैं और इसके परिणामस्वरूप उसके गंतव्य/उपलब्धि का वर्ग तय करते हैं।पीढ़ी-दर-पीढ़ी सामाजिक गतिशीलता के निम्न स्तर पर स्थित कमज़ोर/वंचित परिवारों में पैदा होने वाले बच्चों के लिये आय की सीढ़ी पर आगे बढ़ने की संभावना कम होती है।

4.4विश्व असमानता रिपोर्ट के भारत संबंधित विशिष्ट निष्कर्ष:

रिपोर्ट के अनुसार, भारत अब दुनिया के सर्वाधिक विषमतापूर्ण देशों में से एक है।भारत में शीर्ष 10% आबादी राष्ट्रीय आय का 57% अर्जित करती है।शीर्ष 10% के अंदर शीर्षस्थ 1% अभिजात वर्ग 22% आय अर्जित करता है।इसकी तुलना में राष्ट्रीय आय में निचले स्तर के 50% की हिस्सेदारी घटकर मात्र 13% रह गई है।भारत में महिला श्रमिकों की आय में हिस्सेदारी 18% है जो एशिया में उनके औसत से पर्याप्त कम है [21% चीन को छोड़कर]।

कोविड-19 महामारी का प्रभाव: कोविड ने शिक्षा में व्याप्त असमानता की स्थिति को और बदतर किया है एवं श्रम बाज़ार पर नकारात्मक दीर्घकालिक प्रभाव डाला है और आय असमानता में वृद्धि की है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता के अवरुद्ध होने की संभावना है।

शिक्षा पर प्रभाव: ASER 2021 ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि लंबे समय तक स्कूलों के बंद रहने और शिक्षा के ऑनलाइन मोड की ओर संक्रमण ने गरीब और अमीर परिवारों के

बच्चों के बीच 'लर्निंग' अंतराल में वृद्धि की है।निम्न-आय परिवारों के छोटे बच्चे स्मार्टफोन, टैबलेट, इंटरनेट जैसे लर्निंग करने के तकनीकी माध्यमों से अधिक वंचित हुए।इसके अलावा स्मार्टफोन उपलब्धता वाले परिवारों में भी एक-चौथाई से अधिक बच्चे इसके उपयोग से वंचित रहे।

रोज़गार पर प्रभाव: महामारी की शुरुआत से ही भारत में श्रम बल की भागीदारी में गिरावट आई है, विशेष रूप से महिला श्रमबल के बीच यह गिरावट दर्ज की गई।इसी अवधि में बेरोज़गारी दर 7.5% से बढ़कर 8.6% हो गई, जिसका अर्थ यह है कि नौकरी की तलाश करने वालों लोगों में से नौकरी पाने में असमर्थ रहे (यहाँ तक कि संभवतः कम वेतन पर भी) लोगों की संख्या में वृद्धि हुई।जिन लोगों के पास नौकरी है, उनमें से भी अधिकाधिक अनियमित/आकस्मिक वेतनभोगी श्रमिक के रूप में नियोजित किये जा रहे हैं।कार्यबल के बढ़ते 'कैज़ुअलाइज़ेशन' (casualization) या 'कॉन्ट्रैक्टुअलाइज़ेशन'/संविदाकरण (contractualisation) का अर्थ है अच्छे भुगतान वाली नौकरियों का अभाव।

4.5आगे की राह

नॉर्डिक इकोनॉमिक मॉडल: धन के वर्तमान पुनर्वितरण को अधिक न्यायसंगत बनाने के लिये वर्तमान नव-उदारवादी मॉडल को 'नॉर्डिक इकोनॉमिक मॉडल' (Nordic Economic Model) द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है।इस मॉडल में सभी के लिये प्रभावी कल्याणकारी सुरक्षा, भ्रष्टाचार मुक्त शासन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा का मौलिक अधिकार, अमीरों के लिये उच्च कराधान आदि शामिल हैं।

राजनीतिक सशक्तीकरण: यह निर्धनता उन्मूलन का पहला प्रमुख घटक है। राजनीतिक सक्षमता वाले लोग बेहतर शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा की माँग कर सकेंगे और इसे प्राप्त कर सकेंगे।यह समाज में व्याप्त संरचनात्मक असमानता और सांप्रदायिक विभाजन को भी मिटाएगा।

धन का पुनर्वितरण: विश्व असमानता रिपोर्ट, 2022 अरबपतियों पर एक उपयुक्त/ प्रगतिशील संपत्ति कर (Progressive Wealth Tax) अधिरोपित करने का सुझाव देती है।बड़ी मात्रा में धन संकेंद्रण को देखते हुए प्रगतिशील कर सरकारों के लिये उल्लेखनीय मात्रा में राजस्व उत्पन्न कर सकते हैं।1 मिलियन डॉलर से अधिक की संपत्ति के लिये 1.2% की वैश्विक प्रभावी संपत्ति कर दर वैश्विक आय का 2.1% राजस्व उत्पन्न कर सकती है।

बुनियादी आवश्यकताओं की पहुँच बढ़ाना: भारत में बढ़ती असमानता को देखते हुए स्पष्ट सार्वजनिक नीतियाँ लानी चाहिये। जनसंख्या के बीच स्वास्थ्य और शिक्षा का अधिकाधिक व्यापक प्रसार करने की आवश्यकता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा लाभ, रोज़गार गारंटी योजनाओं जैसी सार्वजनिक वित्तपोषित उच्च गुणवत्तायुक्त सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित कर असमानता को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

रोज़गार सृजन: कपड़ा, वस्त्र, ऑटोमोबाइल, उपभोक्ता सामान जैसे विनिर्माण क्षेत्रों के विकास में व्याप्त बाधाएँ बढ़ती असमानताओं का एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं।

श्रम-प्रधान विनिर्माण क्षेत्र में उन लाखों लोगों को समाहित करने की क्षमता है, जो खेती छोड़ रहे हैं जबकि सेवा क्षेत्र शहरी मध्यम वर्ग को लाभान्वित कर सकता है।

वेतन असमानताओं को कम करना: अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) ने अनुशंसा की है कि एक न्यूनतम वेतन सीमा इस तरह से निर्धारित की जानी चाहिये जो व्यापक आर्थिक कारकों के साथ श्रमिकों और उनके परिवारों की आवश्यकताओं को संतुलित करे।

नागरिक समाज को बढ़ावा देना: पारंपरिक रूप से उत्पीड़ित और दमित समूहों को अधिकाधिक अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना जहाँ इन समूहों के भीतर यूनियन और संघ जैसे नागरिक समाज समूहों को सक्षम करना शामिल है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को उद्यमी बनने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये; स्टैंड अप इंडिया जैसी योजनाओं का वित्तपोषण बढ़ाकर इसकी पहुँच को व्यापक करने की आवश्यकता है।

लैंगिक समानता को आत्मसात करना: अर्थव्यवस्था में महिलाओं के पूर्ण समावेशन हेतु बाधाओं को दूर करने की आवश्यकता है। इसमें श्रम बाज़ार, संपत्ति के अधिकार और लक्षित ऋण एवं निवेश तक पहुँच प्रदान करना शामिल है।अधिकाधिक महिलाओं को उद्यमी बनने के लिये प्रोत्साहित करने से दीर्घकालिक समाधान प्राप्त होगा।रोज़गार सृजन और स्वास्थ्य एवं शिक्षा में निवेश को बढ़ावा देकर महिलाओं में उद्यमिता की वृद्धि भारत की अर्थव्यवस्था और समाज को रूपांतरित कर सकती है।

4.6 सारांश

इस खंड का सारांश समाज में विशेष रूप से गरीबी और बेरोजगारी के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है। गरीबी के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए अमर्त्यसेन के समानता माप को मानक रूप से विचार किया जाता है, जो समाज में समानता को मापने का एक महत्वपूर्ण तरीका है।बेरोजगारी के मुद्दे पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जैसे कि शिक्षित बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी। इसके साथ ही, सरकारी रोजगार योजनाओं की प्रभावकारिता एवं उनकी सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा और सशक्तिकरण में योगदान पर भी विचार किया जाता है।आर्थिक विषमता, बाजार व्यवस्था, और विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में समस्याओं को समझने के लिए भी ध्यान दिया जाता है।इस खंड का महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि गरीबी और बेरोजगारी के मुद्दों को व्यापक रूप से समझा जाए और उन्हें समाधान की दिशा में देखा जाए। यहां तक कि शिक्षा, रोजगार योजनाएं, और आर्थिक विषमताओं में सुधार के उपायों पर चर्चा करके समृद्धि की दिशा में कदम बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।इस खंड में समाज के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए विभिन्न माप और उपायों पर विचार किया गया है ताकि समृद्धि, सामाजिक सुरक्षा, और समानता की दिशा में आगे बढ़ा जा सके।

4.7कुछ उपयोगी पुस्तके

इस इकाई में चर्चित विषयों पर आगे गहन अध्ययन के लिए निम्नलिखित पाठ्यपुस्तकों और ऑनलाइन संसाधनों का संदर्भ लिया जा सकता है।

1. डीटन और कोजेल। महान भारतीय गरीबी बहस, लक्ष्मी प्रकाशन, 1 जनवरी 2006
2. मार्टिन रावलियन। वैश्वीकरण, गरीबी और असमानता पर बहस: क्यों , नीति अनुसंधान कार्य पत्र, अप्रैल, 2003।
3. नीलकंठ रथ और वी एम दांडेकर। भारत में गरीबी, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 6, अंक संख्या 2, 09 जनवरी, 1971

- बोध प्रश्न

1. सापेक्ष गरीबी और पूर्ण गरीबी की अवधारणाओं के बीच अंतर बताएँ।
2. सापेक्ष गरीबी और पूर्ण गरीबी के बीच अंतर बताएँ।
3. असमानता की अवधारणा को परिभाषित करें।
4. लैंगिक असमानता का क्या अर्थ है?

खंड 04 - भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान समस्याएँ

इकाई - 01 समान्तर अर्थव्यवस्था, कालाधन एवं भ्रष्टाचार

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 समान्तरअर्थव्यवस्था, कालाधनएवंभ्रष्टाचार

1.3 समानांतर अर्थव्यवस्था के प्रभाव

1.4 समाज पर नकारात्मक प्रभाव:

1.5भारत में कालाधन और उसके निर्धारण की कठिनाइयाँ

1.6 भारत में कालाधन की प्रमुख स्त्रोत

1.7कालाधन मापना कठिन क्यों है?

1.8काले धन पर अंकुश लगाने के सरकारी प्रयास:

1.9समानांतर अर्थव्यवस्था का सृजन: परिभाषा:

1.10आगे की राह:

1.11सारांश

1.12शब्दावली

1.13कुछ उपयोगी पुस्तके

उद्देश्य

इस खंड का मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा समस्याओं की गहन समझ विकसित करना और उन्हें हल करने के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करना है। इसमें विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा, जो अर्थव्यवस्था की संरचना और समस्याओं के कारणों को बेहतर ढंग से समझने में मदद करेंगे। **भारतीय अर्थव्यवस्था का व्यापक विश्लेषण:** भारतीय अर्थव्यवस्था के अध्ययन के तहत, इस खंड का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य इन समस्याओं को संक्षिप्त और व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझना है। हम इसे अर्थशास्त्रियों, शोधकर्ताओं, और नीति-निर्माताओं की दृष्टि से देखेंगे ताकि हम समस्याओं के संभावित समाधानों की दिशा में आगे बढ़ सकें। इस खंड में, हम भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याओं का संक्षिप्त और विस्तृत विश्लेषण करेंगे। यह समस्याएं कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे:

- **आर्थिक असमानता:** समाज में आय और अवसरों की असमानता।
- **कालाधन:** अर्थव्यवस्था में अवैध धन का प्रचलन।
- **भ्रष्टाचार:** सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों में भ्रष्टाचार का फैलाव।
- **वैश्वीकरण का प्रभाव:** भारतीय बाजारों पर वैश्विक व्यापार और निवेश का प्रभाव।

- **समावेशी विकास की कमी:** उन वर्गों का विकास, जो आर्थिक विकास के लाभों से वंचित हैं।

समस्याओं की गहन समझ: इस खंड का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि हम भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं को गहराई से समझें और उनके समाधान की संभावनाओं को भी अच्छे से जानें। यह अध्ययन हमें इन समस्याओं के संभावित समाधानों की दिशा में ले जाएगा, जो अर्थव्यवस्था में सुधार और सतत विकास को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

कारणों और समाधानों का विश्लेषण: इस खंड में प्रस्तुत जानकारी और विश्लेषण से हमें इन समस्याओं के मूल कारणों को समझने में मदद मिलेगी। साथ ही, हम उन सुधारात्मक नीतियों और क्रियाओं की ओर संकेत कर सकेंगे, जो इन समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रासंगिक होंगी।

समग्र उद्देश्य: इस प्रकार, यह खंड अर्थव्यवस्था के प्रमुख मुद्दों को समझने और उन्हें हल करने के लिए ध्यान केंद्रित रखने में हमारी सहायता करेगा। इससे हमें भारतीय अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए नीतियों और क्रियाओं की दिशा में मार्गदर्शन मिलेगा, जो दीर्घकालिक विकास और समृद्धि की दिशा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस खंड के माध्यम से, न केवल वर्तमान समस्याओं को पहचाना जाएगा, बल्कि उनके समाधान की संभावनाओं पर भी विचार किया जाएगा, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था को एक समृद्ध और समावेशी भविष्य की ओर अग्रसर किया जा सके।

1.0 प्रस्तावना

प्रस्तावना खंड किसी भी विषय की प्रस्तावना और परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। यह खंड अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह पाठक को उस विषय को समझने और उसके अध्ययन की दिशा में आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करता है। **भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रस्तावना:** भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रस्तावना इसके विविधता भरे व्यापारिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश के अतीत और वर्तमान के संगम पर केंद्रित होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कई तरह की समस्याएं और अवसर दोनों मौजूद हैं, जो इसे एक अद्वितीय और जटिल स्वरूप प्रदान करते हैं। यहां मुख्य समस्याएं जैसे **आर्थिक असमानता**, **कालाधन**, **भ्रष्टाचार**, **वैश्वीकरण का प्रभाव**, और **समावेशी विकास की कमी** शामिल हैं, जो भारतीय अर्थव्यवस्था के संतुलन को प्रभावित करती हैं।

प्रस्तावना का महत्त्व: प्रस्तावना का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह उठाए गए मुद्दों को स्पष्ट रूप से सामने रखती है। इसके जरिए हम न केवल समस्याओं को समझ पाते हैं, बल्कि अर्थव्यवस्था में मौजूद अवसरों और चुनौतियों को भी पहचानते हैं। इस प्रस्तावना में, हम इन समस्याओं और अवसरों के बीच संतुलन स्थापित करने की कोशिश करेंगे, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं और प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न चुनौतियों को गहराई से समझ सकें।

समस्याओं और समाधान की खोज: प्रस्तावना का उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को समझना और उन समस्याओं के समाधान की संभावनाओं को तलाशना है, जो देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में बाधा उत्पन्न कर रही हैं। इस खंड में हम उन कारणों का विश्लेषण करेंगे, जो इन संकटों के पीछे छिपे हैं, और उनका समाधान खोजने की दिशा में प्रयास करेंगे।

उद्देश्य और मार्गदर्शन: इस प्रस्तावना का उद्देश्य न केवल अर्थव्यवस्था के मौजूदा संकटों को समझना है, बल्कि उनके समाधान के संभावित रास्तों को भी प्रस्तुत करना है। इससे हमें भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार और सतत विकास को प्रोत्साहित करने वाले समाधान खोजने में मदद मिलेगी। इस खंड के माध्यम से, हम भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख संकटों पर ध्यान केंद्रित रखेंगे और सामाजिक, आर्थिक, और नीतिगत सुधार के लिए आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे। इस प्रकार, यह प्रस्तावना खंड हमें भारतीय अर्थव्यवस्था के जटिल मुद्दों को समझने और उनका समाधान खोजने की दिशा में एक ठोस आधार प्रदान करता है।

1.2 समानांतर अर्थव्यवस्था, कालाधन, और भ्रष्टाचार

समानांतर अर्थव्यवस्था किसी देश की आधिकारिक और वैध अर्थव्यवस्था के समानांतर एक अवैध क्षेत्र के रूप में कार्य करती है। यह क्षेत्र आधिकारिक नीतियों, नियमों और कानूनी प्रक्रियाओं के विपरीत काम करता है, जिससे यह देश की आर्थिक और सामाजिक संरचना पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। समानांतर अर्थव्यवस्था को काली अर्थव्यवस्था, बेहिसाब अर्थव्यवस्था, भूमिगत अर्थव्यवस्था या अवैध अर्थव्यवस्था के नाम से भी जाना जाता है। समानांतर अर्थव्यवस्था का मुख्य स्रोत **कालाधन** है, जो वैध आर्थिक गतिविधियों के बाहर पैदा किया गया धन होता है और इसका कोई सरकारी हिसाब-किताब नहीं होता। यह धन अक्सर कर चोरी, भ्रष्टाचार, ड्रग्स, अवैध हथियारों की तस्करी, और अन्य अवैध गतिविधियों से प्राप्त होता है। काले धन का बढ़ता प्रचलन समानांतर अर्थव्यवस्था को जन्म देता है, जो वैध अर्थव्यवस्था के संतुलन को बिगाड़ने का मुख्य कारण बनता है।

1.3 समानांतर अर्थव्यवस्था के प्रभाव समानांतर या काली अर्थव्यवस्था कई तरह से देश की वित्तीय प्रणाली और नीति-निर्माण प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है। इसके कारण देश की **मौद्रिक नीतियों** को प्रभावी रूप से लागू करना मुश्किल हो जाता है। इससे संस्थानों को सही और प्रभावी सुधारात्मक उपाय करने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि समानांतर अर्थव्यवस्था में उत्पन्न धन का कोई सरकारी रिकॉर्ड नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप, सरकार के लिए आर्थिक नीतियों को सही ढंग से लागू करना कठिन हो जाता है और यह संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए अप्रत्याशित प्रभाव पैदा करता है।

प्रमुख प्रभाव:

अवैध गतिविधियों का विस्तार: समानांतर अर्थव्यवस्था के कारण अवैध गतिविधियों, जैसे कि ड्रग तस्करी, हथियारों की तस्करी, और संगठित अपराध में वृद्धि होती है। विशेष रूप से मेट्रो शहरों, जैसे मुंबई और दिल्ली में, संगठित अपराध का विस्तार इसी वजह से हो रहा है।

आतंकवाद और चरमपंथ का वित्त पोषण: समानांतर अर्थव्यवस्था से मिलने वाले काले धन का एक बड़ा हिस्सा आतंकवादी संगठनों और चरमपंथियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने में जाता है। यह भारत के लिए एक प्रमुख सुरक्षा चुनौती बन चुका है।

वैध अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव: समानांतर अर्थव्यवस्था से सरकार के लिए कर संग्रह में कमी होती है, जिससे सरकारी विकास परियोजनाओं और सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के लिए धन की कमी होती है।

नकद रहित और क्रिप्टोकरेंसी का उपयोग: समानांतर अर्थव्यवस्था में अवैध धन के लेन-देन के लिए नई तकनीकों का इस्तेमाल किया जा रहा है, जैसे क्रिप्टोकरेंसी और ई-कॉमर्स। इन माध्यमों के कारण अवैध धन का ट्रैकिंग और जांच करना और भी मुश्किल हो गया है।

अवैध हथियारों का कारोबार: भारत में अवैध हथियारों का व्यापार भी कालाधन से संचालित होता है। हाल ही में जब्त किए गए अवैध आग्नेयास्त्र और सार्वजनिक स्थानों पर गोलीबारी की घटनाएं इसी काले धन के कारोबार से जुड़ी हुई हैं। यह समस्या सामाजिक और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है।

भ्रष्टाचार और समानांतर अर्थव्यवस्था का संबंध समानांतर अर्थव्यवस्था भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा देती है। सरकारी और निजी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की वजह से काले धन का प्रसार तेजी से होता है। सरकारी अधिकारी, व्यावसायिक संस्थान, और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों के बीच भ्रष्टाचार समानांतर अर्थव्यवस्था को और बढ़ावा देता है, जिससे देश की वैध अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ जाती है।

1.4 समाज पर नकारात्मक प्रभाव: समानांतर अर्थव्यवस्था और कालाधन का प्रभाव केवल आर्थिक नहीं है, बल्कि इसका गहरा असर समाज पर भी पड़ता है। इस अवैध धन से समाज में असमानता बढ़ती है, क्योंकि इसके कारण कुछ व्यक्तियों और समूहों के पास अत्यधिक धन संचय होता है, जबकि सामान्य जनसंख्या आर्थिक संसाधनों से वंचित रहती है। इससे सामाजिक और आर्थिक विषमता बढ़ती है, जो सामाजिक स्थिरता के लिए खतरनाक होती है। समानांतर अर्थव्यवस्था, कालाधन, और भ्रष्टाचार भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर चुनौतियाँ हैं। ये केवल आर्थिक विकास में रुकावटें पैदा नहीं करते, बल्कि समाज के मूल ढांचे को भी नुकसान पहुंचाते हैं। समानांतर अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए सरकार को सख्त नीतियों और कानूनों को लागू करने की आवश्यकता है, ताकि देश की वैध अर्थव्यवस्था को स्थिर और समृद्ध बनाया जा सके। भारतीय अर्थव्यवस्था वर्तमान में कई चुनौतियों का सामना कर रही है, जो देश के विकास और समृद्धि की दिशा में बाधाएं उत्पन्न कर रही हैं। इन समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था सतत और समावेशी विकास की ओर बढ़ सके।

1. **बेरोज़गारी**: भारतीय अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी एक प्रमुख समस्या है। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में नौकरी के पर्याप्त अवसरों की कमी है, जिसके परिणामस्वरूप

विशेषकर युवा वर्ग प्रभावित हो रहा है। रोजगार सृजन के लिए औद्योगिक विस्तार, कौशल विकास, और कृषि क्षेत्र में सुधारों की आवश्यकता है।

2. **महंगाई**: मुद्रास्फीति या महंगाई भी एक बड़ी समस्या है। आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि से गरीब और मध्यम वर्ग के लोगों के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। खाद्य पदार्थों और ईंधन की कीमतों में बढ़ोतरी से उपभोक्ता खर्चों में वृद्धि होती है, जिससे आर्थिक असंतुलन उत्पन्न होता है।
3. **गरीबी और असमानता**: भारतीय समाज में गरीबी और आर्थिक असमानता एक गंभीर चुनौती है। समावेशी विकास की कमी के कारण, धन का असमान वितरण होता है, जिससे समाज के गरीब और वंचित वर्ग पीछे रह जाते हैं। गरीबों की आर्थिक स्थिति सुधारने और सामाजिक सुरक्षा के उपायों को सुदृढ़ करने की जरूरत है।
4. **कृषि संकट**: कृषि क्षेत्र, जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। इसमें फसल उत्पादन में गिरावट, कृषि उत्पादों के लिए उचित मूल्य न मिलना, किसानों की आत्महत्या, और कर्ज का बोझ शामिल है। कृषि सुधारों, जल प्रबंधन, और बेहतर तकनीकी सहायता की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र को पुनर्जीवित किया जा सके।
5. **बुनियादी ढांचे की कमी**: आर्थिक विकास के लिए सुदृढ़ बुनियादी ढांचा आवश्यक है, लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था में बुनियादी ढांचे की कमी भी एक बड़ी समस्या है। सड़क, परिवहन, बिजली, और संचार सेवाओं का अभाव देश के विकास में बाधा डालता है। इस दिशा में निवेश और सुधार आवश्यक है।
6. **स्वास्थ्य और शिक्षा में कमी**: स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में भी भारत को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में कमी और शिक्षा का निम्न स्तर विकास में बाधक है। इन क्षेत्रों में सुधार कर ही मानव संसाधन को सशक्त किया जा सकता है।
7. **विदेशी व्यापार में असंतुलन**: भारत के विदेशी व्यापार में असंतुलन बना हुआ है। आयात और निर्यात के बीच असंतुलन से विदेशी मुद्रा भंडार पर दबाव बढ़ता है। निर्यात को बढ़ावा देने के लिए मेक इन इंडिया जैसे अभियानों को और मजबूती प्रदान करनी होगी।

भारतीय अर्थव्यवस्था की इन समस्याओं का समाधान किए बिना, देश को समृद्धि की दिशा में आगे बढ़ाना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। सरकारी नीतियों में सुधार, निवेश को बढ़ावा, और समाज के सभी वर्गों के विकास पर ध्यान देने से इन चुनौतियों का सामना किया जा सकता है।

1.5भारत में कालाधन और उसके निर्धारण की कठिनाइयाँ हाल ही में वित्त पर स्थाई समिति (Standing Committee on Finance) ने भारत और विदेशों में काले धन के संबंध में एक

रिपोर्ट जारी की है। इस रिपोर्ट में यह निष्कर्ष दिया गया है कि हमारे पास भारत या विदेशों में मौजूद काले धन की सटीक मात्रा का निर्धारण करने का कोई विश्वसनीय तरीका नहीं है।

क्या होता है कालाधन? अर्थशास्त्र में काले धन की कोई आधिकारिक परिभाषा नहीं है। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे समानांतर अर्थव्यवस्था, काली आय, अवैध अर्थव्यवस्था, या अनियमित अर्थव्यवस्था। सरल शब्दों में कहा जाए तो कालाधन वह आय होती है जिसे कर अधिकारियों से छुपाने का प्रयास किया जाता है। कालाधन मुख्यतः दो श्रेणियों से प्राप्त किया जा सकता है:

1. **गैरकानूनी गतिविधियों से:** जो आय अवैध गतिविधियों से कमाई जाती है, वह कर अधिकारियों से छुपाई जाती है और उसे कालाधन कहा जाता है। उदाहरण के लिए, मादक पदार्थों की तस्करी, हथियारों का अवैध व्यापार, और अन्य गैरकानूनी गतिविधियों से कमाई गई आय।
2. **कानूनी परंतु असूचित गतिविधियों से:** इसमें वह आय शामिल होती है जो कानूनी रूप से कमाई जाती है, परंतु उसे कर अधिकारियों के समक्ष घोषित नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, किसी संपत्ति के विक्रय में यदि कुल भुगतान का 60% चेक द्वारा और 40% नकद प्राप्त किया जाता है, और विक्रेता कर अधिकारियों को केवल 60% की जानकारी देता है, तो यह 40% असूचित धन कालाधन कहलाएगा।

1.6 भारत में कालाधन की प्रमुख स्त्रोत वित्त पर स्थाई समिति की रिपोर्ट के अनुसार, कुछ प्रमुख उद्योग ऐसे हैं जहाँ कालाधन की अत्यधिक मात्रा पाई जाती है। इनमें **रियल एस्टेट**, **खनन**, **औषधीय उद्योग**, **तंबाकू**, और **फिल्म और टेलीविजन उद्योग** शामिल हैं। इन क्षेत्रों में कर अधिकारियों को सही जानकारी नहीं दी जाती, जिससे काले धन का प्रचलन बढ़ता है।

1.7कालाधन मापना कठिन क्यों है?

1. **अनुमानित मापदंड:** कालाधन मापने के लिए जो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, वे सामान्यतः **अनुमानों** पर आधारित होती हैं। इनमें तथ्यों और आंकड़ों की सटीकता का अभाव होता है, जिससे वास्तविक काले धन की मात्रा का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।
2. **पारदर्शिता की कमी:** कई छोटे और मध्यम व्यापारिक प्रतिष्ठान, जैसे छोटे दुकानदार, नकद में व्यापार करते हैं। इस कारण उनके वास्तविक लाभ और आय का पारदर्शी रूप से पता लगाना मुश्किल होता है। नकद लेनदेन को सही ढंग से रिकॉर्ड नहीं किया जाता, जिससे कर चोरी की संभावनाएँ बढ़ती हैं।
3. **अलग-अलग एजेंसियों के दृष्टिकोण में भिन्नता:** भारत में विभिन्न एजेंसियाँ काले धन का अनुमान लगाने का प्रयास करती हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और मान्यताओं में एकरूपता का अभाव है। इससे काले धन का सटीक मापन नहीं हो पाता।
4. **उद्योगों की प्रकृति:** जिन उद्योगों में नकद लेन-देन अधिक होता है, जैसे रियल एस्टेट और फिल्म उद्योग, वहाँ काले धन का अनुमान लगाना और भी कठिन हो जाता है।

भारत में कालाधन का निर्धारण एक जटिल प्रक्रिया है, जो विभिन्न कारणों से कठिन हो गई है। वित्तीय प्रक्रियाओं में पारदर्शिता की कमी, नकद लेन-देन की अधिकता, और सटीक मापन प्रणाली के अभाव के कारण कालाधन की सही मात्रा का पता लगाना चुनौतीपूर्ण हो गया है। **प्रयोग की जाने वाली कुछ प्रमुख विधियाँ:** भारत में काले धन को मापने के लिए विभिन्न विधियाँ अपनाई जाती हैं, लेकिन दो प्रमुख विधियाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं: **मौद्रिक विधि** और **इनपुट आधारित विधि**। इन विधियों के माध्यम से अर्थशास्त्री और सरकारें काले धन के स्तर का अनुमान लगाने का प्रयास करती हैं, ताकि इस समस्या को बेहतर ढंग से समझा जा सके और इसके समाधान के लिए उचित नीतियाँ बनाई जा सकें।

1. मौद्रिक विधि (Monetary Method): मौद्रिक विधि भारत में काले धन को मापने की सबसे लोकप्रिय और व्यापक रूप से स्वीकार की जाने वाली विधि है। इस विधि के अंतर्गत यह माना जाता है कि काले धन की उपलब्धता और उसमें होने वाले परिवर्तन अर्थव्यवस्था में मुद्रा के प्रवाह (money supply) और मुद्रा के भंडारण (money hoarding) को प्रभावित करते हैं। इसलिए, अर्थव्यवस्था में मुद्रा के प्रवाह और उसके उपयोग के पैटर्न का अध्ययन करके काले धन के स्तर का अनुमान लगाया जाता है। **अवधारणा और कार्यप्रणाली: मुद्रा का अनुपात (Currency Ratio):** इस विधि में मुद्रा का अनुपात, जैसे कि M1, M2, M3 आदि, का विश्लेषण किया जाता है। यदि अर्थव्यवस्था में मुद्रा का अनुपात GDP की वृद्धि दर से अधिक तेजी से बढ़ रहा है, तो यह काले धन की उपस्थिति का संकेत हो सकता है। **मुद्रा की मांग और आपूर्ति (Demand and Supply of Money):** अर्थव्यवस्था में नकद लेन-देन की मात्रा और नकदी की मांग का अध्ययन करके यह पता लगाया जाता है कि कहीं काले धन की वजह से नकदी की मांग में अप्राकृतिक वृद्धि तो नहीं हो रही है। **मुद्रा का प्रचलन (Circulation of Currency):** यदि लोग अपने धन को बैंकिंग प्रणाली के बाहर नकद के रूप में रखते हैं, तो यह काले धन का संकेत हो सकता है। इससे बैंक जमाओं में कमी आती है और आर्थिक प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सीमाएँ: अनुमानित परिणाम: मौद्रिक विधि के परिणाम अनुमानों पर आधारित होते हैं और विभिन्न कारकों से प्रभावित हो सकते हैं, जैसे कि मुद्रा के उपयोग में बदलाव, डिजिटल भुगतान का बढ़ना आदि। **डेटा की उपलब्धता:** सटीक और अद्यतन डेटा की कमी से इस विधि की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है।

3. **इनपुट आधारित विधि (Input-Based Method): परिचय:** इनपुट आधारित विधि के तहत यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि अर्थव्यवस्था में कितने इनपुट का उपयोग करके कितना उत्पादन होना चाहिए था और वास्तव में कितना उत्पादन हुआ है। इन दोनों के अंतर से काले धन का अनुमान लगाया जाता है।

अवधारणा और कार्यप्रणाली: उत्पादन और उपभोग का विश्लेषण: विभिन्न उद्योगों में उपयोग किए जाने वाले कच्चे माल, श्रम, ऊर्जा आदि के उपभोग का अनुमान लगाया जाता है और उसे उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा से मिलान किया जाता है। **उदाहरण:**

एक शहर में निर्मित सभी घरों की संख्या का अनुमान लगाकर यह तय किया जाता है कि इन घरों के निर्माण में कितनी सीमेंट, स्टील, लकड़ी आदि की आवश्यकता होगी। इसके बाद कर रिकॉर्ड और आधिकारिक आंकड़ों के आधार पर यह देखा जाता है कि वास्तव में कितना सीमेंट और अन्य सामग्री बेची गई है। यदि अनुमानित और वास्तविक आंकड़ों में अंतर पाया जाता है, तो यह संकेत देता है कि कुछ लेन-देन कर अधिकारियों से छुपाए गए हैं, जो काले धन का हिस्सा हो सकते हैं।

सीमाएँ: डेटा की सटीकता पर निर्भरता: इस विधि की सफलता सटीक डेटा की उपलब्धता पर निर्भर करती है। यदि डेटा अधूरा या गलत हो, तो परिणाम भी गलत होंगे।

अनुमानों की जटिलता: विभिन्न उद्योगों के लिए इनपुट और आउटपुट का सटीक अनुमान लगाना जटिल हो सकता है और कई मान्यताओं पर आधारित होता है।

1.8काले धन पर अंकुश लगाने के सरकारी प्रयास: काले धन की समस्या से निपटने के लिए भारतीय सरकार ने कई विधायी, प्रशासनिक और नीतिगत उपाय किए हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य काले धन के सृजन, संचय और उपयोग को रोकना है, जिससे अर्थव्यवस्था में पारदर्शिता और वैधता बढ़ाई जा सके।

1. **विधायी कार्यवाही:** सरकार ने विभिन्न कानूनों और अधिनियमों को पारित किया है जो काले धन पर अंकुश लगाने में सहायक हैं: **वस्तु एवं सेवा कर (GST) अधिनियम:** अप्रत्यक्ष करों की जटिल संरचना को सरल बनाकर GST ने कर चोरी के अवसरों को कम किया है। एक एकीकृत कर प्रणाली से लेन-देन अधिक पारदर्शी हुए हैं। **काला धन (अघोषित विदेशी आय और संपत्ति) तथा कर आरोपण अधिनियम, 2015:** यह अधिनियम विदेशों में स्थित भारतीय नागरिकों की अघोषित आय और संपत्तियों को घोषित करना अनिवार्य बनाता है। इसमें कठोर दंड और दंडनीय प्रावधान शामिल हैं।

बेनामी लेन-देन (निषेध) संशोधन अधिनियम: इस कानून के तहत बेनामी संपत्तियों के अधिग्रहण और लेन-देन पर रोक लगाई गई है। इसका उद्देश्य संपत्ति के लेन-देन में पारदर्शिता बढ़ाना और काले धन के उपयोग को रोकना है।

भगोड़ा आर्थिक अपराधी अधिनियम: यह अधिनियम उन व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करता है जो आर्थिक अपराध करके देश से भाग जाते हैं। इससे बड़े आर्थिक अपराधियों की संपत्तियों को जब्त करने और उन्हें न्याय के दायरे में लाने में मदद मिलती है।

2. **पैन रिपोर्टिंग को अनिवार्य बनाना** सरकार ने 2.5 लाख रुपये से अधिक के सभी वित्तीय लेन-देन के लिए स्थायी खाता संख्या (PAN) को अनिवार्य कर दिया है। इसका उद्देश्य है:

   बड़े लेन-देन की निगरानी: उच्च मूल्य के लेन-देन की रिपोर्टिंग से कर अधिकारियों को संदिग्ध गतिविधियों का पता लगाने में मदद मिलती है।

   कर आधार का विस्तार: अधिक लोगों को कर प्रणाली के अंतर्गत लाकर कर संग्रह बढ़ाना।

3. आयकर विभाग की कार्यवाही: सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग: आयकर विभाग डेटा विश्लेषण और सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करके उन व्यक्तियों और संस्थाओं की पहचान कर रहा है जो उच्च मूल्य के लेन-देन तो करते हैं लेकिन आयकर रिटर्न दाखिल नहीं करते। **नोटिस जारी करना और कार्रवाई:** ऐसे व्यक्तियों को नोटिस जारी करके उनसे रिटर्न दाखिल करने और कर भुगतान की मांग की जाती है। आवश्यक होने पर कानूनी कार्रवाई भी की जाती है। **जन जागरूकता अभियान:** कर नियमों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और स्वैच्छिक अनुपालन को प्रोत्साहित करने के लिए अभियान चलाए जाते हैं। **काला धन अर्थव्यवस्था के लिए किस प्रकार घातक है:** काला धन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अनेक तरीकों से हानिकारक है। यह आर्थिक विकास को बाधित करता है, सामाजिक असमानता को बढ़ाता है, और नैतिक मूल्यों का क्षरण करता है।

1.9समानांतर अर्थव्यवस्था का सृजन: परिभाषा: काले धन की अधिकता से अर्थव्यवस्था में एक समानांतर अर्थव्यवस्था का उदय होता है, जो वैध अर्थव्यवस्था के साथ-साथ चलती है लेकिन आधिकारिक आंकड़ों और नियंत्रण से बाहर होती है। **प्रभाव:** समानांतर अर्थव्यवस्था का नियमन अत्यंत कठिन होता है। यह देश के आर्थिक विकास को बाधित करती है क्योंकि सरकारी नीतियाँ और योजनाएँ इसकी गतिविधियों को नियंत्रित नहीं कर पातीं।

2. आर्थिक आंकड़ों का विकृत होना: राष्ट्रीय आय और GDP का गलत आकलन: काले धन के चलते अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति का पता लगाना मुश्किल हो जाता है। राष्ट्रीय आय, GDP, और अन्य आर्थिक संकेतकों के गलत आकलन से नीतियों का गलत निर्धारण हो सकता है। **नीति निर्माण में त्रुटियाँ:** गलत आंकड़ों के आधार पर बनाई गई नीतियाँ प्रभावी नहीं होतीं, जिससे अर्थव्यवस्था को नुकसान होता है।

3. राजस्व हानि और वित्तीय असंतुलन: करवंचना (Tax Evasion): काले धन के सृजन से सरकार को कर राजस्व की हानि होती है, क्योंकि लोग अपनी वास्तविक आय को छुपाते हैं। **परिणामस्वरूप:** राजस्व की कमी को पूरा करने के लिए सरकार को या तो कर दरें बढ़ानी पड़ती हैं या घाटे का वित्तपोषण (deficit financing) करना पड़ता है, जिससे मुद्रास्फीति बढ़ सकती है और आर्थिक अस्थिरता हो सकती है।

4. सामाजिक और नैतिक क्षरण: अपराध और भ्रष्टाचार का बढ़ना: काले धन का उपयोग अक्सर अवैध गतिविधियों में किया जाता है, जैसे कि रिश्वत, चुनावों में अवैध वित्तपोषण, सट्टेबाजी, और आपराधिक संगठनों का समर्थन। इससे सामाजिक व्यवस्था में गिरावट आती है। **नैतिक मूल्यों का ह्रास:** समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण होता है, क्योंकि लोग अवैध तरीकों से धन अर्जित करने के लिए प्रेरित होते हैं।

5. दुर्लभ संसाधनों का अपव्यय: उपयोग पैटर्न का विकृत होना: काले धन के कारण धन का उपयोग गैर-उत्पादक और विलासितापूर्ण वस्तुओं और सेवाओं पर अधिक होता है, जिससे दुर्लभ संसाधनों का अपव्यय होता है। **आर्थिक असंतुलन:** आवश्यक क्षेत्रों में निवेश कम होता है, जिससे समग्र आर्थिक विकास प्रभावित होता है।

6. सामाजिक असमानता का बढ़ना: आय और अवसरों में असमानता: काले धन से कुछ लोगों के पास अत्यधिक धन संचय हो जाता है, जबकि समाज का बड़ा हिस्सा आवश्यक सुविधाओं से वंचित रहता है। **समाज में तनाव:** आय की असमानता से सामाजिक असंतोष और अस्थिरता बढ़ सकती है।

काला धन भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के लिए एक गंभीर चुनौती है। यह आर्थिक विकास को बाधित करता है, सामाजिक असमानता को बढ़ाता है, और नैतिक मूल्यों का ह्रास करता है। काले धन पर अंकुश लगाने के लिए सरकार को सख्त कानूनों के साथ-साथ प्रशासनिक सुधारों और जन जागरूकता अभियानों की आवश्यकता है। नागरिकों को भी अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए और कर नियमों का अनुपालन करना चाहिए। केवल सामूहिक प्रयासों से ही काले धन की समस्या का समाधान किया जा सकता है, जिससे भारत की अर्थव्यवस्था को पारदर्शी, मजबूत और समावेशी बनाया जा सके।

समग्र दृष्टिकोण:

प्रभावी निगरानी और प्रवर्तन: वित्तीय लेन-देन की प्रभावी निगरानी और कानूनों का कठोर प्रवर्तन आवश्यक है।

डिजिटल भुगतान को प्रोत्साहन: डिजिटल अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देकर नकद लेन-देन को कम किया जा सकता है, जिससे काले धन के संचय की संभावनाएँ घटती हैं।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग: विदेशों में जमा काले धन को वापस लाने के लिए अंतरराष्ट्रीय समझौतों और सहयोग की आवश्यकता है।

शिक्षा और जागरूकता: लोगों में नैतिक मूल्यों का विकास और करों के महत्व के प्रति जागरूकता बढ़ाने से स्वयंसेवी अनुपालन को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

इस विस्तृत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि काले धन की समस्या बहुआयामी है और इसके समाधान के लिए समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। सरकार, नागरिक, और विभिन्न संस्थाओं को मिलकर काम करना होगा ताकि एक समृद्ध, न्यायपूर्ण और समावेशी अर्थव्यवस्था का निर्माण हो सके। काले धन पर अंकुश लगाने के लिए उठाए जाने वाले कदम और सुझाए गए समाधान देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

1.10आगे की राह:

आयकर विभाग द्वारा व्यय सीमा निर्धारण: आयकर विभाग को एक मापदंड निर्धारित करना चाहिए, जिसके तहत आय के एक निश्चित प्रतिशत से अधिक का व्यय स्वचालित रूप से जांच के दायरे में आ जाए। यह नीति आय और व्यय में असंतुलन को रोकने में सहायक हो सकती है और कर चोरी पर नियंत्रण लगाया जा सकता है।

शिक्षण संस्थाओं पर निगरानी: शिक्षण संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली कैपिटेशन फीस पर कड़ी निगरानी रखी जानी चाहिए। इसके साथ ही धर्मार्थ संस्थाओं के लिए वार्षिक रिटर्न अनिवार्य बनाना, पंजीकरण प्रक्रिया में पारदर्शिता लाना और विभिन्न सरकारी एजेंसियों के बीच

सूचनाओं का आदानप्रदान सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इससे इन संस्थाओं द्वारा काले धन - के सृजन पर रोक लगाई जा सकेगी।

रियल एस्टेट सेक्टर में सुधार: एक सशक्त रियल एस्टेट कानून बनाकर इस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले काले धन पर अंकुश लगाया जा सकता है। रियल एस्टेट क्षेत्र में पारदर्शिता और नियमित निगरानी से काले धन के लेनदेन को नियंत्रित किया जा सकता है। सरकार पहले से -) ही रियल एस्टेट रेगुलेशन एक्टRERA) पारित कर चुकी है, जो इस दिशा में एक बड़ा कदम है।

चुनावों में काले धन का उपयोग रोकना: चुनाव प्रक्रिया में काले धन के उपयोग को रोकने के लिए व्यापक और प्रभावी कार्य योजना बनाई जानी चाहिए। राजनीतिक दलों को *सूचना का अधिकार* (RTI) के दायरे में लाना आवश्यक है और इनके बहीखातों की नियमित ऑ-डिटिंग होनी चाहिए। इससे चुनावी वित्तपोषण में पारदर्शिता आएगी और काले धन का इस्तेमाल कम होगा।

हवाला कारोबार पर अंकुश: हवाला के माध्यम से होने वाले अवैध लेनदेन पर सख्त कार्रवाई - की जानी चाहिए। हवाला कारोबार से संबंधित ट्रांजेक्शनों पर नियंत्रण करके काले धन क े प्रवाह को रोका जा सकता है।

आयकर विभाग के अधिकारों और स्वायत्तता में वृद्धि: आयकर विभाग को अधिक अधिकार दिए जाने चाहिए, जिससे वे प्रभावी तरीके से कर चोरी और काले धन के मामलों की जांच कर सकें। इसके साथ ही विभाग की स्वायत्तता में भी वृद्धि होनी चाहिए ताकि विभाग बिना किसी राजनीतिक या अन्य दबाव के कार्य कर सके।

सरकार के मौजूदा प्रयास: वर्तमान में, सरकार द्वारा *काला धन अधिनियम*, *बेनामी लेन देन-अधिनियम (संशोधन)*, *आय घोषणा योजना*, *विमुद्रीकरण* और *प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना* जैसे कदम उठाए जा चुके हैं, जिनका उद्देश्य काले धन के सृजन को रोकना है। हालांकि, यदि उपर्युक्त सुझावों को भी ध्यान में लिया जाए, तो काले धन पर रोक लगाने के प्रयासों को और अधिक गति दी जा सकती है। इससे देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ और पारदर्शी बनाने में मदद मिलेगी, जो दीर्घकालिक विकास के लिए आवश्यक है।

1.11सारांश

आर्थिक नीतियों का यह क्रियान्वयन और समानांतर या काली अर्थव्यवस्था एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। कानूनी अर्थव्यवस्था की तरह, काली अर्थव्यवस्था में भी इसके संचालन और विस्तार की प्रक्रियाएँ हैं और खुली वैध अर्थव्यवस्था के साथ इसके अंतर-संबंध और जुड़ाव हैं। भारत में, भूमिगत (काली) अर्थव्यवस्था अनौपचारिक और औपचारिक क्षेत्र के पंखों के नीचे काम करती है और इसमें राज्य की कार्यकारी, विधायी और न्यायिक शाखाएँ शामिल होती हैं। काली अर्थव्यवस्था के संचालन का राज्य की नीतियों पर गंभीर असर पड़ता है। इसने राज्य की अधिकांश नीतियों को विफल कर दिया है और घोषित आर्थिक, सामाजिक-लोकलुभावन उद्देश्यों के विपरीत परिणाम दिए हैं। यह विशाल व्यापक काली अर्थव्यवस्था राजनीति, अपराध

सिंडिकेट और कुछ व्यवसायों को बढ़ते पैमाने पर वित्तपोषित करती है। यह राजनेताओं, नौकरशाहों, लोक निर्माण ठेकेदारों, सार्वजनिक एजेंसियों को माल और सेवाओं के आपूर्तिकर्ताओं, विदेशी सहयोग के अनुमोदनकर्ताओं, विभिन्न अपराध सिंडिकेट आदि के बीच गठजोड़ बनाती है। इसलिए, काली अर्थव्यवस्था पर नकेल कसना बेहद मुश्किल है। हालाँकि, लोकतंत्र और लोगों के अपने प्रयास ही वांछनीय परिणाम उत्पन्न करने का साधन हैं। आशा है कि समय के साथ भारत एक वास्तविक, ईमानदार जन-हितैषी राज्य और समाज की ओर बढ़ेगा और फलस्वरूप, काली अर्थव्यवस्था और नीतिगत विकृतियाँ हाशिए पर चली जाएँगी

1.12शब्दावली

1. कालाधन (Black Money) - ऐसा धन जो अवैध रूप से कमाया या छिपाया गया हो।
2. गरीबी रेखा (Poverty Line) - वह आय स्तर जिसके नीचे व्यक्ति या परिवार को गरीब माना जाता है।
3. समावेशी विकास (Inclusive Growth) - ऐसा आर्थिक विकास जो समाज के सभी वर्गों तक लाभ पहुँचाए।
4. निवेश (Investment) - भविष्य में लाभ प्राप्त करने के लिए पूँजी या संसाधनों का उपयोग।
5. भ्रष्टाचार (Corruption) - सार्वजनिक पदों का दुरुपयोग निजी लाभ के लिए।
6. बुनियादी ढाँचा (Infrastructure) - परिवहन, संचार, ऊर्जा जैसी आधारभूत सुविधाएँ जो आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण होती हैं।
7. विनिवेश (Disinvestment) - सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्रों में अपनी हिस्सेदारी को कम करना।
8. नवाचार (Innovation) - नई या बेहतर उत्पाद, सेवाएँ या प्रक्रियाएँ जो आर्थिक विकास में सहायक हों।

1.13कुछ उपयोगी पुस्तके

1. गुप्ता, सूरज बी. (1992); भारत में काली आय, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. कबरा, कमल नयन (1982); भारत में काली अर्थव्यवस्था: समस्याएँ और नीतियाँ, चाणक्य प्रकाशन, दिल्ली।
3. कबरा, कमल नयन और जगन्नाथन, एन.एस. (1985); काला धन, भारत अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, नई दिल्ली।
4. कबरा, कमल नयन (1986); भारत की काली अर्थव्यवस्था और कुप्रबंधन, पैट्रियट पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. कुमार, अरुण (1999); भारत में काली अर्थव्यवस्था, पेंगुइन, नई दिल्ली।
6. कबरा, कमल नयन (1992); वित्तीय क्षेत्र घोटाला: उदारीकरण के फल, सहजोग प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. एन.आई.पी.एफ.पी. (1985); भारत में काली अर्थव्यवस्था के पहलू, नई दिल्ली।

➢ बोध प्रश्न

1. कालाधन भारतीय अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करता है? इसे रोकने के लिए कौन से उपाय किए जा रहे हैं?
2. समावेशी विकास की अवधारणा को समझाइए और भारतीय अर्थव्यवस्था में इसकी आवश्यकता क्यों है?
3. धन का संकेंद्रण (Wealth Concentration) का क्या अर्थ है? इसे रोकने के लिए क्या नीतियाँ बनाई जा सकती हैं?
4. वैश्वीकरण का भारतीय अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? इसके लाभ और हानियों का विश्लेषण कीजिए।
5. भ्रष्टाचार भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए किस प्रकार की बाधा उत्पन्न करता है? भ्रष्टाचार कम करने के उपाय क्या हो सकते हैं?
6. भारत में आय असमानता के प्रमुख कारण क्या हैं? इसे कम करने के लिए कौन-कौन से उपाय हो सकते हैं?

खंड 04 - भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान समस्याएँ

इकाई - 02 वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन

इकाई की रूपरेखा

2.0उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन
2.3वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था के प्रमुख तत्व
2.4वैचारिक खालीपन के प्रमुख कारण:
2.5वैश्वीकरण और वैचारिक खालीपन के समाधान
2.6वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन के संबंध
2.7 सारांश
2.8 उपयोगी शब्दावली
2.9 उपयोगी / सहायकग्रन्थ
2.10 अभ्यास प्रश्न

2.0उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य वैश्वीकरण को युगों से चली आ रही एक घटना के रूप में समझना है। छात्र वैश्वीकरण के विचार और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इसके महत्व से परिचित होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप यह जान पाएंगे:

- वैश्वीकरण और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बीच संबंध
- वैश्वीकरण की उत्पत्ति और इसके विभिन्न आयाम और विशेषताएँ
- वैश्वीकरण के युग में राष्ट्र राज्य का स्थान
- वैश्वीकरण का आलोचनात्मक मूल्यांकन।

2.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण एक सदियों पुरानी घटना है। इसकी उपस्थिति व्यापारिकता से लेकर वाणिज्यिक उदारवाद तक देखी गई है। ऐतिहासिक रूप से, परिवहन और संचार के साधनों में तेजी से परिवर्तन ने वैश्वीकरण की गति को और बढ़ा दिया है। मानव सभ्यता शुरू से ही अच्छे जीवन की तलाश में लगी रही। अरस्तू की धारणा के अनुसार अच्छे जीवन के लिए राज्य का अस्तित्व एक आवश्यकता है और साथ ही मनुष्य की सहज जीवन की अभिव्यक्ति भी उसकी क्षमताओं के विकास के लिए अपरिहार्य है। वैश्वीकरण की शुरुआत लोगों द्वारा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र या दुनिया भर में यात्रा करने से हुई वैसे तो वैश्वीकरण के वर्तमान चरण की शुरुआत की पहचान करने के लिए कोई विशेष तिथि और वर्ष निर्धारित करना कठिन है, लेकिन सामान्य तौर पर, बीसवीं सदी के अंतिम दशक में वैश्वीकरण एक नए विश्व समाज के

निर्माण और एकीकरण के रूप में सामने आया। ऐसा लगता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए आविष्कारों ने वैश्वीकरण को संभव बना दिया है और आर्थिक उदारीकरण की धारणा और उद्देश्य ने इसे दृश्यमान और अपरिहार्य बना दिया है। वैश्वीकरण एक नवउदारवादी पैकेज के रूप में उभरा, जिसने माल, निवेश/पूंजी, व्यापार/वाणिज्य, मुद्रा, सूचना/ज्ञान, विचारों, संस्कृति, अधिकार और यहां तक कि लोगों की आवाजाही के मुक्त प्रवाह को बढ़ावा देकर विश्व शक्तियों के प्रसार को सुगम बनाया। वैश्वीकरण को प्रकृति में महत्वाकांक्षी और चरित्र में समग्रता के रूप में देखा जाता है। यह राजनीति और अर्थशास्त्र की परस्पर जुड़ी प्रकृति का उपोत्पाद भी है

2.2 वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन वैश्वीकरण और बाजार व्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में विचार और आर्थिक ढांचे कैसे विकसित हो रहे हैं, यह समझना महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण ने जहां आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं में कई बदलाव लाए हैं, वहीं इसके कारण वैचारिक खालीपन जैसी समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। इस विस्तृत चर्चा में, वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन की गहराई में जाने का प्रयास किया जाएगा। वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाएं एकीकृत होकर एक वैश्विक बाजार का निर्माण करती हैं। इसमें वस्तुओं, सेवाओं, और पूंजी का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आदानप्रदान होता है। यह प्रक्रिया देशों - के बीच व्यापार और निवेश को बढ़ावा देती है, जिससे वैश्विक आर्थिक सहयोग और आपसी निर्भरता बढ़ती है। वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था ने दुनिया के कई क्षेत्रों में आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी बदलाव लाए हैं।

2.3वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था के प्रमुख तत्व:

1. **अंतरराष्ट्रीय व्यापार का विस्तार**: वैश्वीकरण के तहत देशों के बीच आयातनिर्यात की - प्रक्रियाएं सुगम हो गई हैं। वैश्विक मांग और आपूर्ति की जरूरतों के अनुरूप, व्यापार नीतियों का निर्माण किया गया है जिससे बाजारों में नए उत्पाद और सेवाओं की उपलब्धता बढ़ी है। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को वैश्विक स्तर पर बेहतर उत्पादों तक पहुंच प्राप्त हुई है।
2. **विदेशी निवेश में वृद्धि**: वैश्वीकरण ने विभिन्न देशों में विदेशी निवेशकों को आकर्षित किया है। निवेशक नए बाजारों, सस्ते श्रम, संसाधनों और मुनाफे के अवसरों की तलाश में दूसरे देशों में निवेश करते हैं। यह प्रक्रिया न केवल विदेशी निवेश को बढ़ावा देती है, बल्कि इससे स्थानीय उद्योगों और अर्थव्यवस्था को भी प्रोत्साहन मिलता है।
3. **वैश्विक आर्थिक साझेदारी**: वैश्वीकरण ने वित्तीय संस्थानों और देशों के बीच आर्थिक साझेदारी को मजबूत किया है। व्यापारिक समझौते, बहुपक्षीय वित्तीय सहयोग, और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संगठन इस साझेदारी के महत्वपूर्ण अंग हैं। यह सहयोग आर्थिक विकास और वैश्विक स्तर पर समृद्धि के लिए आवश्यक है।

2.4वैचारिक खालीपन के प्रमुख कारण:

1. **वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था की सफलता**: वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था ने आर्थिक विकास और जीवन स्तर में सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन इसने पारंपरिक विचारधाराओं को चुनौती दी है। कई बार, यह चुनौती पारंपरिक मान्यताओं और मूल्यों के साथ असंगत होती है, जिससे समाज में वैचारिक खालीपन का अनुभव होता है।
2. **पारंपरिक विचारधाराओं की विफलता**: वैश्वीकरण के युग में पारंपरिक विचारधाराएं समय की आवश्यकताओं और जटिलताओं को समझने में विफल रही हैं। इससे समाज में कई लोगों ने पारंपरिक विचारधाराओं पर विश्वास खो दिया है, जिससे एक प्रकार का वैचारिक शून्यता उत्पन्न हुई है।
3. **नई विचारधाराओं का उदय**: वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था के विरोध में कई नई विचारधाराएं उभर रही हैं। इनमें से कुछ विचारधाराएं रूढ़िवादी या उग्रवादी होती हैं। ये विचारधाराएं वैश्विक विकास के रुझानों के प्रति असंतोष व्यक्त करती हैं, लेकिन कभी-कभी ये अत्यधिक कठोर या अव्यवहारिक भी हो जाती हैं।

2.5वैश्वीकरण और वैचारिक खालीपन के समाधान

1. **शिक्षा और जागरूकता**: वैश्वीकरण के प्रभाव को समझने और वैचारिक खालीपन को दूर करने के लिए शिक्षा का प्रसार और जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है। विचारशीलता और नवाचार को प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण है, ताकि समाज में वैचारिक शून्यता को समाप्त किया जा सके।
2. **सामाजिक संवाद और सांस्कृतिक पुनर्जागरण**: वैचारिक खालीपन को दूर करने के लिए समाज में संवाद और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता है। पारंपरिक और आधुनिक विचारधाराओं के बीच संतुलन बनाना और सांस्कृतिक मूल्यों को सहेजते हुए उन्हें आधुनिक परिप्रेक्ष्य में लागू करना समाज के लिए हितकारी हो सकता है।
3. **विचारधाराओं का पुनर्निर्माण**: नई और समावेशी विचारधाराओं का निर्माण समय की मांग है। इस प्रक्रिया में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय को ध्यान में रखते हुए विचारधाराओं का निर्माण किया जा सकता है, ताकि समाज में वैचारिक खालीपन को रोका जा सके।

वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था ने जहां आर्थिक प्रगति और सामाजिक विकास को तेज किया है, वहीं इसने कई चुनौतियां भी उत्पन्न की हैं, जिनमें वैचारिक खालीपन प्रमुख है। इस समस्या से निपटने के लिए शिक्षा, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और नवाचार को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। वैचारिक समृद्धि और समाज की समग्र प्रगति तभी संभव हो सकेगी, जब आर्थिक और वैचारिक दोनों दृष्टिकोणों से संतुलित विकास किया जाएगा।

2.6वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन के संबंध

वैश्वीकरण ने दुनिया के विभिन्न हिस्सों को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से जोड़ दिया है। इस प्रक्रिया में बाजार व्यवस्था ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार, निवेश, और वित्तीय संस्थाओं के बीच गहरे संबंध बनाए हैं। हालाँकि, इसके परिणामस्वरूप समाज में तेजी से बदलाव हुए हैं, जिन्होंने वैचारिक खालीपन को भी बढ़ावा दिया है।

1. वैश्वीकरण के प्रभाव

वैश्वीकरण ने व्यापार और आर्थिक गतिविधियों में बड़े पैमाने पर प्रगति की है। बाजार का विस्तार हुआ है, उत्पाद और सेवाएं अधिक सुलभ हो गई हैं, और देशों के बीच सहयोग और प्रतिस्पर्धा का माहौल विकसित हुआ है।हालांकि, इसके साथ-साथ सामाजिक और वैचारिक स्तर पर अस्थिरता और अनिश्चितता भी बढ़ी है। बाजार की इस तीव्र गति और तकनीकी उन्नति ने लोगों के जीवन में तेजी से बदलाव किए, जिससे व्यक्तियों और समाज को अपनी पहचान और अस्तित्व के लिए नई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

2. वैचारिक खालीपन का उदय

तेजी से बदलते वैश्विक माहौल में, लोग कभी-कभी अपनी सांस्कृतिक जड़ों और मूल्यों से दूर महसूस करने लगते हैं। इस वजह से सामाजिक और वैचारिक खालीपन की स्थिति उत्पन्न होती है। पारंपरिक विचारधाराएं और सांस्कृतिक मान्यताएं वैश्वीकरण के आर्थिक दबावों के सामने कमजोर पड़ने लगती हैं।इस वैचारिक असंतुलन के कारण व्यक्ति अपने आस-पास के समाज और उसमें हो रहे बदलावों के प्रति खुद को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। बाजार की प्रतिस्पर्धात्मकता और उपभोक्तावाद ने सामाजिक मूल्यों को कमजोर कर दिया है, जिससे अकेलापन, असंतोष, और निराशा की भावना बढ़ी है।

3. समाज में बदलाव और संघर्ष

वैश्वीकरण के चलते स्थानीय समाजों और सांस्कृतिक परंपराओं को भी नए वैश्विक विचारों और प्रभावों के साथ तालमेल बिठाना पड़ा है। इस संघर्ष ने वैचारिक स्तर पर तनाव पैदा किया है।उदाहरण के तौर पर, स्थानीय व्यवसायों और पारंपरिक उद्योगों को अंतरराष्ट्रीय बाजार प्रतिस्पर्धा में टिके रहना कठिन हो गया है। इसी प्रकार, लोगों को नए वैश्विक मानकों और अपेक्षाओं के अनुसार अपने जीवन और सोच को ढालने की जरूरत पड़ रही है, जिससे वे अक्सर खुद को असमंजस में पाते हैं।

4. समाधान और सुधार की आवश्यकता

वैश्वीकरण के चलते उत्पन्न हुए वैचारिक खालीपन को भरने के लिए समाज में संवाद और समर्थन तंत्र की आवश्यकता है। समाज को संगठित तरीके से इस समस्या पर विचार करना होगा, ताकि लोग वैश्विक बदलावों के साथ तालमेल बिठा सकें और अपनी अस्मिता को सुरक्षित महसूस कर सकें।सामाजिक और राजनैतिक प्रणालियों में सुधार, शिक्षा का प्रचार, और सांस्कृतिक मूल्यों को संजोने के प्रयास इस दिशा में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। साथ ही, मानवीय संवाद को प्रोत्साहित करना और सामाजिक सहयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है ताकि एक स्थिर और समृद्ध समाज का निर्माण हो सके।

2.5 सारांश

वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था और वैचारिक खालीपन के बीच एक गहरा संबंध है। आर्थिक विकास और सामाजिक बदलावों के चलते, समाज में वैचारिक अस्थिरता बढ़ी है। इस समस्या का समाधान संवाद, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, और सामाजिक समर्थन के माध्यम से किया जा सकता है। एक स्थिर और संतुलित समाज के निर्माण के लिए, वैश्वीकरण के प्रभावों को समझकर सकारात्मक सुधार करना आवश्यक है।

खंड 04 - भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान समस्याएँ

इकाई - 03 समावेशी विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 समावेशी विकास: भारतीय संदर्भ में
3.3 समावेशी विकास का अर्थ
3.4 समावेशी विकास के लिए सरकार द्वारा की गई पहल
3.5 समावेशी विकास का मापन:
3.6 समावेशी विकास की आवश्यकता:
3.7 समावेशी विकास के समक्ष चुनौतियाँ:
3.8 आगे की राह
3.9 सारांश
3.10 उपयोगी शब्दावली:
3.11 उपयोगी / सहायकग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे:

- समावेशी विकास को परिभाषित करना और समावेशी विकास के महत्व को समझाना;
- समावेशन के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं और दृष्टिकोणों की व्याख्या करना;
- समावेशी विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करना; और
- समावेशी विकास नीति उपायों पर चर्चा करना।

3.1 प्रस्तावना

आज यह बात समझ में आ रही है कि हर व्यक्ति, खास तौर पर गरीब और वंचित वर्ग, जो आबादी का बड़ा हिस्सा हैं, के सशक्तिकरण और भागीदारी के बिना विकास संभव नहीं है। समानता आधारित विकास लाने में बाजार की ताकतों की विफलता का अनुभव कई देशों द्वारा पहले ही किया जा रहा है। दुनिया ने आम लोगों की कीमत पर कुछ लोगों द्वारा दिखाए गए वैभव और प्रगति के बावजूद असमानता और असमानता देखी है। हाल ही में विकास की सोच जो अब समावेशिता पर आधारित है, एक समग्र दृष्टिकोण को ध्यान में रखती है, जिसे समावेशी विकास कहा जाता है।

3.2 समावेशी विकास: भारतीय संदर्भ में

भारतीय संदर्भ में समावेशी विकास की अवधारणा कोई नई बात नहीं है। प्राचीन धर्मग्रंथों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि लोगों को साथ लेकर चलने की भावना सदियों से भारतीय

संस्कृति का हिस्सा रही है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' में भी यही संदेश दिया गया है कि सभी लोग सुखी और समृद्ध हों। 1990 के दशक में उदारीकरण के बाद यह अवधारणा एक नए रूप में उभरी, क्योंकि वैश्वीकरण के दौर में अर्थव्यवस्थाएँ एक-दूसरे से जुड़ने लगीं। इसने विकास की प्रक्रिया को सीमाओं से परे, वैश्विक संदर्भ में स्थान दिलाने में मदद की। समावेशी विकास अब केवल राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी महत्वपूर्ण हो गया है।

3.3समावेशी विकास का अर्थ

समावेशी विकास की अवधारणा को समझने के लिए इसे विभिन्न संदर्भों में देखा जा सकता है:

1. **रोजगार और गरीबी उन्मूलन**: समावेशी विकास का सबसे प्रमुख अर्थ यह है कि यह एक ऐसा विकास हो जो रोजगार के नए अवसर पैदा करे और गरीबी को कम करने में सहायक हो। आर्थिक विकास का लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुँचना चाहिए, विशेषकर गरीब और पिछड़े वर्गों तक। यह रोजगार की गुणवत्ता को बढ़ावा देता है और लोगों को आत्मनिर्भर बनने के लिए सक्षम बनाता है।
2. **अवसरों की समानता**: समावेशी विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है अवसर की समानता प्रदान करना। इसका मतलब है कि लोगों को शिक्षा और कौशल विकास के अवसर दिए जाएं ताकि वे अपने जीवन को बेहतर बना सकें। यह विकास केवल आर्थिक नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति भी इससे जुड़ी होती है। जब समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिलते हैं, तभी समावेशी विकास संभव होता है।
3. **समान पहुंच और समृद्धि**: दूसरे शब्दों में, समावेशी विकास वह है जो केवल नए आर्थिक अवसर पैदा करने तक सीमित नहीं होता, बल्कि समाज के सभी वर्गों के लिए इन अवसरों तक समान पहुँच सुनिश्चित करता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि कोई भी व्यक्ति या वर्ग विकास की प्रक्रिया से बाहर न रह जाए, और सभी को इसका लाभ मिल सके।
4. **सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि और असमानता में कमी**: वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से, समावेशी विकास उस स्थिति को दर्शाता है जहां सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की उच्च संवृद्धि दर के साथ प्रति व्यक्ति आय की भी उच्च संवृद्धि दर परिलक्षित होती है। इसके साथ-साथ आय और धन के वितरण में असमानता को कम किया जाता है, ताकि विकास का लाभ समाज के हर व्यक्ति तक पहुँचे और आर्थिक विषमता घटे।
5. **बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता**: समावेशी विकास का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि समाज के सभी वर्गों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं, जैसे आवास, भोजन, पेयजल, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं। साथ ही, आजीविका के साधनों को उत्पन्न कर लोगों को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान किया जाए। इस सबके साथ

पर्यावरण संरक्षण का भी ध्यान रखा जाना चाहिए, क्योंकि पर्यावरण की कीमत पर किया गया विकास टिकाऊ और समावेशी नहीं कहा जा सकता।

3.4समावेशी विकास के लिए सरकार द्वारा की गई पहल

भारत सरकार ने समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ और नीतियाँ लागू की हैं:

1. **11वीं पंचवर्षीय योजना**: समावेशी विकास की अवधारणा को सर्वप्रथम 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) में प्रस्तुत किया गया था। इस योजना में समाज के सभी वर्गों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने और अवसरों की समानता प्रदान करने की बात कही गई। यह योजना इस बात पर केंद्रित थी कि विकास का लाभ केवल कुछ चुनिंदा वर्गों तक सीमित न रहे, बल्कि पूरे समाज को इसका लाभ मिले।
2. **12वीं पंचवर्षीय योजना**: 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) पूरी तरह से समावेशी विकास पर केंद्रित थी। इस योजना की थीम थी 'तीव्र, समावेशी एवं सतत विकास।' इसमें गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, शिक्षा के प्रसार और आजीविका के अवसर प्रदान करने पर विशेष ज़ोर दिया गया, ताकि 8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की जा सके।
3. **सरकारी योजनाएँ**: सरकार ने समावेशी विकास की स्थिति प्राप्त करने के लिए कई योजनाओं की शुरुआत की। इनमें दीनदयाल अंत्योदय योजना, समेकित बाल विकास कार्यक्रम, मिड-डे मील, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), और सर्व शिक्षा अभियान जैसी योजनाएँ शामिल हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य समाज के पिछड़े और वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाना और उनके जीवन की गुणवत्ता को सुधारना है।
4. **वित्तीय समावेशन**: सरकार ने वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए भी कई कदम उठाए हैं। इनमें मोबाइल बैंकिंग, प्रधानमंत्री जनधन योजना, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, वरिष्ठ पेंशन बीमा जैसी योजनाएँ शामिल हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य यह है कि समाज के सभी वर्गों को बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं का लाभ मिल सके, जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकें।
5. **महिलाओं के लिए योजनाएँ**: महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए भी सरकार ने कई महत्वपूर्ण योजनाएँ चलाई हैं, जैसे स्टार्ट-अप इंडिया, सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर वीमेन (STEP)। इसके अलावा, महिला उद्यमिता मंच और प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना जैसे प्रयासों के तहत महिलाओं को वित्तीय समावेशन के दायरे में लाया गया है।
6. **कृषि क्षेत्र में सुधार**: किसानों और कृषि क्षेत्र के लिए वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए भी सरकार ने कई योजनाएँ लागू की हैं, जैसे मृदा स्वास्थ्य कार्ड, नीम कोटेड यूरिया, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, और राष्ट्रीय

खाद्य सुरक्षा मिशन। इन योजनाओं का उद्देश्य किसानों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना और कृषि क्षेत्र में समावेशी विकास को बढ़ावा देना है।

7. **दिव्यांगजन के लिए प्रयास**: दिव्यांगजनों को समावेशी विकास में शामिल करने के लिए भी सरकार ने कई कदम उठाए हैं। इसमें नि:शक्तता अधिनियम 1995, कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999, सिपडा (SIPDA), सुगम्य भारत अभियान, स्वावलंबन योजना, और दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2017 जैसे महत्वपूर्ण कदम शामिल हैं।

समावेशी विकास का लक्ष्य है कि समाज के हर व्यक्ति को विकास प्रक्रिया में शामिल किया जाए, ताकि विकास का लाभ हर वर्ग तक पहुँच सके। इससे न केवल सामाजिक और आर्थिक विषमता को कम किया जा सकता है, बल्कि एक मजबूत और टिकाऊ विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया जा सकता है।

3.5**समावेशी विकास का मापन:**

समावेशी विकास को मापने के लिए सबसे उपयुक्त तरीका यह है कि राष्ट्र की प्रगति को उसके सबसे गरीब हिस्से की प्रगति के आधार पर आंका जाए। इसका मतलब है कि समाज के सबसे निचले 20 प्रतिशत हिस्से की प्रगति और उनकी प्रति व्यक्ति आय को मापा जाए। यदि इस वर्ग की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर्ज होती है, तो इसे स्वस्थ समावेशी विकास का सूचक माना जाएगा। समावेशी विकास की अवधारणा इस पर निर्भर करती है कि यदि उच्च विकास दर को हासिल करना है, तो समाज के सबसे कमजोर वर्ग को भी विकास की मुख्यधारा में शामिल करना होगा।

3.6समावेशी विकास की आवश्यकता:

समावेशी विकास केवल आर्थिक विकास नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक और नैतिक अनिवार्यता भी है। इसके अभाव में कोई भी देश वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता। निम्नलिखित संदर्भों में समावेशी विकास की महत्ता को समझा जा सकता है:

1. **धारणीय विकास के लिए आवश्यक**: समावेशी विकास धारणीय विकास के लिए (सतत) आवश्यक है। यदि विकास धारणीय नहीं होगा, तो अर्थव्यवस्था में अस्थिरता और गिरावट की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिससे समाज और देश के विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
2. **आय वितरण में संतुलन**: समावेशी विकास न होने से आय वितरण में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होगी, जिसके परिणामस्वरूप धन का संकेन्द्रण कुछ ही लोगों के पास होगा। इससे समाज में आर्थिक विषमता बढ़ेगी और मांग में कमी आएगी, जिसका सीधा प्रभाव सकल घरेलू उत्पाद)GDP) की वृद्धि दर पर पड़ेगा।
3. **विषमता में वृद्धि**: समावेशी विकास न होने के कारण समाज के विभिन्न हिस्सों में विषमता बढ़ती है। इससे वंचित वर्ग विकास की मुख्यधारा से कटे रहते हैं और उनके जीवन स्तर में कोई खास सुधार नहीं हो पाता।

4. **असंतोष और विघटनकारी प्रवृत्तियाँ**: समावेशी विकास के अभाव में देश में असंतोष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं, जो देश की भौगोलिक और सामाजिक एकता के लिए खतरा हो सकती हैं।

3.7समावेशी विकास के समक्ष चुनौतियाँ:

1. **गाँवों में बुनियादी सुविधाओं की कमी**: ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण लोग शहरों की तरफ पलायन करने के लिए मजबूर होते हैं। इसका सीधा असर शहरी क्षेत्रों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ाने के रूप में दिखाई देता है, जिससे शहरों में संसाधनों की कमी हो जाती है और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आती है।
2. **कृषि क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव**: ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों के शहरों की ओर पलायन के कारण कृषि क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे कृषि उत्पादन क्षमता में गिरावट होती है, जो देश की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक स्थिति के लिए चिंता का विषय बनता है।
3. **भ्रष्टाचार**: भ्रष्टाचार भी देश की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। यह समावेशी विकास की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है, क्योंकि सरकारी योजनाओं और संसाधनों का लाभ उन तक सही तरीके से नहीं पहुँच पाता जिनके लिए वे योजनाएँ बनाई जाती हैं।
4. **ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी रोजगार की कमी**: ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी स्थायी और दीर्घकालीन रोजगार साधनों की कमी है। मनरेगा जैसी योजनाओं का क्रियान्वयन ग्रामीण क्षेत्रों में किया जा रहा है, लेकिन ये रोजगार के स्थायी साधनों में शामिल नहीं किए जा सकते। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास और स्थायी रोजगार के साधन उत्पन्न करने की आवश्यकता है, ताकि पलायन की समस्या को कम किया जा सके और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सके।

समावेशी विकास को हासिल करने के लिए इन चुनौतियों का समाधान ढूंढ़ना अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब समाज के हर वर्ग को विकास की प्रक्रिया में समान भागीदारी मिलेगी, तभी एक सशक्त और समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना साकार हो सकेगी।

3.8आगे की राह:

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2030 तक गरीबी के सभी रूपों बेरोज़गारी), निम्न आय, गरीबी, आदि) को समाप्त करने का लक्ष्य सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल (SDG) के लक्ष्य-1 में निर्धारित किया गया है। भारत जैसे देश में जहाँ कृषि क्षेत्र देश के कुल श्रमबल के एक बड़े हिस्से को रोजगार उपलब्ध कराता है, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृषि क्षेत्र पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। सरकार ने भी वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य रखा था, लेकिन इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादकता अभी भी काफी कम है, जिससे यह गरीबी से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र बना हुआ है। यदि भारत में तीव्र समावेशी विकास के

लक्ष्य को हासिल करना है, तो कृषि उत्पादकता को बढ़ाने और इस क्षेत्र को सशक्त बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाने की ज़रूरत है। हालाँकि, भारत की 1.21 बिलियन की विशाल जनसंख्या को देखते हुए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों और सभी क्षेत्रों तक कैसे पहुँचाए जाएँ। इस संदर्भ में तकनीक के उपयुक्त उपयोग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम, जो हाल ही में शुरू किया गया है, इस चुनौती का सामना करने के लिए एक महत्वपूर्ण पहल है।

कृषि क्षेत्र पर विशेष ध्यान: भारत में समावेशी विकास को गति देने के लिए कृषि क्षेत्र में सुधार और निवेश की सख्त आवश्यकता है। कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किसानों को नई तकनीकें, संसाधन और बेहतर बाजार तक पहुँच उपलब्ध करानी होगी ताकि वे अपनी आय को बढ़ा सकें।

तकनीकी विकास और समावेशी विकास: तकनीक का उचित उपयोग समावेशी विकास की दिशा में एक प्रमुख हथियार हो सकता है। डिजिटल तकनीक से न केवल ग्रामीण क्षेत्रों को शहरों से जोड़ा जा सकता है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, और वित्तीय सेवाओं तक लोगों की पहुँच को भी बढ़ाया जा सकता है। डिजिटल इंडिया जैसी योजनाएँ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं और समावेशी विकास को आगे बढ़ाने में सहायक साबित हो सकती हैं। भारत को समावेशी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कृषि, तकनीकी विकास, और सामाजिक समानता के क्षेत्रों में लगातार सुधार करते रहना होगा, तभी समाज के हर वर्ग तक विकास के लाभ को पहुँचाया जा सकेगा।

3.9 सारांश:

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान समस्याओं और उनके समाधान की दिशा में प्रयासों को समझने के लिए यह खंड तैयार किया गया है। इसमें विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है, ताकि अर्थव्यवस्था की समस्याओं का गहराई से विश्लेषण किया जा सके और उनके संभावित समाधानों की खोज की जा सके। इस खंड में प्रमुख मुद्दों जैसे कालाधन, समानता की कमी, भ्रष्टाचार, वैश्वीकरण का प्रभाव, और समावेशी विकास पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। इन समस्याओं का विश्लेषण करके, हम समाधान की दिशा में सही मार्ग तलाशने की कोशिश कर रहे हैं जो आर्थिक सुधार और विकास को गति प्रदान कर सकें। इस प्रकार, यह खंड हमें भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याओं को समझने और उन्हें सुलझाने के लिए सही नीतियों और कार्यवाई की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करता है।

3.10शब्दावली

1. बैंकिंग प्रणाली की अस्थिरता (Banking System Instability) - बैंकों के संचालन में आने वाली कठिनाइयाँ, जैसे एनपीए (Non-Performing Assets) का बढ़ना।

2. धन का संकेंद्रण (Concentration of Wealth) - समाज के कुछ लोगों के पास संपत्ति और संसाधनों का जमाव।
3. वैश्वीकरण (Globalization) - वैश्विक स्तर पर आर्थिक गतिविधियों और बाजारों का एकीकरण।
4. अधोसंरचना विकास (Infrastructure Development) - देश की बुनियादी सुविधाओं, जैसे सड़कों, बिजली और जल आपूर्ति का विकास।

3.11कुछ उपयोगी पुस्तके

1. फेदरस्टोन, एम. (एड.). (1990). वैश्विक संस्कृति. लंदन: सेज.
2. फुकुयामा, एफ. (1992). इतिहास का अंत और अंतिम मनुष्य. लंदन: हैमिश हैमिल्टन.
3. गिडेंस, ए. (1990). आधुनिकता के परिणाम. कैम्ब्रिज: राजनीति.
4. गिलपिन, आर. (1987). अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था. प्रिंसटन एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. हार्वे, डी. (1989). उत्तर आधुनिकता की स्थिति. ऑक्सफोर्ड: ब्लैकवेल.
6. हर्स्ट, पी. और जी. थॉम्पसन. (1996). वैश्वीकरण पर सवाल. कैम्ब्रिज: राजनीति.

- बोध प्रश्न

1. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं?
2. वैश्वीकरण की विशेषताओं पर चर्चा करें
3. वैश्वीकरण के विभिन्न आयामों की व्याख्या करें।
4. वैश्विक राजनीति से आप क्या समझते हैं?

खंड 05 - जनसंख्या एवं संपोषित विकास

इकाई - 01 भारत की जनसंख्या : वृद्धि दर, संरचना, जनसंख्या लाभांश

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारत की जनसंख्या;वृद्धि दर, संरचना, जनसंख्या लाभांश

1.3भारत की जनसंख्या वृद्धि की पृष्ठभूमि

1.4जनसांख्यिकीय संक्रमण: एक विस्तृत विश्लेषण

1.5 जनसंख्यामें गिरावट की प्रवृत्तियों के कारण

1.6जनसंख्या वृद्धि का महत्व :

1.7जनसांख्यिकीय लाभांश से संबंधित चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

1.8आगे की राह:

1.9भारतीय जनसंख्या की संरचना

1.10सारांश

1.11 शब्दावली

1.12कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्देश्य

यह परियोजना खंड मुख्य रूप से जनसंख्या और संपोषित विकास के प्रमुख उद्देश्यों को समझने और विस्तार से जानने के लिए तैयार किया गया है। इसका उद्देश्य यह संकेत देना है कि जनसंख्या वृद्धि, उसकी संरचना और संघटन से उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याएँ कैसे हमारे समाज और पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। जनसंख्या की वृद्धि से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना आवश्यक है, ताकि हम इस चुनौती का प्रबंधन कर सकें और साथ ही इसके द्वारा उत्पन्न अवसरों का लाभ उठा सकें। इस खंड के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है भारतीय जनसंख्या की वृद्धि दर, उसकी संरचना और जनसंख्या लाभांश पर विस्तृत चर्चा करना। भारत की जनसंख्या में हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन करना आवश्यक है, ताकि हम उसकी वृद्धि दर और संरचना के विभिन्न पहलुओं को गहराई से समझ सकें। जनसंख्या लाभांश, जिसमें श्रमिक आबादी की उच्चतम संख्या होती है, देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। इसके माध्यम से हम समझ सकते हैं कि जनसंख्या वृद्धि किस प्रकार से समाज और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है।

1.1 प्रस्तावना

जनसंख्या की वृद्धि और विकास: जनसंख्या की वृद्धि समाज और पर्यावरण पर सीधा प्रभाव डालती है। इस प्रस्तावना का मुख्य बिंदु यह है कि हमें जनसंख्या वृद्धि के संबंध में जागरूकता फैलानी चाहिए और साथ ही संगठित और योजनाबद्ध उपायों की ओर कदम बढ़ाना चाहिए, जिससे इस वृद्धि को सही दिशा में नियंत्रित किया जा सके।

1.2भारत की जनसंख्यावृद्धि दर :, संरचना, और जनसंख्या लाभांश

भारत ने अपने आरंभिक विकास के उन कठिन दिनों से एक लंबा सफर तय किया है, जब अकाल, दुर्घटनाओं, बीमारी, संक्रमण, और युद्ध जैसी स्थितियों के कारण उच्च मृत्यु दर एक सामान्य घटना थी। उस समय मानव अस्तित्व के लिए अपेक्षाकृत उच्च प्रजनन दर आवश्यक मानी जाती थी। समय के साथ, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, चिकित्सा विज्ञान में प्रगति, और बेहतर जीवन परिस्थितियों ने बीमारियों और प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की क्षमता में वृद्धि की। इसके परिणामस्वरूप, भारत में मृत्यु दर में भारी गिरावट देखी गई और जीवन प्रत्याशा)Life Expectancy) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। संयुक्त राष्ट्र की *विश्व जनसंख्या स्थिति रिपोर्ट 2023* के अनुसार, वर्ष 2023 के मध्य तक भारत विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। इस समय तक, भारत की जनसंख्या चीन की 1.425 बिलियन आबादी से लगभग 3 मिलियन अधिक होगी। यह जनसंख्या वृद्धि भारत की अर्थव्यवस्था, समाज, और पर्यावरण के लिए व्यापक प्रभाव डालने वाली है। जबकि अतीत में इस वृद्धि को एक बोझ या आर्थिक चुनौती के रूप में देखा जाता था, आज इसे जनसांख्यिकीय लाभांश)Demographic Dividend) के रूप में समझा जाता है। इसका अर्थ यह है कि युवा और कार्यशील जनसंख्या के बड़े हिस्से के कारण भारत को अपनी आर्थिक और सामाजिक संभावनाओं को मजबूत करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। हालांकि, भारत को इस जनसांख्यिकीय लाभांश का पूर्ण लाभ उठाने के लिए कई आवश्यक कदम उठाने होंगे। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि देश को अपनी विशाल युवा जनसंख्या के लिए पर्याप्त आर्थिक अवसर सृजित करने होंगे। इसका अर्थ है कि रोजगार के नए साधन और कौशल विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाए, ताकि युवा जनसंख्या को रोजगार के लिए तैयार किया जा सके। इसके अलावा, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में निवेश बढ़ाने की भी आवश्यकता है, ताकि भारत अपनी जनसांख्यिकीय संरचना का अधिकतम लाभ उठा सके और आने वाले वर्षों में विकास की नई ऊंचाइयों को छू सके। अंततः, यह स्पष्ट है कि जनसंख्या का यह बदलाव केवल संख्यात्मक नहीं है, बल्कि इसके दीर्घकालिक सामाजिक और आर्थिक निहितार्थ भी हैं। भारत को अपनी जनसंख्या वृद्धि का प्रबंधन करने के लिए नीतिगत स्तर पर प्रभावी कदम उठाने होंगे ताकि जनसांख्यिकीय लाभांश को वास्तविक लाभ में बदला जा सके।

1.3भारत की जनसंख्या वृद्धि की पृष्ठभूमि

भारत की जनसंख्या वृद्धि ने अतीत में कई चिंताओं को जन्म दिया है। प्रारंभिक समाजवादी युग में, बढ़ती जनसंख्या को गरीबी के लिए दोषी ठहराया गया और जनसंख्या नियंत्रण के लिए विभिन्न नीतियां लागू की गईं। यह दृष्टिकोण जनसंख्यावृद्धि को एक चुनौती के रूप में मानता था, जिससे निपटने के लिए सख्त उपाय किए गए थे। वर्ष 1990 के दशक में वैश्वीकरण)Globalization) ने भारत को एक विशाल और अप्रयुक्त बाजार के रूप में देखा। इस बदलाव ने जनसंख्या वृद्धि के दृष्टिकोण को बदल दिया और इसे एक संभावित लाभ के रूप में पेश किया। इसके परिणामस्वरूप, भारत ने अपने जनसंख्यिकीय लाभांश)Demographic Dividend) का उपयोग करने के लिए कई मूल्यवान आर्थिक अवसर प्राप्त किए हैं। वर्तमान में, भारत की जनसंख्या विश्व की 17.5% आबादी का हिस्सा है, जो 1947 में स्वतंत्रता के समय की जनसंख्या)34 करोड़की लगभग चार गुनी है। (जनसंख्या वृद्धि की ऐतिहासिक दृष्टि से, वर्ष 1891 से 1921 के बीच भारत में जनसंख्या वृद्धि दर बेहद कम थी। इस अवधि में जनसंख्या में केवल 1.26 करोड़ की वृद्धि हुई, जो कि उन वर्षों में अकाल, प्लेग, मलेरिया जैसी आपदाओं और महामारियों के कारण था, जिन्होंने मानव जीवन को भारी नुकसान पहुँचाया। वर्ष 1921 के बाद, भारत में जनसंख्या वृद्धि तेजी से बढ़ी। इस समय को 'वृहत विभाजन' (Great Divide) कहा जाता है, जो भारत के जनसांख्यिकीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इसके बाद, वर्ष 1951 से 1981 तक की अवधि को 'जनसंख्या विस्फोट' (Population Explosion) के रूप में जाना जाता है, जब जनसंख्या वृद्धि अत्यधिक तेजी से बढ़ी। वर्ष 1981 के बाद से, भारत में जनसंख्या वृद्धि की गति में कुछ कमी आई है, लेकिन फिर भी वृद्धि दर ऊँची बनी रही। विशेष रूप से, वर्ष 1981-91 के दौरान, जनसंख्या वृद्धि दर 24.66 प्रतिशत के मुकाबले 23.87 प्रतिशत दर्ज की गई, जो कि एक स्वस्थ और स्थिर संकेत था और भारत के जनसांख्यिकीय इतिहास में एक नए युग की शुरुआत का संकेत था। हाल के वर्षों में, भारत ने चीन को पीछे छोड़ दिया है, लेकिन जनसंख्या वृद्धि की दर अब भी धीरे) धीरे कम हो रही है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-National Family Health Survey) के अनुसार, देश में पहली बार कुल प्रजनन दर 2.1 के प्रतिस्थापन स्तर)Replacement Level) से नीचे आ गई है। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार, भारत की जनसंख्या वर्ष 2050 तक 1.67 बिलियन तक पहुँच सकती है और वर्ष 2100 तक 1.53 बिलियन पर स्थिर हो सकती है।

1.4जनसांख्यिकीय संक्रमणएक विस्तृत विश्लेषण :: जनसांख्यिकीय संक्रमण)Demographic Transition) वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक समाज उच्च जन्म और मृत्यु दर से निम्न जन्म और मृत्यु दर की स्थिति की ओर विकसित होता है। यह संक्रमण आमतौर पर चार प्रमुख चरणों में विभाजित किया जाता है, प्रत्येक चरण में जनसंख्या वृद्धि की गति और संरचना में महत्वपूर्ण बदलाव होते हैं। **प्रथम चरण** में, समाज उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु दर का सामना करता है। इस चरण में, जन्म दर उच्च होती है क्योंकि समाज में परिवार

नियोजन की सुविधाएं और शिक्षा की कमी होती है, और मृत्यु दर भी उच्च होती है क्योंकि स्वास्थ्य देखभाल की सेवाएं सीमित होती हैं और संक्रामक बीमारियों का खतरा रहता है। यह स्थिति आमतौर पर बहुत कम विकसित देशों में देखी जाती है, जैसे दक्षिण सूडान, चाड और माली। इन देशों की जनसंख्या स्थिर रहती है क्योंकि उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु दर एक दूसरे को संतुलित करते हैं। **द्वितीय चरण** में, समाज में सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सुधार होता है, जैसे कि बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, टीकाकरण कार्यक्रम और स्वच्छ पानी की उपलब्धता। इसके परिणामस्वरूप मृत्यु दर में कमी आती है, जबकि जन्म दर अभी भी उच्च रहती है। इस चरण में जनसंख्या वृद्धि की दर तेज होती है क्योंकि मृत्यु दर में कमी से जीवन प्रत्याशा बढ़ जाती है, लेकिन परिवार नियोजन की सेवाओं की कमी के कारण जन्म दर में कमी नहीं आती है। उदाहरण के लिए, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बोलीविया और उपजैसे) सहारा अफ्रीका- इस चरण में आते हैं। (नाइजर और युगांडा **तृतीय चरण** में, समाज में जन्म दर भी गिरने लगती है, हालांकि मृत्यु दर पहले से ही कम हो चुकी होती है। इस चरण में, जनसंख्या वृद्धि की गति बनी रहती है लेकिन धीमी हो जाती है, क्योंकि लोगों की बढ़ती संख्या के कारण जनसंख्या में वृद्धि होती है, जबकि जन्म दर में कमी आती है। इस चरण में, अधिकतर विकासशील देशों का अनुभव होता है जैसे कोलंबिया, भारत, जमैका, बोत्सवाना, मैक्सिको, केन्या, दक्षिण अफ्रीका और संयुक्त अरब अमीरात। यहाँ पर, जन्म दर में कमी के साथसाथ - जीवन स्तर और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार होता है। **चतुर्थ चरण** में, समाज में स्थिर जनसंख्या देखी जाती है, जहां जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही निम्न स्तर पर पहुंच जाते हैं। इस चरण में सामाजिक और आर्थिक विकास उच्च स्तर पर होता है, और जीवन की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। जन्म दर और मृत्यु दर के कम होने के कारण जनसंख्या वृद्धि स्थिर रहती है। उदाहरण के लिए, अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, चीन, ब्राजील, अधिकांश यूरोप, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया और अमेरिका इस चरण में आते हैं। इन देशों में उच्च शिक्षा, आर्थिक विकास, और सामाजिक सुविधाओं के साथसाथ अच्छी स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हैं-, जो जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने में मदद करती हैं। भारत वर्तमान में तृतीय चरण में है, जहाँ जनसंख्या वृद्धि की दर उच्च है लेकिन जन्म दर और मृत्यु दर दोनों में कमी आई है। हालांकि, भारत के कुछ राज्य और केंद्रशासित प्रदेश चतुर्थ चरण की ओर बढ़ चुके हैं, जहाँ जनसंख्या वृद्धि की दर धीमी हो रही है और सामाजिक आर्थिक विकास की स्थिति अच्छी-है। जनसांख्यिकीय संक्रमण का यह मॉडल देशों के विकास स्तर और उनकी जनसंख्या संरचना को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो नीति निर्माण और संसाधन प्रबंधन में मदद करता है।

1.5 **जनसंख्यामें गिरावट की प्रवृत्तियों के कारण** भारत में जनसंख्या वृद्धि में गिरावट के कई महत्वपूर्ण कारण हैं जो पिछले दशकों में स्पष्ट हुए हैं। इन कारणों को समझना जनसंख्या प्रबंधन और सामाजिक नीति निर्माण के लिए आवश्यक है।

जनसंख्या वृद्धि में गिरावट: अखिल भारतीय स्तर पर, जनसंख्या की प्रतिशत दशकीय वृद्धि दर में गिरावट देखी गई है। विशेष रूप से, वर्ष 1971-81 के दौरान जनसंख्या वृद्धि की दर में उल्लेखनीय कमी आई है। EAG राज्यों)Empowered Action Group states), जैसे उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान और उड़ीसा में भी पहली बार वर्ष 2011 की जनगणना के दौरान गिरावट देखी गई है। इन राज्यों में जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी का संकेत सामाजिक और आर्थिक बदलावों के प्रभाव को दर्शाता है।

भारत के कुल प्रजनन दर)TFR) में गिरावट: भारत में कुल प्रजनन दर)Total Fertility Rate - TFR) में भी महत्वपूर्ण गिरावट आई है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण)NFHS) के चौथे और पांचवें संस्करण के अनुसार, TFR 2.2 से घटकर 2.0 हो गया है। इसका मतलब है कि वर्तमान में भारत के अधिकांश राज्य प्रजनन के प्रतिस्थापन स्तर)2.1) से नीचे आ चुके हैं। हालांकि, बिहार, मेघालय, उत्तर प्रदेश, झारखंड और मणिपुर जैसे कुछ राज्यों में TFR अब भी 2.1 के ऊपर है। प्रजनन का प्रतिस्थापन स्तर उस औसत संख्या को दर्शाता है, जो एक महिला को अपनी पीढ़ी को प्रतिस्थापित करने के लिए जन्म देना पड़ता है, बिना किसी पलायन के।

मृत्युदर संकेतकों में सुधार: मृत्युदर संकेतकों में भी सुधार देखा गया है। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा)Life Expectancy at Birth) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष 1947 में 32 वर्ष की जीवन प्रत्याशा अब वर्ष 2019 में 70 वर्ष तक पहुंच गई है। NFHS 5 के अनुसार, शिशु मृत्यु दर 1,000 जीवित जन्मों पर 32 है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में औसतन 36 और शहरी क्षेत्रों में 23 शिशु मृत्यु दर शामिल है। ये आंकड़े जीवन स्तर और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार को दर्शाते हैं।

परिवार नियोजन में वृद्धि: परिवार नियोजन सेवाओं के प्रसार में भी वृद्धि हुई है। NFHS 5 के अनुसार, समग्र गर्भनिरोधक प्रसार दर)Contraceptive Prevalence Rate - CPR) अखिल भारतीय स्तर पर 54% से बढ़कर 67% हो गई है। पंजाब के अपवाद को छोड़कर, लगभग सभी द्वितीय चरण के राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में यह स्थिति देखी गई है। परिवार नियोजन की सेवाओं की बढ़ती उपलब्धता ने जनसंख्या वृद्धि की दर को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जलवायु परिवर्तन और प्रवासन: अतीत में जनसंख्या संबंधित विमर्श में जलवायु संकट और प्रवासन के प्रभाव को अक्सर अनदेखा किया गया। हालांकि, अब जलवायु परिवर्तन और इसके परिणामस्वरूप स्थायी प्रवासन के बढ़ते मामलों को ध्यान में लिया जा रहा है। वर्ष 2011 के बाद से, 1.6 मिलियन से अधिक भारतीयों ने अपनी नागरिकता छोड़ दी है, जिसमें वर्ष 2022 में 225,000 से अधिक लोग शामिल हैं। यह प्रवृत्ति जलवायु परिवर्तन और सामाजिकआर्थिक - कारकों के प्रभाव को दर्शाती है, जो जनसंख्या प्रवासन को प्रभावित कर रहे हैं। इन कारणों को समझना और उनके प्रभावों का विश्लेषण करना जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों को प्रबंधित करने और स्थिर सामाजिकआर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।-

1.6जनसंख्या वृद्धि का महत्व : **बेहतर मानव पूंजी:** जनसंख्या वृद्धि को अक्सर एक बड़ी मानव पूंजी के रूप में देखा जाता है, जो उच्च आर्थिक विकास और बेहतर जीवन स्तर की संभावना को बढ़ाती है। एक विशाल और युवा जनसंख्या को सही तरीके से प्रबंधित करने पर यह संसाधनों के प्रभावी उपयोग और नए अवसरों के सृजन की संभावना को जन्म देती है। इस प्रकार, एक बड़ी आबादी आर्थिक और सामाजिक समृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सकती है। हालांकि, यदि जनसंख्या वृद्धि को उचित रूप से प्रबंधित नहीं किया जाता है, तो इससे सामाजिक तनाव, आंतरिक संघर्ष, और असामाजिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ सकता है। अतः जनसंख्या वृद्धि का सही दिशा में प्रबंधन और नीति निर्माण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बेहतर आर्थिक विकास: जनसंख्या वृद्धि के साथ, यदि कार्यशील आयु वर्ग की संख्या बढ़ती है, तो यह आर्थिक विकास को प्रोत्साहित कर सकती है। उच्च कार्यशील आयु वर्ग की आबादी और निम्न आश्रित आबादी के कारण, आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ती हैं और परिणामस्वरूप आर्थिक विकास में सुधार होता है। एक युवा और सक्रिय जनसंख्या की उपस्थिति व्यापार, उत्पादन, और सेवाओं के क्षेत्रों में वृद्धि को प्रेरित करती है, जिससे समग्र आर्थिक विकास की गति तेज होती है। इसके साथ ही, इस वृद्धि से रोजगार के नए अवसर भी सृजित होते हैं, जो समाज की सामाजिक और आर्थिक भलाई को बढ़ाते हैं।

उच्च कार्यशील आयु जनसंख्या: पिछले सात दशकों में कार्यशील आयु वर्ग की हिस्सेदारी में महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई है। यह हिस्सेदारी 50% से बढ़कर 65% हो गई है, जो दर्शाता है कि अब अधिक लोग कार्यशील आयु में हैं और आर्थिक गतिविधियों में योगदान कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप निर्भरता अनुपात)Dependency Ratio) में कमी आई है, जो बच्चों और बुजुर्गों की संख्या को कार्यशील आयु वर्ग के संदर्भ में दर्शाता है। उच्च कार्यशील आयु जनसंख्या का होना आर्थिक समृद्धि के लिए एक सकारात्मक संकेत है, क्योंकि यह श्रम शक्ति की उपलब्धता को बढ़ाता है और संसाधनों के कुशल प्रबंधन की संभावनाओं को भी बढ़ाता है। अगले 25 वर्षों में, हर पाँच कार्यशील आयु वर्ग के व्यक्तियों में एक व्यक्ति भारत में रह रहा होगा, जो एक मजबूत और गतिशील कार्यबल का संकेत है। इस प्रकार, जनसंख्या वृद्धि का सही तरीके से प्रबंधन न केवल मानव पूंजी और आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है, बल्कि समाज की समृद्धि और सामाजिक स्थिरता को भी सुनिश्चित करता है।

1.7जनसांख्यिकीय लाभांश से संबंधित चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

असममित जनसांख्यिकी: जनसांख्यिकीय लाभांश की प्राप्ति में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक असममित जनसांख्यिकी है। भारत में कार्यशील आयु वर्ग में वृद्धि कुछ सबसे गरीब राज्यों में अधिक केन्द्रित हो सकती है। यह स्थिति तब तक पूरी तरह से लाभकारी नहीं होगी जब तक कि इन क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अवसर सृजित नहीं किए जाते। यदि कार्यशील आयु वर्ग के लोग रोजगार के अवसरों की कमी का सामना करेंगे, तो जनसांख्यिकीय लाभांश का पूरा फायदा उठाना मुश्किल होगा।

कौशल की कमी: भविष्य में उपलब्ध होने वाले अधिकांश रोजगार अवसर अत्यधिक कौशल की मांग करेंगे, जबकि भारतीय कार्यबल में कौशल की कमी एक बड़ी चुनौती है। निम्न मानवीय पूंजी आधार और कौशल की कमी के कारण, भारत इन अवसरों का पूरा लाभ उठाने में सक्षम नहीं हो सकेगा। इस कमी को पूरा करने के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है ताकि कार्यबल को बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जा सके।

निम्न मानव विकास मापदंड: भारत का मानव विकास सूचकांक (Human Development Index) 2023 में 191 देशों के बीच 132वें स्थान पर है, जो चिंताजनक स्थिति है। इस परिदृश्य में, भारतीय कार्यबल को दक्ष और कुशल बनाने के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा के मापदंडों में व्यापक सुधार की आवश्यकता है। उच्च गुणवत्ता की शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता मानव पूंजी को बेहतर बनाएगी और आर्थिक विकास में योगदान देगी।

अर्थव्यवस्था की अनौपचारिक प्रकृति: भारत में अर्थव्यवस्था की अनौपचारिक प्रकृति भी जनसांख्यिकीय लाभांश के लाभ प्राप्त करने में एक बाधा है। अनौपचारिक क्षेत्र की उच्चता व्यापार और रोजगार के विकास को सीमित कर सकती है। इस स्थिति को ठीक करने के लिए औपचारिक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना और अनौपचारिक क्षेत्र के बेहतर नियमन की आवश्यकता है।

1.8आगे की राह:

आर्थिक अवसरों का सृजन करना: भारत को जनसांख्यिकीय लाभांश से पूरी तरह लाभान्वित होने के लिए अधिकाधिक आर्थिक अवसरों का सृजन करने की आवश्यकता है। इसमें छोटे और मध्यम आकार के व्यवसायों के विकास को प्रोत्साहित करना, कर प्रोत्साहन और वित्तीय सहायता प्रदान करना शामिल है।

निवेश बढ़ाना: निवेश को बढ़ावा देने के लिए कारोबार की सुगमता में सुधार, नौकरशाही बाधाओं को कम करना और अवसंरचना के विस्तार के साथ अधिक विदेशी निवेश को आकर्षित करना आवश्यक है।

डिजिटल परिवर्तन को बढ़ावा देना: नए आर्थिक अवसरों को पहचानने और अधिक कुशल और उत्पादक व्यवसायों के सृजन के लिए डिजिटल परिवर्तन को बढ़ावा देना चाहिए। इसके लिए हाई-स्पीड इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल अवसंरचना में निवेश किया जाना चाहिए।

आर्थिक असमानता को संबोधित करना: सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में निवेश करना और विशेषकर वंचित पृष्ठभूमि के लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक है। इसमें पेंशन, विकलांग लाभ, और बाल सहायता जैसे कार्यक्रम शामिल हो सकते हैं।

आर्थिक अवसर पर केंद्रित होना: आवश्यक अवसंरचना विकास, विदेशी निवेश और नवाचार प्रोत्साहन के माध्यम से आर्थिक अवसरों का सृजन करना आर्थिक विकास को प्रोत्साहित कर सकता है।इन चुनौतियों को संबोधित करके और उपयुक्त नीतियों को अपनाकर, भारत अपने जनसांख्यिकीय लाभांश का पूरा लाभ उठा सकता है और आर्थिक समृद्धि की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति कर सकता है।

1.9भारतीय जनसंख्या की संरचना

भारतीय जनसंख्या की संरचना को समझने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि जनसंख्या की व्यक्तिगत विशेषताओं जैसे कि लिंग, आयु, वैवाहिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय, और घर के मुखिया के साथ रिश्ते के आधार पर वितरण को समझा जाए। जनसंख्याओं को सामान्यतः दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है - ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के आधार पर।

ग्रामीण - शहरी संरचना:

1. **ग्रामीण जनसंख्या:** ग्रामीण जनसंख्या को छोटे आकार के ग्रामीण इलाकों में फैली हुई बस्तियों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। ये बस्तियाँ अक्सर अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर होती हैं और कृषि, पशुपालन, और अन्य पारंपरिक गतिविधियों पर निर्भर करती हैं। भारत में अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या के निवास स्थान छोटे गाँवों और कस्बों में होते हैं, जो सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों के दृष्टिकोण से अलग होते हैं।
2. **शहरी जनसंख्या:** शहरी जनसंख्या बड़े आकार की बस्तियों जैसे कि कस्बों और शहरों में रहती है। शहरी क्षेत्रों में आमतौर पर उच्च घनत्व की जनसंख्या, बेहतर अवसंरचना, और आधुनिक सेवाओं की उपलब्धता होती है। ये क्षेत्र तेजी से औद्योगिककरण, सेवाओं के विकास, और उच्च शिक्षा के केंद्र होते हैं।

जनसंख्यात्मक वितरण: ग्रामीण और शहरी वितरण: आजादी के बाद से, भारतीय जनसंख्या की वृद्धि का मुख्य केंद्र शहरी क्षेत्रों में रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार, शहरीकरण का स्तर 27.81% से बढ़कर 31.16% हो गया है, जबकि ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात 72.19% से घटकर 68.84% हो गया है। यह बदलाव दर्शाता है कि शहरीकरण की प्रक्रिया तेजी से हो रही है और ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि की गति धीमी हो रही है।

शहरीकरण की प्रवृत्तियाँ: शहरीकरण के स्तर में वृद्धि ने शहरी क्षेत्रों में संसाधनों की मांग, अवसंरचना विकास, और सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता में बदलाव लाया है। शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का तेजी से बढ़ना सामाजिक और आर्थिक नीतियों के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण विचार-विमर्श का विषय बन गया है। इस प्रकार, भारतीय जनसंख्या की संरचना में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच का विभाजन देश की सामाजिक और आर्थिक नीतियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच बढ़ती असमानता और शहरीकरण की प्रवृत्तियाँ, भविष्य की योजनाओं और विकासात्मक नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण तत्व हैं।

भाषा-संबंधी संरचना: भारत की भाषाई संरचना अत्यंत विविध और समृद्ध है, जिसमें अनेक भाषाएँ और बोलियाँ शामिल हैं। प्रमुख भारतीय भाषाएँ चार मुख्य भाषा परिवारों में वर्गीकृत की जा सकती हैं, जो आगे उनके उप-परिवारों और शाखाओं में बाँटी जाती हैं।

1. **इंडो-आर्यन परिवार**: यह भाषा परिवार भारत के उत्तरी और मध्य भाग में प्रचलित है और इसमें हिंदी, बंगाली, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, मराठी, और कई अन्य भाषाएँ शामिल

हैं। हिंदी, जो भारत की आधिकारिक भाषा है, इस परिवार की सबसे प्रमुख भाषा है। इस परिवार की भाषाएँ संस्कृत से विकसित हुई हैं और ये उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों में बोली जाती हैं।

2. **द्रविड़ परिवार**: यह भाषा परिवार मुख्यतः दक्षिण भारत में प्रचलित है। इसमें तमिल, तेलुगु, कन्नड़, और मलयालम जैसी प्रमुख भाषाएँ शामिल हैं। द्रविड़ भाषाएँ अपनी विशिष्ट लिपि और भाषा संरचना के लिए प्रसिद्ध हैं और ये दक्षिण भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपराओं का अभिन्न हिस्सा हैं।
3. **तिब्बती-बर्मीस परिवार**: इस भाषा परिवार में बर्मी, तिब्बती और नेपाली जैसी भाषाएँ शामिल हैं। यह परिवार उत्तर-पूर्वी भारत और हिमालयी क्षेत्रों में बोली जाती है। ये भाषाएँ भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती हैं और इनका उपयोग विशेष रूप से इन क्षेत्रों के स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है।
4. **ऑस्ट्रो-आस्ट्रेलेशियन परिवार**: इस भाषा परिवार में मुख्य रूप से मुण्डा भाषाएँ शामिल हैं, जैसे संथाली, हो, और कुरुख। ये भाषाएँ भारत के मध्य और पूर्वी भागों में आदिवासी समुदायों द्वारा बोली जाती हैं और उनकी सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

इन भाषा परिवारों के अंतर्गत विभिन्न उप-परिवार और शाखाएँ होती हैं, जो भारतीय समाज की भाषाई विविधता को और भी स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं। भारत की भाषाई संरचना न केवल एक सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

	भाषा परिवार	**उप-परिवार**	**शाखा/समूह**	**भाषण क्षेत्र**	**प्रतिशत**
1.	**ऑस्ट्रिक (निषाद)**	**ऑस्ट्रो-एशियाटिक**	**मून-खमेर**	मेघालय, निकोबार द्वीपसमूह	1.38%
			मुंडा	पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, भारत के बाहर	
2.	**द्रविड़ियन (द्रविड)**	**साउथ द्रविडियन**	**तमिल**	तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल	20%
			सेंट्रल द्रविडियन	आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र	
			नार्थ द्रविडियन	बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश	
3.	**सिनो-तिब्बतन (किरात)**	**तिब्बतो-बरमेस**	**तिब्बतो-हिमालयन**	जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम	0.85%
			सियामिस-चायनीस	उत्तर असम, अरुणाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा,	

				मेघालय	
4.	**इंडो-यूरोपियन (आर्यन)**	**इंडो-आर्यन**	**दर्दिक**	जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश	73%
			इंडो-ईरानियन	उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा	

इस तालिका में भाषा परिवार, उपपरिवार-, शाखाएँ-समूह और भाषण क्षेत्र को दर्शाया गया है। इंडो/ परिवार का प्रतिशत संकेतित नहीं किया गया है-ईरानियन उप, क्योंकि यह सामान्यतः इंडोआर्यन के - आर्यन की कुल जनसंख्या में शामिल होता है।-अंतर्गत आता है और एकत्रित प्रतिशत मुख्यतः इंडो धार्मिक संरचना भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता है। धर्म भारतीयों के परिवार और समुदाय के जीवन के लगभग सभी पहलुओं में व्याप्त है, इसलिए धार्मिक संरचना का अध्ययन व्यापक रूप से महत्वपूर्ण है। पिछले दशक (2001-2011) में विभिन्न धर्मों की जनसंख्या वृद्धि दर में उल्लेखनीय बदलाव आया है। हिंदू धर्म की जनसंख्या वृद्धि दर 19.92% से घटकर 16.76% हो गई है, जो एक महत्वपूर्ण कमी को दर्शाता है। इसके विपरीत, मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि दर 29.52% (1991-2001) से घटकर 24.60% (2001-2011) हो गई है, जो पिछले दशकों की तुलना में तेज गिरावट को इंगित करती है। इस तरह की तेज गिरावट मुस्लिम समुदाय की जनसंख्या वृद्धि दर में पिछले 6 दशकों में पहली बार देखी गई है। ईसाई धर्म की जनसंख्या वृद्धि दर 15.5% रही, जबकि सिख धर्म की वृद्धि दर 8.4% रही। जैन धर्म के सबसे शिक्षित और धनी समुदाय ने 2001-2011 के दौरान केवल 5.4% की वृद्धि दर दर्ज की, जो कि अन्य धर्मों की तुलना में सबसे कम है। जैन धर्म की धीमी वृद्धि दर इस समुदाय की विशेषताओं और सांस्कृतिक आदतों को दर्शाती है, जो इसके विकास की गति को प्रभावित करती है। आने वाली 2021 की जनगणना में हिंदू, मुस्लिम और ईसाई धर्मों की वृद्धि दर में और अधिक गिरावट की संभावना है। इसके विपरीत, सिख धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म की वृद्धि दर स्थिर रहने की उम्मीद है, क्योंकि इन धर्मों की विकास दर पहले से ही धीमी रही है। इस संदर्भ में, भविष्य में धार्मिक संरचना के अध्ययन से यह समझने में मदद मिलेगी कि इन बदलावों का समाज और राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।

अखिल भारतीय धर्म जनगणना तथ्य 2011

धर्म	**प्रतिशत**	**अनुमानित**	**कुल**	**पुरुष**	**महिला**	**राज्य बहुमत**
सभीधर्म	100.00 %	121 करोड़	1,210,854,977	623,270,258	587,584,719	35
हिंदू	79.80 %	96.62 करोड़	966,257,353	498,306,968	467,950,385	28

मुसलमान	14.23 %	17.22 करोड़	172,245,158	88,273,945	83,971,213	2
ईसाई	2.30 %	2.78 करोड़	27,819,588	13,751,031	14,068,557	4
सिख	1.72 %	2.08 करोड़	20,833,116	10,948,431	9,884,685	1
बौद्ध	0.70 %	84.43 लाख	8,442,972	4,296,010	4,146,962	-
जैन	0.37 %	44.52 लाख	4,451,753	2,278,097	2,173,656	-
अन्यधर्म	0.66 %	79.38 लाख	7,937,734	3,952,064	3,985,670	-
नहींबताया हूआ	0.24 %	28.67 लाख	2,867,303	1,463,712	1,403,591	

1.10सारांश

जनसांख्यिकी मानव आबादी का व्यवस्थित, वैज्ञानिक और विधिवत अध्ययन है। चूँकि जनसांख्यिकी मानव आबादी में होने वाले परिवर्तनों में रुचि रखती है, इसलिए जनसांख्यिकीविद् परिवर्तन के विशिष्ट संकेतकों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। दो सबसे महत्वपूर्ण संकेतक जन्म और मृत्यु दर हैं, जिन्हें प्रजनन और मृत्यु दर भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, जनसांख्यिकीविद् प्रवासन प्रवृत्तियों या लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में रुचि रखते हैं। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में भारत की जनसंख्या वृद्धि उल्लेखनीय रूप से धीमी हुई है, फिर भी यह चीन की तुलना में तेज़ी से बढ़ रही है। भारत में जनसंख्या वृद्धि हाल के दशकों में धीमी रही है, 1971-81 के दौरान 2.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर से 2011-16 तक अनुमानित 1.3 प्रतिशत तक (आर्थिक सर्वेक्षण, 2018-2019)। भारत ने जनसांख्यिकीय संक्रमण के अगले चरण में भी प्रवेश कर लिया है, जिसमें अगले दो दशकों में जनसंख्या वृद्धि में उल्लेखनीय रूप से कमी आने वाली है, साथ ही कार्यशील आयु वर्ग की आबादी में उल्लेखनीय वृद्धि (तथाकथित "जनसांख्यिकीय लाभांश" चरण) होगी।

1.11 शब्दावली

1. जनसंख्या वृद्धि (Population Growth) - जनसंख्या की संख्या में समय के साथ होने वाली वृद्धि।

2. 2सतत विकास (Sustainable Development) - ऐसा विकास जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को भी ध्यान में रखे और पर्यावरण को संरक्षित करे।
3. संपोषित विकास (Sustained Development) - ऐसा विकास जो निरंतरता बनाए रखते हुए आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों को प्राप्त करे।
4. .आर्थिक विकास (Economic Development) - आर्थिक गतिविधियों और उत्पादन के माध्यम से जीवन स्तर में सुधार और समृद्धि लाने की प्रक्रिया।
5. .पर्यावरणीय क्षति (Environmental Degradation) - प्राकृतिक संसाधनों की कमी या प्रदूषण के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट।
6. .जनसंख्या नियंत्रण (Population Control) - जनसंख्या वृद्धि को रोकने या कम करने के उपाय और नीतियाँ।

1.12कुछ उपयोगी पुस्तके

1. भारतीय अर्थव्यवस्था: एक विश्लेषण"लेखक: रघुराम राजन
2. "भारत का सतत विकास: चुनौतियाँ और अवसर" लेखक: कृष्णमूर्ति सुब्रमण्यन
3. "जनसंख्या और विकास: भारतीय परिप्रेक्ष्य" लेखक: प्रोफेसर अमर्त्य सेन
4. "भारत में जनसंख्या वृद्धि और विकास" लेखक: डॉ. रामकृष्ण शर्मा

- बोध प्रश्न

1. जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच संबंध पर चर्चा करें। भारतीय संदर्भ में इस संबंध को समझाने के लिए उदाहरण दें?
2. सतत विकास के सिद्धांत क्या हैं? भारतीय अर्थव्यवस्था में इन सिद्धांतों को लागू करने के लिए कौन-कौन सी नीतियाँ अपनाई गई हैं?
3. जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं और इन समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय सरकार ने कौन-कौन सी नीतियाँ लागू की हैं?
4. सतत विकास के तीन प्रमुख स्तंभ कौन-कौन से हैं? इन स्तंभों की व्याख्या करते हुए भारतीय संदर्भ में उनके महत्व को स्पष्ट करें।
5. भारत में जनसंख्या नियंत्रण के प्रयासों की समीक्षा करें। इन प्रयासों के प्रभावी होने के उदाहरण और चुनौतियों पर चर्चा करें।

खंड 05 - जनसंख्या एवं संपोषित विकास

इकाई - 02 जनसंख्या एवं उसके गुणात्मक पहलू

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.0 प्रस्तावना
2.2जनसंख्या एवं उसके गुणात्मक पहलू
2.3भारतीय जनसंख्या की गुणवत्ता
2.4भारत में जनसंख्या नीतियाँ और कार्यक्रम
2.4.1राष्ट्रीय जनसंख्या नीतियाँ - 1951, 1976-1977 और 2000
2.4.2राष्ट्रीय जनसंख्या नीति - 2000
2.5सारांश
2.6शब्दावली
2.7कुछ उपयोगी पुस्तके

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन पूरा करने के बाद, आप निम्न कार्य करने में सक्षम होंगे:

1. जनसंख्या नीति की आवश्यकता और औचित्य का वर्णन करना;
2. जनसंख्या नीति के विभिन्न तत्वों की व्याख्या करना;
3. विकासशील और विकसित दोनों देशों की चयनित जनसंख्या नीतियों पर चर्चा करना

भारत में जनसंख्या नीतियों का विश्लेषण करना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तावना जनसंख्या एक सामाजिक और आर्थिक मापदंड है जो किसी देश या क्षेत्र में लोगों की संख्या को दर्शाता है। किसी देश की जनसंख्या उसकी सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक स्थिति पर गहरा असर डालती है। जनसंख्या की गुणवत्ता को समझने के लिए विभिन्न मापदंड होते हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और सामाजिक समानता। एक देश या क्षेत्र की जनसंख्या की गुणवत्ता के माध्यम से उसकी प्रगति और विकास का मूल्यांकन किया जा सकता है।

2.2जनसंख्या एवं उसके गुणात्मक पहलू

शिक्षा एक महत्वपूर्ण मापदंड है जो जनसंख्या की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। शिक्षा का स्तर समाज की समृद्धि और प्रगति को दर्शाता है। शिक्षित जनसंख्या नई विचारधारा, तकनीकी उन्नति, और समाज में समानता को बढ़ावा देती है। एक अच्छा शिक्षा स्तर एक सक्षम और उत्पादक workforce का निर्माण करता है, जो राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

स्वास्थ्य भी जनसंख्या की गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। एक स्वस्थ जनसंख्या देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्वस्थ जनसंख्या न केवल सकारात्मक योगदान देती है बल्कि देश की आर्थिक वृद्धि में भी सहायता करती है। स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता सीधे तौर पर जनसंख्या की जीवन गुणवत्ता को प्रभावित करती है। **रोजगार और आर्थिक स्थिति** भी जनसंख्या की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। यदि एक देश में बेरोजगारी की समस्या अधिक है, तो वहां की जनसंख्या का आर्थिक विकास प्रतिबंधित हो सकता है। रोजगार की उपलब्धता और आर्थिक अवसर जनसंख्या की जीवन गुणवत्ता को बेहतर बनाते हैं और सामाजिक स्थिरता को बनाए रखते हैं।

सामाजिक समानता एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है जो जनसंख्या की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। यदि समाज में समानता है और सभी व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों का आनंद ले रहे हैं, तो उनकी जीवन गुणवत्ता बेहतर होती है। सामाजिक समानता से सभी वर्गों के लोगों के बीच समान अवसर और संसाधनों का वितरण सुनिश्चित होता है। जनसंख्या और उसकी गुणवत्ता के बीच संबंध गहरा होता है। एक स्वस्थ, शिक्षित, रोजगार प्राप्त और समृद्ध समाज विकसित होता है, जो जनसंख्या की गुणवत्ता के माध्यम से प्रकट होता है। जनसंख्या की गुणवत्ता में सुधार से न केवल सामाजिक और आर्थिक विकास होता है, बल्कि राष्ट्रीय प्रगति भी सुनिश्चित होती है।

2.3भारतीय जनसंख्या की गुणवत्ता

समय के साथ भारतीय जनसंख्या की गुणवत्ता में परिवर्तन हो रहा है, और यह एक महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत कर रही है। भारत की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है और यह विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव डाल रही है, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार। यद्यपि भारत की युवा जनसंख्या की प्रशंसा की जाती है, यह जनसंख्या की समग्र गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए कई समस्याएँ और सुधार की आवश्यकता है।

1. शिक्षा: शिक्षा की गुणवत्ता भारतीय जनसंख्या के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हालाँकि, भारत में शिक्षा के क्षेत्र में कई सुधार किए गए हैं, फिर भी कई स्थानों पर शिक्षा की उपलब्धता और गुणवत्ता से जुड़ी समस्याएँ बनी हुई हैं। सुधार की दिशा में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि सभी वर्गों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल सके।

2. स्वास्थ्य: स्वास्थ्य भी भारतीय जनसंख्या के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू है। आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं, उचित खानपान, स्वच्छता, और स्वास्थ्य जागरूकता की आवश्यकता है ताकि जनसंख्या के स्वास्थ्य में सुधार किया जा सके। स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच और गुणवत्ता में सुधार करने की दिशा में ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।

3. रोजगार: रोजगार की गुणवत्ता भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। बढ़ती जनसंख्या के साथ रोजगार की समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। उचित रोजगार की उपलब्धता और पेशेवर कौशल के विकास की आवश्यकता है ताकि युवाओं को बेहतर रोजगार के अवसर मिल सकें और बेरोजगारी की समस्याओं को कम किया जा सके.

4. सामाजिक समानता: भारतीय समाज में सामाजिक समानता की गुणवत्ता पर ध्यान देना आवश्यक है। विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों, और लिंगों के बीच समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना चाहिए। सामाजिक समानता से सभी वर्गों के लोगों को समान अवसर और संसाधन मिलते हैं, जिससे समग्र समाज की गुणवत्ता में सुधार होता है।भारत की जनसंख्या एक संसाधन है जो यदि सही दिशा में निर्देशित की जाए, तो विश्वसनीय रूप से विकास कर सकती है। गुणवत्तामें सुधार करके शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और सामाजिक समानता के क्षेत्रों में सुधार संभव है, जो समृद्धि और समरसता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।

2.4भारत में जनसंख्या नीतियाँ और कार्यक्रम

जनसंख्या नीति के विकास में मील के पत्थर:

1946: भोरे समिति (जिसे स्वास्थ्य सुरक्षा एवं विकास समिति के नाम से भी जाना जाता है) की स्थापना भारत सरकार द्वारा 1943 में भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली में सुधार की जांच करने और सिफारिश करने के लिए की गई थी। इसने अपनी रिपोर्ट में कई महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं।

1952: भारत सकारात्मक जनसंख्या नीति अपनाने वाला पहला विकासशील देश बना, जिसकी पहचान राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम की शुरुआत से हुई।

1976: राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का वक्तव्य।

1977: परिवार कल्याण कार्यक्रम पर नीति वक्तव्य।

1983: उपरोक्त दोनों वक्तव्यों को संसद में सदन के पटल पर रखा गया, लेकिन कभी चर्चा नहीं हुई और न ही उन्हें अपनाया गया। 1983 की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति ने "स्वैच्छिक प्रयासों के माध्यम से छोटे परिवार के मानदंड को सुरक्षित रखने और जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य की ओर बढ़ने" की आवश्यकता पर जोर दिया। स्वास्थ्य नीति को अपनाते समय, संसद ने एक अलग राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की आवश्यकता पर जोर दिया।

1991: राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) ने श्री करुणाकरण को इसके अध्यक्ष के रूप में जनसंख्या पर एक समिति नियुक्त की।

1993 में एनडीसी द्वारा अनुमोदित करुणाकरण रिपोर्ट (जनसंख्या पर राष्ट्रीय विकास परिषद समिति की रिपोर्ट) ने "विकास, जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण संरक्षण के दीर्घकालिक, समग्र दृष्टिकोण" को अपनाने और कार्यक्रमों के निर्माण के लिए नीतियों और दिशानिर्देशों का सुझाव देने के लिए एक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के निर्माण का प्रस्ताव रखा" और "अल्पकालिक, मध्यम और दीर्घकालिक दृष्टिकोण और लक्ष्यों के साथ एक निगरानी तंत्र" (योजना आयोग, 1992)। यह तर्क दिया गया कि 1976 और 1977 के पहले के नीति वक्तव्यों को टेबल पर रखा गया था। हालाँकि, संसद ने वास्तव में उन पर कभी चर्चा नहीं की या उन्हें अपनाया नहीं। विशेष रूप से; यह सिफारिश की गई थी कि "जनसंख्या की एक राष्ट्रीय नीति सरकार द्वारा बनाई जानी चाहिए और संसद द्वारा अपनाई जानी चाहिए" 1993: डॉ. एम.एस.

स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का मसौदा तैयार करने के लिए कहा गया, जिस पर मंत्रिमंडल और फिर संसद द्वारा चर्चा की जाएगी।

1994: डॉ. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में विशेषज्ञ समूह ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति पर एक रिपोर्ट तैयार की। यह रिपोर्ट संसद सदस्यों के बीच वितरित की गई तथा केंद्रीय और राज्य एजेंसियों से टिप्पणियां मांगी गईं। यह अनुमान लगाया गया कि राष्ट्रीय विकास परिषद और संसद द्वारा अनुमोदित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति व्यापक राजनीतिक सहमति बनाने में मदद करेगी।

1997: भारत की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगांठ पर, प्रधान मंत्री गुजराल ने निकट भविष्य में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा करने का वादा किया। मंत्रिमंडल ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के मसौदे को इस निर्देश के साथ मंजूरी दी कि इसे संसद के समक्ष रखा जाए। हालाँकि, यह दस्तावेज़ संसद के किसी भी सदन में नहीं रखा जा सका क्योंकि संबंधित सदन स्थगित हो गए और उसके बाद लोकसभा भंग हो गई।

1999: 1998 के दौरान परामर्श का एक और दौर आयोजित किया गया और राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का एक और मसौदा अंतिम रूप दिया गया और मार्च 1999 में मंत्रिमंडल के समक्ष रखा गया। प्रोत्साहनों और हतोत्साहनों के समावेशन/बहिष्करण के बारे में अंतिम रूप से विचार करने के लिए, मंत्रियों के समूह ने शिक्षाविदों, सार्वजनिक स्वास्थ्य पेशेवरों, जनसांख्यिकीविदों, सामाजिक वैज्ञानिकों और महिला प्रतिनिधियों के बीच से विशेषज्ञों के एक क्रॉस-सेक्शन को आमंत्रित किया। जीओएम ने जनसंख्या नीति के मसौदे को अंतिम रूप दिया और इसे कैबिनेट के समक्ष रखा। इस पर 19 नवंबर 1999 को कैबिनेट में चर्चा की गई। विचार-विमर्श के दौरान कई सुझाव दिए गए।

2000: सुझावों के आधार पर, एक नया मसौदा कैबिनेट को प्रस्तुत किया गया, जिसने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 का आधार बनाया।

यह आज तक कार्यान्वयन के अधीन है। ऊपर सूचीबद्ध मील के पत्थर हमें राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की एक झलक प्रदान करते हैं।

योजना युग की शुरुआत से जनसंख्या नीति जनसंख्या नीति की शुरुआत पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत से हुई। हालाँकि भारत 1951-52 में सकारात्मक जनसंख्या नीति अपनाने वाला पहला विकासशील देश था, ताकि जनसंख्या को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल स्तर पर स्थिर किया जा सके, फिर भी जनसंख्या नियंत्रण में इसकी उपलब्धियाँ संतोषजनक नहीं रही हैं। योजना युग की शुरुआत से जनसंख्या नीति की संक्षिप्त समीक्षा नीचे प्रस्तुत की गई है

2.4.1राष्ट्रीय जनसंख्या नीतियाँ - 1951, 1976-1977 और 2000

हमारी आज़ादी मिलने से बहुत पहले ही कई चर्चाओं में जनसंख्या नीति की शुरुआत देखी गई थी। आज़ादी से बहुत पहले; वर्ष 1938 में ही, तत्कालीन अंतरिम सरकार द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय योजना समिति द्वारा जनसंख्या पर एक उप-समिति का गठन किया गया था। राष्ट्रीय योजना समिति ने 1940 में एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें सामाजिक अर्थव्यवस्था के

सामंजस्यपूर्ण क्रम को लाने के लिए राज्य द्वारा परिवार नियोजन और कल्याण नीतियों को अपनाने की आवश्यकता बताई गई थी। प्रस्ताव में बच्चों की संख्या सीमित करने की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया गया था। स्वतंत्रता के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना के गठन के बाद और भी विकास हुआ।

I) राष्ट्रीय जनसंख्या नीति - 1951: अप्रैल 1951 में इस नीति निर्माण में और भी सुधार दर्ज किए गए, क्योंकि प्रथम पंचवर्षीय योजना में एक स्पष्ट जनसंख्या नीति की बात कही गई और परिवार नियोजन को माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार की दिशा में एक व्यावहारिक और आवश्यक कदम माना गया। आर्थिक और सामाजिक विकास का सर्वोपरि उद्देश्य लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना, उनकी भलाई को बढ़ाना और उन्हें समाज में उत्पादक संपत्ति बनने के अवसर और विकल्प प्रदान करना है। ऐसा इसलिए था, क्योंकि योजना में परिवार नियोजन को स्वास्थ्य कार्यक्रम के एक हिस्से के रूप में माना गया था और इसे केंद्रीय राष्ट्रीय जनसंख्या नियंत्रण सरकार से 100% वित्त पोषण प्राप्त हुआ था। भारत दुनिया का पहला देश था जिसने 1952 में एक राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें जन्म दर को कम करने के लिए आवश्यक सीमा तक परिवार नियोजन पर जोर दिया गया ताकि जनसंख्या को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकता के अनुरूप स्तर पर स्थिर किया जा सके। राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम, जिसे 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) के दौरान शुरू किया गया था, ने परिवार नियोजन के लिए एक "नैदानिक(clinical)" दृष्टिकोण अपनाया और इस उम्मीद के साथ कई क्लीनिक खोले कि लोग सुविधाओं का लाभ उठाएंगे। इसके बाद इस दृष्टिकोण को संशोधित किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) के दौरान 'समुदाय विस्तार' और 'कैफेटेरिया' दृष्टिकोणों का पालन किया गया, जिसमें परिवार नियोजन संदेश का जवाब देने और परिवार नियोजन के प्रति लोकप्रिय दृष्टिकोण और मूल्यों को बदलकर दी जाने वाली सेवाओं का उपयोग करने के लिए लोगों के बीच प्रेरणा पैदा करने पर जोर दिया गया। 1960 के दशक के मध्य से 'कैफेटेरिया दृष्टिकोण' जिसमें परिवार सीमित करने के विभिन्न वैकल्पिक साधन (अस्थायी और स्थायी) प्रचारित किए गए थे, बहुत आगे नहीं बढ़ पाए क्योंकि सरकारी जोर केवल टर्मिनल तरीकों पर ही रहा। बाद में, गर्भपात (गर्भावस्था की चिकित्सा समाप्ति) और विवाह की आयु सहित कई कानून लाए गए। एक 'प्रोत्साहन और हतोत्साहन' योजना शुरू की गई थी। महिला शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, बाल पोषण आदि और परिवार नियोजन कार्यक्रम के साथ उनके एकीकरण पर विचार किया गया। 1952 के बाद, हालांकि मृत्यु दर में तेज गिरावट आई, लेकिन इसके साथ ही जन्म दर में भी उतनी गिरावट नहीं आई। परिणामस्वरूप, प्रत्येक बीतते वर्ष के साथ, इन निधियों की राशि में वृद्धि हुई है। इस परिवार नियोजन एजेंडे की सफलता सरकार के दिल के लिए इतनी प्रिय थी कि वर्ष 1966 में स्वास्थ्य मंत्रालय में परिवार नियोजन विभाग के रूप में एक अलग विभाग भी बनाया गया था। इस विभाग द्वारा नीतिगत मोर्चे पर आगे के प्रयास किए गए। ऐसा जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से किया गया था। परिणामस्वरूप,

सामाजिक-आर्थिक विकास की समग्र रणनीति के साथ एकीकृत एक व्यापक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति अप्रैल 1976 में विकसित की गई थी, जिसका उद्देश्य केंद्र और राज्यों में सरकार के अन्य विकास विभागों को कार्यक्रम में शामिल करके परिवार नियोजन को तीव्र गति से बढ़ावा देना था। साथ ही, उन सभी संगठनों को जो लोगों के बीच विश्वसनीयता और प्रभाव रखते थे और जो जन कल्याण में रुचि रखते थे, उन्हें परिवार नियोजन को बढ़ावा देने के कार्य में महत्व दिया गया था।

2.) राष्ट्रीय जनसंख्या नीति - 1976-1977: आइए हम राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 1976 पर नज़र डालें, क्योंकि यह वह नीति है जिसे 1977 में संशोधित किया गया था। 1976 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं :

i) लड़कियों के लिए विवाह की आयु 15 से बढ़ाकर 18 वर्ष और लड़कों के लिए 18 से बढ़ाकर 21 वर्ष करना;

ii) राष्ट्रीय संसद में प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से तथा राज्यों को केन्द्रीय सहायता, करों का हस्तांतरण आदि के आवंटन के लिए जनसंख्या के आंकड़ों को वर्ष 2001 तक 1971 के स्तर पर स्थिर रखना;

iii) राज्यों को उनके विकास के लिए केंद्रीय सहायता का एक हिस्सा परिवार नियोजन में उनके प्रदर्शन के साथ जोड़ना;

iv) लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना;

v) शिक्षा की समग्र प्रणाली में जनसंख्या शिक्षा के लिए उचित स्थान;

vi) परिवार नियोजन कार्यक्रमों में सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों की भागीदारी; vii) नसबंदी के लिए मौद्रिक मुआवजे में वृद्धि;

viii) जिला परिषदों और पंचायत समितियों सहित स्थानीय स्तर पर लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाले विभिन्न संगठनों और निकायों के लिए प्रोत्साहन के रूप में समूह पुरस्कारों की स्थापना;

ix) कार्यक्रम के कार्यान्वयन के साथ स्वैच्छिक संगठनों, विशेष रूप से महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठनों का घनिष्ठ सहयोग;

x) अनुसंधान पर अधिक ध्यान देना; और

xi) परिवार नियोजन की स्वीकृति बढ़ाने के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, प्रेरक मीडिया का अधिक उपयोग करना। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को 1977 में और संशोधित किया गया और पुनः घोषित किया गया। इस नई नीति में, शिक्षा और स्वास्थ्य को मजबूत किया गया। सुधारित नीति के दूसरे घटक में सामान्य और मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य दोनों शामिल थे। स्वैच्छिक परिवार नियोजन भी यहाँ शुरू किया गया। इसने परिवार नियोजन से परिवार कल्याण कार्यक्रम में वाक्यांश को भी बदल दिया जो आज तक कायम है संशोधित जनसंख्या नीति ने जनसंख्या वृद्धि को सीमित करने के महत्व पर बल दिया और परिवार नियोजन कार्यक्रम की स्वैच्छिक प्रकृति पर जोर दिया। इसके साथ ही, 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' को

'परिवार कल्याण कार्यक्रम' के रूप में पुनः नामित किया गया। 1976 की नीति के मदों के अलावा, इस नीति वक्तव्य ने मातृत्व और बाल स्वास्थ्य सेवाओं, टीकाकरण कार्यक्रम के विस्तार, महिला शिक्षा और जनसंख्या शिक्षा में सुधार और स्वैच्छिक, युवा और महिला संगठनों की भागीदारी की अधिक भूमिका की वकालत की। प्रमुख विशेषता परिवार कल्याण के लिए 'शैक्षिक और स्वैच्छिक दृष्टिकोण' है। युवाओं के लिए अध्ययन के सामान्य पाठ्यक्रमों के एक भाग के रूप में जनसंख्या शिक्षा पर जोर दिया गया। शिक्षा के साथ-साथ क्षेत्र में आवश्यक शोध इनपुट को प्रोत्साहित करने पर विशेष ध्यान दिया गया। इस प्रकार, परिकल्पित जनसांख्यिकीय लक्ष्यों और परिवार कल्याण के लिए एक बहुआयामी रणनीति विकसित की गई। नियोजन (कल्याण) कार्यक्रम समय-समय पर तेजी से प्रभावी दृष्टिकोण अपनाता रहा है, यानी 'क्लीनिकल' दृष्टिकोण से लेकर 'कैफेटेरिया' दृष्टिकोण और 'समुदाय विस्तार' दृष्टिकोण के साथ-साथ परिवार नियोजन को बढ़ावा देने के लिए 'प्रोत्साहन और हतोत्साहन'। शैक्षिक दृष्टिकोण बहुत जरूरी है क्योंकि जनसंख्या और विकास आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं और कई जटिल कारकों को शामिल करते हैं जिन पर व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों द्वारा गहन और तर्कसंगत विचार की आवश्यकता होती है।

2.4.2राष्ट्रीय जनसंख्या नीति - 2000: नई जनसंख्या नीति की घोषणा 2000 में की गई थी। इसमें स्वास्थ्य और शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है, तथा 2016 के बजाय 2045 तक स्थिर जनसंख्या का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 (संक्षेप में एनपीपी 2000) प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का लाभ उठाते समय नागरिकों की स्वैच्छिक और सूचित पसंद और सहमति के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता और परिवार नियोजन सेवाओं के प्रशासन में लक्ष्य-मुक्त दृष्टिकोण की निरंतरता की पुष्टि करती है। एनपीपी 2000 भारत के लोगों की प्रजनन और बाल स्वास्थ्य आवश्यकताओं को पूरा करने और 2010 तक शुद्ध प्रतिस्थापन स्तर (टीएफआर) प्राप्त करने के लिए अगले दशक के दौरान लक्ष्यों को आगे बढ़ाने और रणनीतियों को प्राथमिकता देने के लिए एक नीतिगत ढांचा प्रदान करता है। यह सरकार, उद्योग और स्वैच्छिक गैर-सरकारी क्षेत्रों द्वारा साझेदारी में काम करते हुए प्रजनन और बाल स्वास्थ्य सेवाओं के एक व्यापक पैकेज की पहुंच और कवरेज को बढ़ाते हुए, बाल अस्तित्व, मातृ स्वास्थ्य और गर्भनिरोधक के मुद्दों को एक साथ संबोधित करने की आवश्यकता पर आधारित है। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 की महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं:

ए) उद्देश्य और लक्ष्य 1) एनपीपी 2000 का **तात्कालिक** उद्देश्य गर्भनिरोधक, स्वास्थ्य देखभाल बुनियादी ढांचे और स्वास्थ्य कर्मियों की अपूरित जरूरतों को पूरा करना और बुनियादी प्रजनन और बाल स्वास्थ्य देखभाल के लिए एकीकृत सेवा वितरण प्रदान करना है। मध्यम अवधि का उद्देश्य अंतर-क्षेत्रीय परिचालन रणनीतियों के जोरदार कार्यान्वयन के माध्यम से 2010 तक टीएफआर को प्रतिस्थापन स्तर पर लाना है। **दीर्घकालिक** उद्देश्य 2045 तक स्थिर

जनसंख्या प्राप्त करना है, जो सतत आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

2) इन उद्देश्यों के अनुसरण में, 2010 तक प्रत्येक मामले में प्राप्त किए जाने वाले निम्नलिखित राष्ट्रीय सामाजिक-जनसांख्यिकीय लक्ष्य तैयार किए गए हैं

➢ 2010 के लिए राष्ट्रीय सामाजिक-जनसांख्यिकीय लक्ष्य

- बुनियादी प्रजनन और बाल स्वास्थ्य सेवाओं, आपूर्ति और बुनियादी ढांचे की अधूरी जरूरतों को पूरा करना।
- कुल प्रजनन दर को 2.1 तक कम करने और दो-बच्चे के मानदंड को प्राप्त करने के लिए गुणवत्तापूर्ण गर्भनिरोधक सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुँच।
- जन्म-सीमा विधियों की जानकारी तक सार्वभौमिक पहुँच और नागरिकों को अपने परिवार की योजना बनाने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र विकल्प की उपलब्धता।
- 14 वर्ष की आयु तक स्कूली शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाना, और प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय स्तर पर लड़के और लड़कियों दोनों के लिए ड्रॉप-आउट को 20 प्रतिशत से कम करना।
- शिशु मृत्यु दर को 1000 जीवित जन्मों में 30 से कम करना और कम वजन वाले (2.5 किलोग्राम से कम) शिशुओं के जन्म की घटना को कम करना।
- मातृ मृत्यु दर को 100,000 जीवित जन्मों में 100 से कम करना।
- बच्चों को सभी टीका-निवारणीय बीमारियों से बचाने के लिए सार्वभौमिक टीकाकरण, 2000 तक पोलियो उन्मूलन और टेटनस और खसरे का लगभग उन्मूलन।
- 18 वर्ष से कम आयु की लड़कियों की शादी की घटनाओं को शून्य तक कम करना और लड़कियों के लिए विलंबित विवाह को बढ़ावा देना, अधिमानतः 20 वर्ष की आयु के बाद।
- 80 प्रतिशत संस्थागत प्रसव और 100 प्रतिशत प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्रसव सुनिश्चित करना। सूचना/परामर्श, प्रजनन विनियमन और गर्भनिरोधक के लिए सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करना, जिसमें विकल्पों की एक विस्तृत श्रृंखला हो।
- जन्म, मृत्यु, विवाह और गर्भावस्था का 100 प्रतिशत पंजीकरण सुनिश्चित करना।
- अधिग्रहित प्रतिरक्षा-अभाव सिंड्रोम (एड्स) के प्रसार को रोकना और प्रजनन पथ संक्रमण (आरटीआई) और यौन संचारित संक्रमण (एसटीआई) के प्रबंधन और राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन के बीच अधिक एकीकरण को बढ़ावा देना।
- संचारी रोगों की रोकथाम और नियंत्रण।
- प्रजनन और बाल स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान में भारतीय चिकित्सा पद्धति (आईएसएम) को एकीकृत करना और परिवारों तक पहुँचना।
- टीएफआर के प्रतिस्थापन स्तरों को प्राप्त करने के लिए छोटे परिवार के मानदंड को जोरदार तरीके से बढ़ावा देना।

- संबंधित सामाजिक क्षेत्र के कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में अभिसरण लाना ताकि परिवार कल्याण एक जन-केंद्रित कार्यक्रम बन जाए|

2.5सारांश

विकसित देशों में, हालांकि जन्म नियंत्रण उपायों को लंबे समय से सार्वभौमिक रूप से अपनाया गया है, फिर भी, बहुत कम देश हैं जिन्होंने जनसंख्या वृद्धि पर एक स्पष्ट राष्ट्रीय नीति तैयार की है। दूसरी ओर, कई यूरोपीय देश हैं जो घटती जनसंख्या के बारे में अपनी चिंता के कारण अभी भी प्रो-नेटलिस्ट नीति का पालन करते हैं। लेकिन, अप्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या से संबंधित मुद्दे अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य और कल्याण उपायों के लिए बनाई गई विभिन्न अन्य नीतियों में परिलक्षित होते हैं। भारत दुनिया का पहला देश था जिसने वर्ष 1952 में आधिकारिक परिवार नियोजन कार्यक्रम शुरू किया था। हालाँकि, पहली जनसंख्या नीति वर्ष 1976 में भारत सरकार द्वारा घोषित की गई थी।

2.6शब्दावली

1. अवशोषण क्षमता (Absorption Capacity) - पर्यावरण के उन संसाधनों की क्षमता जो मानव गतिविधियों द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट और प्रदूषण को सहन कर सके।
2. नीति (Policy) - किसी संगठन या सरकार द्वारा निर्धारित नियम और निर्देश जो विशेष लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाए जाते हैं।
3. सार्वजनिक स्वास्थ्य (Public Health) - समुदाय के स्वास्थ्य की देखभाल और सुधार के लिए किए गए उपाय और नीतियाँ।
4. सामाजिक संरचना (Social Structure) - समाज के विभिन्न घटकों और उनकी आपसी संबंधों का संगठन।
5. औद्योगीकरण (Industrialization) - उद्योगों की स्थापना और विकास के माध्यम से अर्थव्यवस्था का विकास।
6. शहरीकरण (Urbanization) - ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या का प्रवासन और शहरी क्षेत्रों का विस्तार।

2.7कुछ उपयोगी पुस्तके

"भारत में आर्थिक विकास और सामाजिक बदलाव" लेखक: डॉ. सुधीर चौधरी

1. "भारतीय अर्थव्यवस्था और जनसंख्या: एक समग्र दृष्टिकोण" लेखक: डॉ. सविता अग्रवाल
2. भारतीय अर्थव्यवस्था: एक परिचय" लेखक: डॉ. सुरेंद्र शर्मा
3. "भारतीय अर्थव्यवस्था: समकालीन मुद्दे" लेखक: डॉ. अनिल कुमार
4. "भारत में जनसंख्या और विकास" लेखक: डॉ. नरेश कुमार

➢ बोध प्रश्न

1. पर्यावरणीय क्षति के कारणों की पहचान करें और इनसे निपटने के लिए सतत विकास के दृष्टिकोण को कैसे अपनाया जा सकता है, इसका विश्लेषण करें।

2. जनसंख्या वृद्धि के सामाजिक और आर्थिक प्रभावों पर चर्चा करें। इन प्रभावों को कम करने के लिए किस प्रकार की नीतियाँ और कार्यक्रमों की आवश्यकता है?
3. "सतत विकास" और "संपोषित विकास" के बीच अंतर स्पष्ट करें। भारतीय संदर्भ में दोनों अवधारणाओं का महत्व क्या है

खंड 05 - जनसंख्या एवं संपोषित विकास

इकाई - 03 प्रदूषण और वैश्विक उष्मीकरण

इकाई की रूपरेखा

3.0प्रस्तावना
3.1 प्रदूषण और वैश्विक उष्मीकरण
3.2प्रदूषण के प्रकार
3.3प्रदूषण के प्रभाव
3.4अन्य प्रकार के प्रदूषण
3.5जलवायु परिवर्तन - एक वैश्विक चुनौती
3.6जलवायुपरिवर्तन के प्रभाव
3.7जलवायुपरिवर्तन और खाद्य सुरक्षा
3.8जलवायुपरिवर्तन से निपटने हेतु वैश्विक प्रयास
3.9 सारांश
3.10उपयोगी शब्दावली:
3.11उपयोगी / सहायकग्रन्थ

3.0प्रस्तावना

प्रदूषण एक प्रमुख पर्यावरणीय समस्या है जो मुख्यतः मानवजनित कारणों से उत्पन्न होती है। यह समस्या पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण के संतुलन को प्रभावित करती है, और वैश्विक उष्मीकरण इसका एक महत्वपूर्ण पहलू है। प्रदूषण विभिन्न प्रकार के (ग्लोबल वॉर्मिंग) हो सकते हैं और ये मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

3.1 प्रदूषण और वैश्विक उष्मीकरण प्रदूषण उन पदार्थों या ऊर्जा के रूपों का परिचय है जो पर्यावरण और जीवित संस्थाओं में प्रतिकूल परिवर्तन का कारण बनते हैं। यह केवल रासायनिक पदार्थों जैसे की कीटनाशक से नहीं होता (जैसे धुआं और धूल), बल्कि ध्वनि, ताप, या प्रकाश जैसे ऊर्जा के रूप भी प्रदूषण का कारण बन सकते हैं। प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थों को प्रदूषक कहा जाता है।

3.2प्रदूषण के प्रकार:

1. **वायु प्रदूषण:** वायु प्रदूषण वायुमंडल में हानिकारक पदार्थों के मिश्रण को संदर्भित करता है। इसमें कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, और धूल के कण शामिल हैं। ये प्रदूषक वायु गुणवत्ता को बिगाड़ते हैं और मानव स्वास्थ्य, विशेषकर श्वसन तंत्र को प्रभावित करते हैं।
2. **जल प्रदूषण:** जल प्रदूषण तब होता है जब जल स्रोतों जैसे नदियाँ, झीलें, और समुद्र में हानिकारक रसायन, औद्योगिक अपशिष्ट, और अन्य विषैले पदार्थों की उपस्थिति बढ़ जाती है। इससे जल जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और जलजन्य रोगों का खतरा बढ़ता है।

3. **मृदा प्रदूषण:** मृदा प्रदूषण तब होता है जब मृदा में हानिकारक रसायन, कचरा, और औद्योगिक अपशिष्ट मिल जाते हैं। इससे मृदा की उर्वरता घटती है और कृषि उत्पादन पर असर पड़ता है।
4. **ध्वनि प्रदूषण:** ध्वनि प्रदूषण उच्च स्तर की ध्वनि जैसे ट्रैफिक शोर), औद्योगिक ध्वनिके कारण होता है (, जो मानव स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। यह सुनने की क्षमता में कमी, तनाव, और नींद की समस्याओं का कारण बन सकता है।
5. **वैश्विक उष्मीकरण :(ग्लोबल वॉर्मिंग)** वैश्विक उष्मीकरण का मुख्य कारण ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन है, जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, मिथेन, और नाइट्रस ऑक्साइड। इन गैसों की वृद्धि पृथ्वी के तापमान को बढ़ा देती है, जो जलवायु परिवर्तन, समुद्र स्तर की वृद्धि, और चरम मौसम की घटनाओं का कारण बनती है।

3.3प्रदूषण के प्रभाव: मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव: प्रदूषण विभिन्न प्रकार की बीमारियों का कारण बन सकता है, जैसे श्वसन रोग, हृदय रोग, और कैंसर। इसके अलावा, प्रदूषण मानसिक स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। **पर्यावरण पर प्रभाव:** प्रदूषण पारिस्थितिक तंत्र को नष्ट कर सकता है, जंगली जीवन को प्रभावित कर सकता है, और प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान पहुंचा सकता है। यह वनस्पति, जल जीवन, और मृदा की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। प्रदूषण और वैश्विक उष्मीकरण मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए गंभीर समस्याएँ हैं। इनसे निपटने के लिए जागरूकता, सख्त पर्यावरणीय नियम, और टिकाऊ विकास के उपायों की आवश्यकता है।

प्रदूषण के प्रकार: प्रदूषण विभिन्न प्रकार के होते हैं, जो प्राकृतिक घटनाओं (जैसे जंगल की आग) या मानव निर्मित गतिविधियों (जैसे कार, कारखाने, परमाणु अपशिष्ट इत्यादि) के कारण उत्पन्न होते हैं। प्रदूषण को मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **वायु प्रदूषण**: वायु प्रदूषण तब होता है जब हानिकारक पदार्थ जैसे धुआं, धूल, और गैसें (जैसे कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड) वायुमंडल में मिल जाती हैं। यह प्रदूषण श्वसन समस्याएँ, हृदय रोग, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है।
2. **जल प्रदूषण**: जल प्रदूषण तब होता है जब जल स्रोतों (जैसे नदियाँ, झीलें, और समुद्र) में हानिकारक रसायन, औद्योगिक अपशिष्ट, और अन्य विषैले पदार्थ मिल जाते हैं। इससे जल जीवन को नुकसान पहुँचता है और जलजन्य रोगों का खतरा बढ़ता है।
3. **मिट्टी का प्रदूषण**: मिट्टी का प्रदूषण तब होता है जब मिट्टी में हानिकारक रसायन, कचरा, और औद्योगिक अपशिष्ट मिल जाते हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता घटती है और कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

4. **ध्वनि प्रदूषण**: ध्वनि प्रदूषण तब होता है जब अत्यधिक ध्वनि (जैसे ट्रैफिक शोर, औद्योगिक ध्वनि) वातावरण में बढ़ जाती है। यह मानव स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है, जैसे सुनने की क्षमता में कमी, तनाव, और नींद की समस्याएँ।

3.4अन्य प्रकार के प्रदूषण:

1. **प्रकाश प्रदूषण**: प्रकाश प्रदूषण तब होता है जब अत्यधिक और अनुपयुक्त प्रकाश वातावरण में बढ़ जाता है। यह रात की छांव को प्रभावित करता है और वनस्पति और वन्यजीवों की जीवनशैली पर असर डालता है।
2. **थर्मल प्रदूषण**: थर्मल प्रदूषण तब होता है जब औद्योगिक प्रक्रियाओं या अन्य गतिविधियों से गर्म पानी या अन्य गर्म पदार्थ जल स्रोतों में छोड़ दिए जाते हैं। इससे जल का तापमान बढ़ता है, जो जल जीवन के लिए हानिकारक हो सकता है।
3. **रेडियोधर्मी प्रदूषण**: रेडियोधर्मी प्रदूषण तब होता है जब रेडियोधर्मी पदार्थों का उत्सर्जन होता है। यह बहुत ही दुर्लभ प्रकार का प्रदूषण है, लेकिन सबसे घातक हो सकता है। यह मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करता है, जैसे कैंसर और अन्य गंभीर स्वास्थ्य समस्याएँ।

इन विभिन्न प्रकार के प्रदूषण का प्रभाव मानव जीवन और पर्यावरण पर गंभीर हो सकता है। इनसे निपटने के लिए उचित नियंत्रण उपायों और जागरूकता की आवश्यकता है।

- **वायुप्रदूषण** : वायुप्रदूषण से तात्पर्य पृथ्वी के वायुमंडल में हानिकारक संदूषकों के मिश्रण से है, जो स्वास्थ्य और पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव डाल सकते हैं। ये संदूषक आमतौर पर रसायन, जहरीली गैसें, कण, और जैविक अणु होते हैं, जो हवा में मिल जाते हैं और वायुमंडल की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। वायुप्रदूषण के प्रमुख कारणों में जीवाश्म ईंधन जलाना, खनन कार्य, और उद्योगों और कारखानों से निकलने वाली गैसें शामिल हैं। जब इन संदूषकों का उत्सर्जन बढ़ जाता है, तो इसके परिणामस्वरूप श्वसन संबंधी बीमारियाँ, हृदय संबंधी समस्याएँ, त्वचा रोग, और कैंसर का खतरा बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, वायुप्रदूषण ग्लोबल वार्मिंग, अम्लीय वर्षा, ओज़ोन रिक्तीकरण, और वन्यजीवों के लिए खतरा उत्पन्न करता है। वायुप्रदूषण का ग्रहव्यापी - प्रभाव अत्यधिक गंभीर हो सकता हैऔर अगर इसे अनियंत्रित छोड़ दिया जाए, तो यह ग्लोबल वार्मिंग का एक चरम रूप ले सकता है, जैसा कि वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है।

जल प्रदूषण: जल प्रदूषण तब उत्पन्न होता है जब हानिकारक रसायन और कण जल स्रोतों में प्रवेश करते हैं। ये संदूषक आमतौर पर अनुचित सीवेज उपचार, तेल रिसाव, और औद्योगिक अपशिष्ट के कारण होते हैं। जल प्रदूषण के अन्य महत्वपूर्ण कारणों में ठोस अपशिष्टों को जल निकायों में डालना, अनुपचारित औद्योगिक सीवेज को जल में निपटाना, मानव और पशु अपशिष्ट, और कीटनाशकों और उर्वरकों से युक्त कृषि अपवाह शामिल हैं। जल प्रदूषण के प्रभाव हमारे पर्यावरण पर स्पष्ट होते हैं, और यह जीवित प्राणियों में जैवसंचय कर सकता है, जिससे खाद्य श्रृंखला में इन रसायनों का प्रवेश होता

है। इसके गंभीर परिणामों में पारिस्थितिकी तंत्र का विघटन, समुद्री जीवन को खतरा, और जलजनित बीमारियों का खत-रा शामिल है। उदाहरण के लिए, 1932 में जापान के एक शहर में जल प्रदूषण के एक गंभीर मामले ने कई दशकों तक तंत्रिका संबंधी रोगों और मानसिक बीमारियों को जन्म दिया। मिथाइल मरकरी के कारण मछलियों में जैवसंचय हुआ, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय आबादी को स्वास्थ्य समस्याएँ हुईं।

मिट्टी का प्रदूषण: मिट्टी का प्रदूषण, जिसे मृदा प्रदूषण भी कहा जाता है, तब उत्पन्न होता है जब रसायन या अन्य मानव निर्मित पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं। ये ज़ेनोबायोटिक पदार्थ मिट्टी की प्राकृतिक संरचना को बदल सकते हैं और इसके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। पौधे इन हानिकारक रसायनों को अवशोषित कर सकते हैं, और चूंकि पौधे पर्यावरण में उत्पादक होते हैं, ये रसायन खाद्य श्रृंखला के माध्यम से फैल सकते हैं। मृदा प्रदूषण के सामान्य कारणों में अनुचित औद्योगिक अपशिष्ट निपटान, तेल रिसाव, अम्लीय वर्षा, खनन गतिविधियाँ, और कृषि रसायन शामिल हैं। इसका (जैसे उर्वरक और कीटनाशक) प्रभाव व्यापक है, जिसमें मिट्टी के पोषक तत्वों की हानि, मिट्टी में रहने वाले वनस्पतियों और जीवों पर प्रभाव, और मिट्टी की लवणता का बढ़ना शामिल है। विशेष रूप से, रेडियोधर्मी अपशिष्ट जैसे विशिष्ट अपशिष्ट अत्यधिक खतरनाक होते हैं, और चेरनोबिल में हुए परमाणु दुर्घटना ने 2600 किमी² क्षेत्र को कई हजार वर्षों तक निर्जन बना दिया।

ध्वनि प्रदूषण: ध्वनि प्रदूषण का मतलब है वातावरण में अत्यधिक शोर की उपस्थिति, जो प्राकृतिक संतुलन को बाधित करती है। यह आमतौर पर मानव निर्मित होता है, हालांकि कुछ प्राकृतिक आपदाएँ जैसे ज्वालामुखी भी ध्वनि प्रदूषण में योगदान कर सकती हैं। ध्वनि प्रदूषण तब माना जाता है जब ध्वनि का स्तर 85 डेसिबल से अधिक होता है। सामान्य बातचीत लगभग 60 डेसिबल की होती है, जबकि एक जेट विमान की उड़ान भरने की ध्वनि 150 डेसिबल तक हो सकती है। ध्वनि प्रदूषण के योगदानकर्ताओं में उद्योगउन्मुख शोर-, परिवहन शोर, निर्माण शोर, सामाजिक कार्यक्रमों का शोर, और घरेलू शोर शामिल हैं। इसके परिणामस्वरूप बहरापन, टिनिटस (कानों में बजने की आवाज), नींद संबंधी विकार, उच्च रक्तचाप, और संचार में कठिनाई जैसी समस्याएँ हो सकती हैं। सघन शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण ध्वनि प्रदूषण की समस्या अब अधिक गंभीर हो गई है।

3.5जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक चुनौती -: जलवायु परिवर्तन वर्तमान में वैश्विक समाज के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बन गई है। आंकड़े बताते हैं कि 19वीं सदी के अंत से अब तक पृथ्वी की सतह का औसत तापमान लगभग 1.62 डिग्री फारेनहाइट लगभग)0.9 डिग्री सेल्सियसबढ़ गया है (, और पिछले सदी से समुद्र के जल स्तर में लगभग 8 इंच की वृद्धि हुई है। जलवायु परिवर्तन को समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि जलवायु क्या है। सामान्यतः जलवायु का अर्थ किसी क्षेत्र में लंबे समय तक औसत मौसम से होता है। जब किसी विशेष क्षेत्र के औसत मौसम में बदलाव आता है, तो इसे जलवायु परिवर्तन कहते हैं। यह परिवर्तन वैश्विक स्तर पर महसूस किया जा रहा है और पृथ्वी के तापमान में लगातार

वृद्धि हो रही है। इसके प्रभावों में ग्लेशियरों का पिघलना, महासागरों का जल स्तर बढ़ना, प्राकृतिक आपदाओं का खतरा, और कुछ द्वीपों के डूबने का खतरा शामिल है।

ग्रीनहाउस गैसें: ग्रीनहाउस गैसें पृथ्वी के चारों ओर एक परत बनाती हैं, जिसमें मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, और कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसें शामिल हैं। ये गैसें पृथ्वी की सतह पर तापमान संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण हैं, और अगर यह परत न हो, तो पृथ्वी का तापमान काफी कम हो जाएगा। आधुनिक युग में, मानव गतिविधियों के बढ़ने के साथसाथ - ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी बढ़ रहा है, जिससे वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है। मुख्य ग्रीनहाउस गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, और क्लोरोफ्लोरोकार्बन शामिल हैं। कार्बन डाइऑक्साइड, जिसे सबसे महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैस माना जाता है, ऊर्जा के लिए जीवाश्म ईंधन जलाने से उत्पन्न होती है। मीथेन, जो जैवपदार्थों के अपघटन से उत्पन्न होती है, कार्बन डाइऑक्साइड से अधिक प्रभावी है, हालांकि इसका वातावरण में स्तर कम होता है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन का उपयोग मुख्यतः रेफ्रिजरेंट और एयर कंडीशनर में होता है और इसका ओज़ोन परत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भूमिके उपयोग में परिवर्तन: वाणिज्यिक और निजी उपयोग के लिए वनों की कटाई जलवायु परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। वृक्ष केवल फल और छाया प्रदान नहीं करते, बल्कि वे वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड जैसी महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैसों को भी अवशोषित करते हैं। वर्तमान समय में, वृक्षों की अत्यधिक कटाई एक गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि इसके साथ ही हम प्राकृतिक ग्रीनहाउस गैस अवशोषक भी समाप्त कर रहे हैं। विशेष रूप से, ब्राजील और इंडोनेशिया जैसे देशों में वनों की कटाई ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन का प्रमुख कारण बन चुकी है। इन देशों में वनों की कटाई से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि हो रही है, जो जलवायु परिवर्तन को तीव्र कर रही है।

शहरीकरण: शहरीकरण और औद्योगिकीकरण ने लोगों के जीवन जीने के तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं। दुनिया भर की सड़कों पर वाहनों की संख्या काफी बढ़ गई है, और जीवनशैली में बदलाव ने हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में भी योगदान दिया है। बढ़ते शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण हवा में प्रदूषक गैसों की मात्रा बढ़ गई है, जो जलवायु परिवर्तन को गति प्रदान कर रही है। इसके अलावा, शहरीकरण से ऊर्जा की मांग में वृद्धि हुई है, जिससे अतिरिक्त ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन हो रहा है।

3.6जलवायुपरिवर्तन के प्रभाव

उच्च तापमान: पावर प्लांट, ऑटोमोबाइल, वनों की कटाई, और अन्य स्रोतों से होने वाला ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन पृथ्वी को तेजी से गर्म कर रहा है। पिछले 150 वर्षों में वैश्विक औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है, और वर्ष 2016 को सबसे गर्म वर्ष के रूप में रिकॉर्ड किया गया है। बढ़ते तापमान से संबंधित मौतों और बीमारियों, समुद्रस्तर की वृद्धि, तूफानों की तीव्रता में वृद्धि, और जलवायु परिवर्तन के अन्य खतरनाक परिणामों के लिए बढ़े हुए तापमान को एक प्रमुख कारण माना जा सकता है। शोध के अनुसार, यदि ग्रीनहाउस गैसों के

उत्सर्जन को गंभीरता से नहीं लिया गया और इसे कम करने के प्रयास नहीं किए गए, तो सदी के अंत तक पृथ्वी की सतह का औसत तापमान 3 से 10 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ सकता है।

वर्षा के पैटर्न में बदलाव: पिछले कुछ दशकों में बाढ़, सूखा, और बारिश की अनियमितताएं काफी बढ़ गई हैं। यह सभी जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप हो रहा है। कुछ स्थानों पर अत्यधिक वर्षा हो रही है, जबकि अन्य स्थानों पर पानी की कमी से सूखे की संभावना बढ़ गई है। इस प्रकार की अनियमितता ने कृषि और जल संसाधनों पर नकारात्मक प्रभाव डाला है, जिससे खाद्य सुरक्षा और जीवन की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।

समुद्र जल के स्तर में वृद्धि: वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण ग्लेशियर्स पिघल रहे हैं और समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। इससे समुद्र के पास स्थित द्वीपों के डूबने का खतरा भी बढ़ गया है। मालदीव जैसे छोटे द्वीपीय देशों के निवासी पहले से ही वैकल्पिक स्थानों की खोज में हैं। समुद्र जल स्तर की वृद्धि से तटीय क्षेत्रों में बाढ़ की घटनाएं बढ़ सकती हैं, जिससे कई समुदायों की सुरक्षा और जीवन यापन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

वन्यजीव प्रजातियों का नुकसान: तापमान में वृद्धि और वनस्पति पैटर्न में बदलाव ने कुछ पक्षी प्रजातियों को विलुप्त होने के लिए मजबूर कर दिया है। विशेषज्ञों के अनुसार, पृथ्वी की एक चौथाई प्रजातियाँ वर्ष-2050 तक विलुप्त हो सकती हैं। विशेष रूप से, ध्रुवीय भालू जैसी प्रजातियाँ समुद्र के स्तर में वृद्धि के कारण खतरे में हैं। ये प्रजातियाँ अपनी आदतों और आवासीय क्षेत्रों में परिवर्तन के कारण विलुप्त होने का जोखिम सामना कर रही हैं।

रोगों का प्रसार और आर्थिक नुकसान: जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप मलेरिया और डेंगू जैसी बीमारियाँ बढ़ सकती हैं, और इन्हें नियंत्रित करना मुश्किल हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन)WHO) के आंकड़ों के अनुसार, पिछले दशक में हीटवेव्स के कारण लगभग 150,000 से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है। जलवायु परिवर्तन से संबंधित बीमारियाँ, जैसे कि मच्छर जनित रोग, गर्मी की लहरों से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्याएँ, और अन्य संभावित स्वास्थ्य संकटों के लिए स्वास्थ्य प्रणाली को तैयार रहना आवश्यक है।

जंगलों में आग: जलवायु परिवर्तन के कारण लंबे समय तक चलने वाली हीटवेव्स ने जंगलों में आग लगने के लिए उपयुक्त गर्म और शुष्क परिस्थितियाँ पैदा की हैं। ब्राजील स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस रिसर्च)INPE) के आंकड़ों के अनुसार, जनवरी 2019 से अब तक ब्राजील के अमेज़न वन में कुल 74,155 बार वनाग्नि की घटनाएँ दर्ज की गई हैं। इसके साथ ही, अमेज़न वन में आग लगने की घटनाओं में पिछले वर्ष)2018) से 85 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।

3.7जलवायुपरिवर्तन और खाद्य सुरक्षा

फसल उत्पादन में कमी: जलवायु परिवर्तन के कारण फसल की पैदावार में कमी आ रही है, जिससे खाद्यान्न समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। अधिक तापमान, अत्यधिक वर्षा या सूखा, और मौसम की अनियमितताएँ फसलों की वृद्धि और उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं। इसके

अलावा, भूमि की गुणवत्ता में कमी और भूमि क्षति जैसी समस्याएँ भी सामने आ रही हैं, जो खाद्य उत्पादन को और अधिक चुनौतीपूर्ण बना रही हैं।

एशिया और अफ्रीका में खाद्य सुरक्षा: एशिया और अफ्रीका पहले से ही आयातित खाद्य पदार्थों पर निर्भर हैं। ये क्षेत्र तेजी से बढ़ते तापमान के कारण सूखे की चपेट में आ सकते हैं, जिससे खाद्य उत्पादन और आपूर्ति में और भी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। सूखा और जलवायु परिवर्तन की अन्य समस्याएँ इन क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा को गंभीर रूप से प्रभावित कर रही हैं।

फसल उत्पादन में गिरावट: IPCC की रिपोर्ट के अनुसार, कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में गेहूँ और मक्का जैसी फसलों की पैदावार में पहले से ही गिरावट देखी जा रही है। यह गिरावट जलवायु परिवर्तन, बढ़ते तापमान, और अन्य पर्यावरणीय कारकों के कारण हो रही है, जो फसलों की वृद्धि और उत्पादन को प्रभावित कर रहे हैं।

फसलों की पोषण गुणवत्ता में कमी: वातावरण में कार्बन की मात्रा बढ़ने से फसलों की पोषण गुणवत्ता में कमी आ रही है। उदाहरण के लिए, उच्च कार्बन वातावरण के कारण गेहूँ की पौष्टिकता में प्रोटीन की मात्रा 6% से 13%, जस्ता 4% से 7%, और लोहे की मात्रा 5% से 8% तक कम हो रही है। इस प्रकार की कमी से खाद्य पदार्थों की पोषण गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए चिंता का विषय है।

यूरोप में फसल उत्पादन में गिरावट:यूरोप में गर्मी की लहरों के कारण फसल उत्पादन में गिरावट देखी जा रही है। अत्यधिक गर्मी और मौसम की चरम परिस्थितियाँ फसलों की वृद्धि और गुणवत्ता को प्रभावित कर रही हैं, जिससे खाद्य उत्पादन में कमी आ रही है।

खाद्य सुरक्षा की अस्थिरता:ब्लूमबर्ग एग्रीकल्चर स्पॉट इंडेक्स)Bloomberg Agriculture Spot Index) 9 फसलों का एक मूल्यमापक है जो मई में एक दशक के सबसे निचले स्तर पर पहुँच गया था। इस सूचकांक की अस्थिरता खाद्यान्न सुरक्षा की अस्थिरता को प्रदर्शित करती है। फसल की कीमतों में अस्थिरता और आपूर्ति में कमी खाद्य सुरक्षा को और अधिक चुनौतीपूर्ण बना रही है, और वैश्विक खाद्य प्रणाली पर इसके नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं।

3.8जलवायुपरिवर्तन से निपटने हेतु वैश्विक प्रयास

अंतर) सरकारी पैनल-IPCC):संरचना और स्थापना: अंतर) सरकारी पैनल-IPCC) जलवायु परिवर्तन से संबंधित वैज्ञानिक आकलन करने हेतु संयुक्त राष्ट्र का एक निकाय है। इसमें 195 सदस्य देश शामिल हैं। इसे संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम)UNEP) और विश्व मौसम विज्ञान संगठन)WMO) द्वारा 1988 में स्थापित किया गया था।

उद्देश्य: IPCC का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन, इसके प्रभाव, और भविष्य के संभावित जोखिमों के साथसाथ अनुकूलन और जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए नीतिनिर्माताओं को - रणनीति बनाने के लिए नियमित वैज्ञानिक आकलन प्रदान करना है।IPCC का काम जलवायु

परिवर्तन पर आधारित वैज्ञानिक सूचना को संकलित और विश्लेषित करना और उसे नीति निर्माताओं और सार्वजनिक क्षेत्रों के साथ साझा करना है।

वैज्ञानिक आकलन: IPCC आकलन सरकारों को वैज्ञानिक सूचनाएँ प्रदान करता है, जिसका उपयोग जलवायु परिवर्तन के प्रति प्रभावी नीतियाँ विकसित करने में किया जा सकता है। यह आकलन जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वार्ताओं और समझौतों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं में भूमिका: IPCC के आकलन अंतर्राष्ट्रीय जलवायु वार्ताओं में एक केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, जैसे कि पेरिस समझौता)Paris Agreement) और अन्य जलवायु परिवर्तन पर आधारित वैश्विक समझौतों में। यह संगठन वैश्विक प्रयासों को समन्वित करने और देशों को जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेमवर्क सम्मेलन)UNFCCC):उद्देश्य: UNFCCC (United Nations Framework Convention on Climate Change) एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जिसका मुख्य उद्देश्य वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करना है। यह समझौता जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और स्थिर जलवायु प्रणाली बनाए रखने के लिए वैश्विक स्तर पर प्रयासों को समन्वित करता है।

स्थापना और कार्यान्वयन: UNFCCC की स्थापना जून 1992 में पृथ्वी सम्मेलन)Earth Summit) के दौरान की गई थी। इस समझौते पर विभिन्न देशों द्वारा हस्ताक्षर के बाद 21 मार्च 1994 को इसे लागू किया गया।

सालाना बैठकों का आयोजन: UNFCCC की वार्षिक बैठकों का आयोजन 1995 से लगातार किया जा रहा है। इन बैठकों का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक वार्ता और समझौते को आगे बढ़ाना है। इसके तहत ही वर्ष 1997 में क्योटो प्रोटोकॉल)Kyoto Protocol) को अपनाया गया, जिसमें विकसित देशों एनेक)्स-1 में शामिल देशोंको ग्रीनहाउस गैसों को (नियंत्रित करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए गए।

क्योटो प्रोटोकॉल: क्योटो प्रोटोकॉल UNFCCC के तहत एक महत्वपूर्ण समझौता है, जिसने 40 औद्योगिक देशों को ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किए। ये देश -एनेक्स"1" सूची में शामिल हैं और उन्हें अपने उत्सर्जन को निर्धारित लक्ष्यों तक सीमित करने की जिम्मेदारी दी गई है।

कॉन्फ्रेंस ऑफ द पार्टीज़)COP): UNFCCC की वार्षिक बैठक को "कॉन्फ्रेंस ऑफ द पार्टीज़")COP) के नाम से जाना जाता है। ये बैठकें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधियों के साथ होती हैं और इनमें जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक नीतियों और समझौतों पर चर्चा की जाती है। COP की बैठकें जलवायु परिवर्तन से संबंधित रणनीतियों और कार्य योजनाओं को अंतिम रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

पेरिस समझौता:

उद्देश्य: पेरिस समझौता जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है, जिसका उद्देश्य वैश्विक तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस से कम रखना है और 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के प्रयासों को बढ़ावा देना है।

स्थापना: पेरिस समझौता पर 30 नवंबर से 11 दिसंबर 2015 तक पेरिस में आयोजित COP21 सम्मेलन के दौरान 195 देशों के प्रतिनिधियों ने चर्चा की। इस सम्मेलन को पेरिस " के नाम से भी जाना जाता है। "सम्मेलन

समझौते की सामग्री: पेरिस समझौता 32 पृष्ठों और 29 लेखों वाला है। इसमें ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए लक्ष्यों और योजनाओं को निर्धारित किया गया है। यह समझौता ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए एक ऐतिहासिक समझौते के रूप में मान्यता प्राप्त है।**लक्ष्य:** पेरिस समझौते का मुख्य लक्ष्य ग्लोबल वार्मिंग को 2 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करना और तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के प्रयासों को बढ़ावा देना है। इसके तहत, देशों को अपनी राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान)NDCs) प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है, जिनमें उनके द्वारा उत्सर्जन को कम करने के लिए उठाए जाने वाले कदम शामिल होते हैं।

रिपोर्टिंग और निगरानी: देशों को अपने उत्सर्जन को कम करने के प्रयासों और प्रगति की नियमित रिपोर्टिंग करनी होती है। इसके अलावा, देशों को अपनी रिपोर्टों और योजनाओं की निगरानी और समीक्षा की जाती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वैश्विक लक्ष्यों की दिशा में प्रगति हो रही है।

आर्थिक सहायता: पेरिस समझौते के तहत, विकसित देशों को विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करने की जिम्मेदारी दी गई है। पेरिस समझौता को जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है, जो वैश्विक स्तर पर सामूहिक कार्रवाई और सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

3.9जलवायु परिवर्तन और भारत के प्रयास: भारत ने जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कई महत्वपूर्ण पहल की हैं। 2008 में शुरू की गई **राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC)** का उद्देश्य लोगों, सरकार की एजेंसियों, वैज्ञानिकों, उद्योगों और समुदायों को जलवायु परिवर्तन के खतरे और इससे निपटने के उपायों के बारे में जागरूक करना है। इस योजना में कुल आठ प्रमुख मिशन शामिल हैं, जिनमें राष्ट्रीय सौर मिशन, ऊर्जा दक्षता के लिए मिशन, स्थिर आवास, जल प्रबंधन, हिमालयी पारिस्थितिक तंत्र का संरक्षण, हरित भारत, स्थिर कृषि, और जलवायु परिवर्तन पर नीति ज्ञान शामिल हैं। इसके अलावा, भारतीय राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों ने राज्य कार्य योजनाएं (SAPCC) तैयार की हैं, जो NAPCC के उद्देश्यों के अनुरूप हैं। इसके साथ ही,

अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (ISA) की स्थापना 30 नवंबर 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन के दौरान भारत और फ्रांस द्वारा की गई थी। ISA एक संधि आधारित अंतर-सरकारी संगठन है जिसका मुख्यालय गुरुग्राम, हरियाणा में स्थित है। इसका उद्देश्य वैश्विक स्तर पर 1000 गीगावाट से अधिक सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता प्राप्त करना और 2030 तक सौर ऊर्जा में निवेश के लिए लगभग $1000 बिलियन जुटाना है। ISA की पहली बैठक नई दिल्ली में आयोजित की गई थी। ये प्रयास भारत के जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उठाए गए महत्वपूर्ण कदम हैं और वैश्विक सहयोग को प्रोत्साहित करने की दिशा में योगदान देते हैं।

3.10सारांश

ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन केवल स्थानीय मुद्दे नहीं हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर हल किया जा सकता है। ये अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे सभी को प्रभावित कर रहे हैं और पूरी मानव जाति के स्वास्थ्य पर इनका बड़ा प्रभाव है। इस मुद्दे पर लोगों को शिक्षित करना बेहद ज़रूरी है क्योंकि यह ज़्यादातर मानव निर्मित घटना और संकट है और कम से कम आंशिक रूप से नुकसान को कम करने के लिए मनुष्य ही ज़िम्मेदार है। जबकि समग्र जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए विकास की ज़रूरत है, यह भी ध्यान में रखना होगा कि विकास को वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को भी बनाए रखना है। विकास के लिए हरित पहल विकसित करने और उत्पादन और उपभोग पैटर्न में बुनियादी बदलाव लाने की ज़रूरत है। जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक कार्रवाई को ध्यान में रखते हुए, भारत को भी एक ऐसी नीति विकसित करने की ज़रूरत है जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए अपने संसाधनों को बनाए रखे।

3.11शब्दावली

1. संसाधन (Resources) - प्राकृतिक या कृत्रिम पदार्थ जो मानव उपयोग के लिए उपलब्ध हैं।
2. प्रदूषण (Pollution) - वायुमंडल, जल, और भूमि में हानिकारक तत्वों का मिश्रण जो स्वास्थ्य और पर्यावरण को प्रभावित करता है।
3. पर्यावरणीय प्रबंधन (Environmental Management) - प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण की देखभाल और संरक्षण के लिए अपनाए गए उपाय और विधियाँ।
4. वैश्विक वार्मिंग (Global Warming) - पृथ्वी के वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती मात्रा के कारण तापमान में वृद्धि।

3.12कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण: भारतीय परिप्रेक्ष्य" लेखक: डॉ. मोहनलाल यादव
2. "भारत में जनसंख्या नीति और विकास" लेखक: डॉ. रजनी पाटिल
3. "सतत विकास के सिद्धांत और भारतीय संदर्भ" लेखक: डॉ. विजय शर्मा

➢ बोध प्रश्न

1. ग्लोबल वार्मिंग से आप क्या समझते हैं? यह जलवायु परिवर्तन को कैसे प्रभावित करता है?
2. जलवायु परिवर्तन के संकेत क्या हैं? वे पृथ्वी पर जीवन के पैटर्न को कैसे बदलते हैं?
3. 1992 के जलवायु परिवर्तन सम्मेलन पर एक नोट लिखें। इसने पर्यावरणीय मुद्दों को कैसे संबोधित किया है?
4. क्योटो प्रोटोकॉल पर एक संक्षिप्त नोट लिखें। उत्सर्जन में कमी के लिए वैश्विक मानक निर्धारित करने में यह कितना प्रभावी रहा है?
5. जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ा है? अपने शब्दों में लिखें।
6. ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए भारत द्वारा क्या कदम उठाए जा सकते हैं?

खंड 05 - जनसंख्या एवं संपोषित विकास

इकाई - 04 संपोषित विकास

इकाई की रूपरेखा

4.0प्रस्तावना
4.1 संपोषित विकास
4.2 सतत विकास की उत्पत्ति
4.3सतत विकास की परिभाषाएँ (आयाम और अवधारणाएँ)
4.4स्थिरता, विकास और सतत विकास का अर्थ
4.5सतत विकास के उद्देश्य
4.6सतत विकास के लक्ष्य
4.7सतत विकास प्राप्त करने के उपाय
4.9सतत विकास के उदाहरण
4.9पर्यावरण संकट क्या है?
4.10संधारणीय और गैर-संधारणीय गतिविधियाँ
4.11 सारांश
4.12 उपयोगी शब्दावली:
4.13उपयोगी / सहायकग्रन्थ

4.0प्रस्तावना सतत विकास आज अंतर्राष्ट्रीय विकास सम्मेलनों और कार्यक्रमों का सबसे राजनीतिक शब्द है। इसका क्या अर्थ है? हम इस प्रश्न का उत्तर इकाई की शुरुआत में ही देते हैं। आप पाएंगे कि यह एक बहुआयामी अवधारणा है और इसकी व्याख्या और समझ अक्सर विषय-वस्तु और संदर्भ-विशिष्ट होती है। सतत विकास प्राकृतिक संसाधनों के कम होने और उसके बाद आर्थिक गतिविधियों और उत्पादन प्रणालियों के धीमे होने या बंद होने के डर से उभरा है। यह उन कुछ लोगों द्वारा पृथ्वी के कीमती और सीमित संसाधन आधार के लालची दुरुपयोग का परिणाम है, जिनका उत्पादन प्रणालियों पर नियंत्रण था। यह अवधारणा राष्ट्रीय, सामुदायिक या व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक और आर्थिक प्रणालियों, नीतियों, कार्यक्रमों और कार्यों में परिवर्तन की वांछनीय दिशा पर बहस करने और निर्णय लेने के लिए एक व्यापक ढांचे के रूप में उभरी है। यह 1960 के दशक में विकसित हुआ जब लोगों को पर्यावरण पर औद्योगीकरण के हानिकारक प्रभावों के बारे में पता चला। आपको उस संदर्भ को समझने की आवश्यकता है जिसमें यह हुआ ताकि आप समझ सकें कि यह हम सभी के लिए इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है।

4.1 संपोषित विकास

संपोषित विकास का उद्देश्य ऐसी विकास प्रक्रियाओं को लागू करना है जो वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करें, बिना भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को खतरे में डाले। यह

आर्थिक विकास को पर्यावरणीय क्षति के साथ जोड़ने के बजाय, एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाता है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग और पर्यावरण की गुणवत्ता का संरक्षण शामिल हो। यह सुनिश्चित करता है कि विकास की गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त न करें और प्रदूषण को बढ़ावा न दें।

4.2 सतत विकास की उत्पत्ति

सतत विकास की अवधारणा की उत्पत्ति 1960 के दशक में देखी जा सकती है, जब लेखिका और वैज्ञानिक रेचल कार्सन ने अपनी पुस्तक द साइलेंट स्प्रिंग (1962) प्रकाशित की थी। इस पुस्तक ने कीटनाशक डीडीटी (डाइक्लोरो डाइफेनिल ट्राइक्लोरोइथेन) के उपयोग से वन्यजीवों के विनाश की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। यह कार्य पर्यावरण, अर्थव्यवस्था और सामाजिक कल्याण के बीच अंतर्संबंधों को समझने में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। धीरे-धीरे, इस अवधि में, वैश्विक पर्यावरणीय सीमाओं का डर उभरने लगा। इसके तुरंत बाद, पशु जनसंख्या जीवविज्ञानी पॉल एर्लिच ने मानव जनसंख्या, संसाधन शोषण और पर्यावरण के बीच संबंध पर पुस्तक पॉपुलेशन बम (1968) प्रकाशित की। 1969 में, एक गैर-लाभकारी संगठन फ्रेंड्स ऑफ़ द अर्थ का गठन किया गया, जो पर्यावरण को क्षरण से बचाने और नागरिकों को निर्णय लेने में आवाज़ उठाने के लिए सशक्त बनाने के लिए समर्पित था।

उत्तरी देशों की सरकारों ने यह पहचानना शुरू कर दिया कि औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रही है। उदाहरण के लिए, स्वीडिश सरकार अम्लीय वर्षा से अपनी झीलों को होने वाले नुकसान के बारे में चिंतित थी। यह बारिश पड़ोसी औद्योगिक राज्यों द्वारा किए गए अत्यधिक प्रदूषण का परिणाम थी। 1971 में, OECD परिषद ने एक प्रदूषण भुगतान सिद्धांत लागू किया, जिसमें कहा गया कि प्रदूषण फैलाने वाले (देशों) को लागत का भुगतान करना चाहिए। मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (MIT) के युवा वैज्ञानिकों (क्लब ऑफ रोम) के एक समूह द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट, लिमिट्स टू ग्रोथ (1972) ने तुरंत दुनिया भर में तहलका मचा दिया और मीडिया में इसकी खूब चर्चा हुई। इसने भविष्यवाणी की कि अगर विकास को धीमा नहीं किया गया तो इसके भयानक परिणाम होंगे।

स्टॉकहोम (1972) में संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन (UNCHE) का आयोजन किया गया। पहली बार, यह विचार कि पर्यावरण एक महत्वपूर्ण विकास मुद्दा है, अंतरराष्ट्रीय एजेंडे में रखा गया। इसने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) की स्थापना की। UNEP के पहले निदेशक, मौरिस स्ट्रॉन्ग ने 'इको डेवलपमेंट' शब्द गढ़ा, जिसने विकास को पर्यावरण संरक्षण के साथ एकीकृत किया। तब से, सतत विकास की दिशा में कई मील के पत्थर तय हुए हैं।

'सतत समाज' की अवधारणा मानव विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर एक अध्ययन सम्मेलन में उभरी, जिसे विश्व चर्च परिषद (1974) द्वारा आयोजित किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि यह अवधारणा पर्यावरणीय परिस्थितियों से संबंधित नहीं थी, बल्कि न्यायसंगत वितरण के सिद्धांत से शुरू हुई, जो बाद में 1987 में ब्रुंडलैंड रिपोर्ट की आधारशिला बन गई।

'सतत समाज' में लोकतांत्रिक भागीदारी की अवधारणा भी शामिल थी, जो लगभग बीस साल बाद रियो अर्थ समिट (1992) में महत्वपूर्ण हो गई। एक और शब्द, "सतत विकास", दो विद्वानों, ईवा बालफोर, एक मृदा वैज्ञानिक और वेक जैक्सन, अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण और विकास संस्थान (IIED) के एक आनुवंशिकीविद् द्वारा अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (IUCN) द्वारा प्रकाशित विश्व संरक्षण रणनीति (WCS) (1980) में उभरा। 1992 में रियो डी जेनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीईडी) के दौरान, यह शब्द सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ), उद्योगपतियों, वैज्ञानिकों, सामुदायिक समूहों और जमीनी स्तर के संगठनों को एक साथ लाते हुए विकास की एक पूर्ण अवधारणा में व्यापक हो गया। यह सबसे महत्वपूर्ण अंतःविषय अवधारणाओं में से एक बन गया जो पर्यावरण, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, जीवन विज्ञान और लिंग पर अध्ययनों में शामिल हो गया।

2000 तक, सतत विकास की अवधारणा सभी अंतरराष्ट्रीय संगठनों में एक मार्गदर्शक दस्तावेज़ के रूप में दृढ़ता से स्थापित हो गई। तब से संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देश सतत विकास कार्यक्रमों और रणनीतियों की राष्ट्रीय स्थिति पर रिपोर्ट प्रकाशित कर रहे हैं और उन्हें संयुक्त राष्ट्र के विशेष रूप से बनाए गए निकाय को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसे सतत विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र आयोग (सीएसडी) कहा जाता है। इस शब्द को विभिन्न उपयोगकर्ता समूहों के लिए 'टिकाऊ मानव विकास', 'टिकाऊ आर्थिक विकास', 'टिकाऊ सामाजिक-आर्थिक विकास' और 'टिकाऊ स्थानीय शासन' के रूप में संशोधित किया गया है

4.3सतत विकास की परिभाषाएँ (आयाम और अवधारणाएँ)

विश्व संरक्षण रणनीति रिपोर्ट में सतत विकास को इस प्रकार परिभाषित किया गया है

'संरक्षण और विकास का एकीकरण यह सुनिश्चित करने के लिए कि ग्रह में किए गए संशोधन वास्तव में सभी लोगों के अस्तित्व और कल्याण को सुरक्षित करते हैं'। विकास को 'जीवमंडल के संशोधन और मानवीय, वित्तीय, सजीव और निर्जीव संसाधनों के उपयोग को मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने और मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए' के रूप में परिभाषित किया गया है। जब तक संसाधनों का संरक्षण नहीं किया जाता, विकास एक खतरा साबित हो सकता है और इसलिए रिपोर्ट में संसाधनों के संरक्षण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है 'जीवमंडल के मानव उपयोग का प्रबंधन ताकि यह वर्तमान पीढ़ियों को सबसे बड़ा संधारणीय लाभ दे सके और साथ ही भावी पीढ़ी की जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करने की क्षमता बनाए रखे'। इस वाक्यांश ने ब्रुन्डलैंड रिपोर्ट में ध्यान आकर्षित किया।

ब्रुन्डलैंड रिपोर्ट: 1983 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने नॉर्वे की प्रधानमंत्री श्रीमती ग्रो हार्लेम ब्रुन्डलैंड की अध्यक्षता में विश्व पर्यावरण और विकास आयोग (WCED) की स्थापना की। आयोग की रिपोर्ट को हमारा साझा भविष्य (1987) के रूप में प्रकाशित किया गया था। इस रिपोर्ट में दी गई सतत विकास की परिभाषा में दो मुख्य अवधारणाएँ शामिल हैं:

1. 'आवश्यकताओं' की अवधारणा, विशेष रूप से, दुनिया के गरीबों की आवश्यक आवश्यकताएँ, जिन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
2. वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने की पर्यावरण की क्षमता पर प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठनों की स्थिति द्वारा लगाई गई सीमाओं का विचार।

रिपोर्ट ने इस बात पर जोर दिया कि सतत विकास एक पीढ़ी के भीतर (अंतर-पीढ़ीगत) और पीढ़ियों के बीच (अंतर-पीढ़ीगत) सामाजिक समानता का मामला है। आयोग ने पर्यावरण संबंधी निर्णयों को केंद्रीय आर्थिक निर्णय लेने में एकीकृत करने के महत्व पर जोर दिया। इसने तर्क दिया कि अत्यधिक गरीबी से चिह्नित दुनिया में एक स्वस्थ पर्यावरण संभव नहीं था, जिसने लोगों को अल्पकालिक अस्तित्व के लिए पर्यावरण के लिए विनाशकारी गतिविधियों का अभ्यास करने के लिए मजबूर किया। इसलिए इसने व्यापक रूप से आर्थिक विकास पर जोर दिया। ब्रुंडलैंड रिपोर्ट को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया क्योंकि इसे ऐसे समय में जारी किया गया था जब अंटार्कटिका (1985) पर एक बड़ा ओजोन छिद्र खोजा गया था और 1986 में चेरनोबिल परमाणु दुर्घटना हुई थी जिसने पूरे यूरोप में रेडियोधर्मी परमाणु पतन फैलाया था।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन: ब्रुन्डलैंड आयोग की रिपोर्ट का प्रत्यक्ष परिणाम रियो डी जेनेरियो में आयोजित UNCED था, जिसे लोकप्रिय रूप से 'पृथ्वी शिखर सम्मेलन' के रूप में जाना जाता है। इस सम्मेलन में यह घोषित किया गया कि 'विकास के अधिकार को पूरा किया जाना चाहिए ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ियों की विकासात्मक और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा किया जा सके।' सम्मेलन के परिणाम निम्नलिखित दस्तावेज थे:

1. जलवायु परिवर्तन पर रूपरेखा सम्मेलन
2. जैविक विविधता पर सम्मेलन
3. वन सिद्धांतों पर वक्तव्य
4. रियो घोषणा
5. एजेंडा 21

जलवायु परिवर्तन पर रूपरेखा सम्मेलन (FCCC): रूपरेखा जीवाश्म ईंधन के उपयोग की सीमाओं से संबंधित थी। यह ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले CFC को कम करने के लिए मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के समझौते तक पहुँचने की सफलता से प्रेरित था। रूपरेखा ने स्वीकार किया कि जलवायु परिवर्तन (ग्रीन हाउस गैसों के कारण) एक गंभीर समस्या थी। इसमें कहा गया कि औद्योगिक देशों को 2000 तक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को 1990 के स्तर तक कम करने के लिए आगे आना चाहिए, जबकि दक्षिणी देशों के लिए कोई लक्ष्य नहीं था।

जैविक विविधता पर कन्वेंशन (सीबीडी): इसने पुष्टि की कि देशों के पास अपने क्षेत्र में जैविक संसाधनों पर 'संप्रभु अधिकार' हैं जिन्हें पारस्परिक रूप से सहमत शर्तों पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साझा किया जाना चाहिए। शर्तों में बौद्धिक संपदा के रूप में स्वदेशी ज्ञान की

मान्यता शामिल थी। वन सिद्धांतों पर वक्तव्य: उष्णकटिबंधीय वनों वाले देशों ने अपने जंगलों पर अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप को असहनीय माना। इसलिए, यह दस्तावेज़ लाया गया जिसमें वनों पर राष्ट्रीय संप्रभुता पर जोर दिया गया।

रियो घोषणा: इस घोषणा में सत्ताईस सिद्धांत थे। उन्होंने विकास, प्राकृतिक संसाधनों पर राष्ट्रीय संप्रभुता और राज्यों के बीच सहयोग पर जोर दिया। वैज्ञानिक और तकनीकी नवाचार और पर्यावरण संरक्षण अन्य मुद्दे थे जिन पर प्रकाश डाला गया।

एजेंडा 21: यह पाँच सौ पृष्ठों का एक दस्तावेज़ है। इसमें नीचे से ऊपर की ओर दृष्टिकोण है और बड़े राज्य और सरकारी संस्थानों और परियोजनाओं के बजाय नागरिकों, विशेष रूप से महिलाओं, समुदायों और गैर सरकारी संगठनों की भूमिका और भागीदारी पर जोर दिया गया है। सतत विकास लाने में बाजार, व्यापार और व्यवसाय की भूमिका पर जोर दिया गया है। एजेंडा 21 ज्ञान सृजन संस्थानों के महत्व को भी सामने लाता है। एजेंडा 21 के कार्यान्वयन की देखरेख सीएसडी द्वारा की जाती है, जो न्यूयॉर्क में तीन सप्ताह के लिए सालाना बैठक करती है।

सतत विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन (WSSD): UNCED के दस साल बाद, सतत विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन 2002 में जोहान्सबर्ग में हुआ। इस शिखर सम्मेलन को रियो +10 भी कहा जाता है। देशों से 2015 तक मछली पकड़ने को रोकने का आग्रह किया गया और 2012 तक समुद्री संरक्षित क्षेत्र स्थापित करने की नई प्रतिबद्धता जताई गई।

4.4स्थिरता, विकास और सतत विकास का अर्थ

प्रकृति मानव समाज और अर्थव्यवस्थाओं को जटिल जीवन समर्थन प्रणाली, हवा, पानी, भोजन और जीवित रहने के लिए उपयुक्त जलवायु प्रदान करती है। यह भौतिक संसाधन भी प्रदान करती है जो अर्थव्यवस्थाओं के निर्वाह के लिए आवश्यक हैं। प्रकृति ने अनादि काल से पृथ्वी पर जीवन का समर्थन और रखरखाव किया है और भविष्य में भी ऐसा करना जारी रखना चाहिए। इसे प्रकृति या पारिस्थितिकी तंत्र या पर्यावरण की स्थिरता के रूप में जाना जाता है। हालाँकि, हम अपनी लालची गतिविधियों के माध्यम से प्राकृतिक प्रणालियों की स्थिरता में हस्तक्षेप कर रहे हैं और यदि हम उसी रास्ते पर चलते रहेंगे, तो न केवल अन्य जीवन रूप बल्कि मानव जाति का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा। प्रभावों को अवशोषित करने की प्रकृति की क्षमता की सीमाएँ हैं। एक बार प्रकृति की प्रारंभिक अवस्था में परिवर्तन होने के बाद, यह जल्दी से प्रारंभिक अवस्था में वापस नहीं आ सकती है। प्रकृति में तीव्र परिवर्तन का सामना करने की सीमित क्षमता है। इस प्रकार, आज, मानव जाति के सामने चुनौती यह है कि हम किस अवस्था में रहना चाहते हैं और प्रकृति की प्रक्रियाओं में निहित सीमाओं के भीतर, प्रकृति की वहन क्षमता के भीतर रहना जारी रखें।

स्थिरता Sustainability

'स्थिरता' शब्द को विभिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है, जैसे:

- स्थिरता एक ऐसी प्रक्रिया या स्थिति को संदर्भित करती है जिसे अनिश्चित काल तक बनाए रखा जा सकता है।
- प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग ऐसे तरीकों से किया जाना चाहिए जिससे पृथ्वी की वहन करने और उत्पादक क्षमता का अत्यधिक दोहन करके पारिस्थितिक ऋण न पैदा हो।
- स्थिरता के लिए न्यूनतम आवश्यक शर्त कुल प्राकृतिक पूंजी स्टॉक को वर्तमान स्तर पर या उससे ऊपर बनाए रखना है।

'स्थिरता' शब्द का उपयोग विकास नीतियों के लौकिक और आजीविका संदर्भ को प्रदर्शित करने के लिए भी किया जाता है। लौकिक संदर्भ कालानुक्रमिक परिप्रेक्ष्य को संदर्भित करता है जिसमें समुदाय अपनी सांस्कृतिक और आर्थिक अखंडता को बनाए रखते हैं। विकास नीतियों का आजीविका संदर्भ मौजूदा मूल्यों का संरक्षण है जो बाहरी आर्थिक ताकतों से खतरे में हैं जिससे एक नाजुक प्राकृतिक संसाधन संतुलन ढह रहा है। अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (आईयूसीएन) द्वारा सतत जीवन के लिए रणनीति (1991) में कहा गया है कि 'सतत उपयोग का अर्थ है किसी जीव, पारिस्थितिकी तंत्र या अन्य नवीकरणीय संसाधन का उसके नवीनीकरण की क्षमता के भीतर दर पर उपयोग'। अर्थशास्त्री हरमन डेली ने स्थिरता बनाए रखने के लिए विनिर्देश प्रस्तुत किए हैं। उनका मत है कि:

• नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग की दरें पुनर्जनन दरों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

• गैर-नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग की दरें नवीकरणीय विकल्पों के विकास की दरों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

• प्रदूषण उत्सर्जन की दरें पर्यावरण की आत्मसात करने की क्षमता से अधिक नहीं होनी चाहिए।

विकास

विकास' शब्द का अर्थ व्यापक अर्थ में सामाजिक और आर्थिक सुधार है। दुनिया के सभी निवासियों के लिए अवसर, समृद्धि और विकल्प बनाने के लिए इसकी आवश्यकता है और इसे इस तरह से आगे बढ़ना चाहिए कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी विकल्प उपलब्ध रहें। यह स्वायत्तता और स्वतंत्रता की दिशा में मानव और प्राकृतिक पर्यावरण के समग्र विकास को संदर्भित करता है। यह एक वृद्धि पैटर्न को इंगित करता है, जो राष्ट्रों को उनके आंतरिक और बाहरी वातावरण में अधिक निर्णायक बनाता है।

सतत विकास

सतत विकास की अवधारणा को पर्यावरणवादी विचारों को आर्थिक विकास नीति के केंद्रीय विषय में लाने के लिए परिकल्पित किया गया था। इसने उन गैर-संवहनीय विकास रणनीतियों को संशोधित करने का प्रयास किया, जिनका अनुसरण किया जा रहा था। सतत विकास 'स्थायित्व' और 'विकास' के दो शब्दों को जोड़ता है, जो विकास के एक पैटर्न को इंगित करता है, जो पृथ्वी के संसाधनों के साथ अपने कुल संबंधों के संबंध में अपने लोगों की देखभाल

करने की राष्ट्रीय क्षमताओं को मजबूत करता है। सतत विकास की सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली परिभाषा ब्रुंडलैंड आयोग ने अपनी रिपोर्ट हमारा साझा भविष्य (1987) में दी थी। इसने सतत विकास को 'विकास के रूप में परिभाषित किया, जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करता है'। तब से, सतत विकास की कई व्याख्याएँ सामने आई हैं,

उदाहरण के लिए:

- पारिस्थितिकी तंत्र को सहारा देने की वहन क्षमता के भीतर रहते हुए मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना।
- आर्थिक विकास जो दुनिया के सीमित प्राकृतिक संसाधनों और वहन क्षमता को और नष्ट किए बिना सभी लोगों के लिए निष्पक्षता और अवसर प्रदान करता है, न कि केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के लिए।
- सतत विकास में आर्थिक और सामाजिक विकास शामिल है जो प्राकृतिक पर्यावरण और सामाजिक समानता की रक्षा और वृद्धि करता है।

इस प्रकार, सतत विकास मनुष्यों और उनके पर्यावरण के बीच संबंधों पर ध्यान केंद्रित करता है और चेतावनी देता है कि मनुष्य विकास को आगे नहीं बढ़ा सकते, जो प्रकृति के खिलाफ है क्योंकि अंत में हमेशा प्रकृति ही जीतती है। सतत विकास प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण के संरक्षण और ऊर्जा, अपशिष्ट और परिवहन के प्रबंधन को प्रोत्साहित करता है।सतत विकास उत्पादन और उपभोग के पैटर्न पर आधारित विकास है जिसे मानव या प्राकृतिक पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना भविष्य में भी जारी रखा जा सकता है। इसमें समाज के सभी वर्गों में आर्थिक गतिविधि के लाभों को समान रूप से साझा करना शामिल है, ताकि मनुष्यों की भलाई बढ़े, स्वास्थ्य की रक्षा हो और गरीबी कम हो। यदि सतत विकास को सफल होना है, तो हमारी वर्तमान जीवनशैली और पर्यावरण पर उनके प्रभाव के संबंध में व्यक्तियों के साथ-साथ सरकारों के दृष्टिकोण को बदलना होगा।

4.5 सतत विकास के उद्देश्य

सतत विकास के कुछ दूरदर्शी और व्यापक उद्देश्य हैं, जो वर्ग, जाति, भाषा और क्षेत्रीय बाधाओं से परे हैं। ये उद्देश्य शोषणकारी मानसिकता के चंगुल से अपनी अर्थव्यवस्था को मुक्त करने का एक चार्टर हैं, जिसने राष्ट्रों को भ्रष्ट कर दिया है और उनकी जैव संपदा को चुनौती दी है। ये उद्देश्य हैं:

1. समानता और न्याय के साथ अधिकतम लोगों के जीवन स्तर को बनाए रखना। निर्णय लेने में सीमा पार और संचयी प्रभावों पर विचार किया जाना चाहिए।
2. पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों को दुरुपयोग और बेकार उपभोग से बचाना और संरक्षित करना। इसके लिए स्वस्थ समुदायों के आधार के रूप में भूमि और इसकी विविधता का सम्मान करना आवश्यक है।

3. नई तकनीक और वैज्ञानिक तकनीकों का आविष्कार करना, जो प्रकृति के नियमों के साथ मिलकर काम करें और इसके विपरीत न हों। विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपनाई गई विकास नीतियों से होने वाले जोखिमों और लाभों को साझा करने पर विचार करने की आवश्यकता है।
4. विविधता का सम्मान करना और स्थानीय तथा स्वदेशी समुदायों को अधिक जमीनी स्तर पर उन्मुख तथा प्रासंगिक विकास नीतियों के लिए शामिल करना। इसमें नीतियों और कार्यक्रमों के विकास के दौरान आर्थिक व्यवहार्यता, संस्कृति और पर्यावरणीय मूल्यों पर विचार करना शामिल होगा।
5. शासन संस्थाओं का विकेंद्रीकरण करना और उन्हें अधिक लचीला, पारदर्शी और लोगों के प्रति जवाबदेह बनाना। उनके पास खुला, समावेशी और भागीदारीपूर्ण निर्णय लेने की व्यवस्था होनी चाहिए।
6. अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की योजना बनाना, जो गरीब देशों की आवश्यकताओं को पहचानें और उनकी प्राकृतिक संपदा और पर्यावरण को नष्ट किए बिना उनके विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में उनका समर्थन करें।
7. दुनिया के सभी देशों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की तलाश करें क्योंकि केवल शांति ही उन्हें मानवता के व्यापक हितों के लिए नवाचार करने की जगह दे सकती है। इसके लिए संधियों और प्रत्ययी दायित्वों और अंतरराष्ट्रीय समझौतों का सम्मान करने की आवश्यकता हो सकती है।
8. सतत विकास एक मूल्य-आधारित अवधारणा है, जो पारस्परिक सह-अस्तित्व और दूसरों के प्रति सम्मान के सार्वभौमिक विषयों को अपील करती है। यह एक निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है जो सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और राजनीतिक चिंताओं को एक साथ लाती है। यह परिवर्तन की एक वांछित दिशा है और राष्ट्रों, समुदायों और व्यक्तियों द्वारा विकासात्मक कार्यों को तय करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करती है

4.6सतत विकास के लक्ष्य

1. **पर्यावरणीय समस्याओं को कम करना**: सतत विकास का प्राथमिक लक्ष्य उन गतिविधियों और नीतियों को अपनाना है जो पर्यावरणीय समस्याओं जैसे जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, और वन क्षति को कम करें। इसका मतलब है कि हमें उन उपायों को लागू करना होगा जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाएं, ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों का उपयोग बढ़ाएं, और अपशिष्ट प्रबंधन को सुधारें।
2. **भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की गुणवत्ता बनाए रखना**: सतत विकास का दूसरा लक्ष्य यह है कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए, भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ और स्थायी पर्यावरण सुनिश्चित किया जाए। इसमें शामिल

हैं: भूमि, जल, और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जिससे कि आने वाली पीढ़ियों को भी ये संसाधन उपलब्ध रह सकें।

4.7सतत विकास प्राप्त करने के उपाय

1. **मानवीय गतिविधियों को नियंत्रित करना**: सतत विकास प्राप्त करने के लिए, हमें मानवीय गतिविधियों जैसे औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, और अत्यधिक संसाधन उपयोग को नियंत्रित करना होगा। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि ये गतिविधियाँ पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव न डालें और प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन न हो।
2. **तकनीकी विकास को प्रभावी बनाना**: तकनीकी विकास को इस तरह से लागू करना चाहिए कि यह अधिक प्रभावी हो और संसाधनों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करे। यह ऊर्जा दक्षता बढ़ाने, कचरे को पुनः उपयोग में लाने, और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को अपनाने पर केंद्रित होना चाहिए।
3. **उपभोग की दर को नियंत्रित करना**: उपभोग की दर को नियंत्रित करना आवश्यक है, ताकि यह प्राकृतिक संसाधनों के उत्पादन की दर से अधिक न हो। इसका मतलब है कि हमें अपने उपभोग की आदतों को बदलना होगा और पुनः उपयोग और रिसाइक्लिंग पर जोर देना होगा।
4. **नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग बढ़ाना**: उपभोग की दर को नवीकरणीय संसाधनों के उत्पादन की दर के अनुरूप बनाए रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, सौर और पवन ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना, ताकि ये ऊर्जा स्रोत स्थायी रूप से उपलब्ध रहें और पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता कम हो।
5. **प्रदूषण को कम करना**: सभी प्रकार के प्रदूषण को कम करने के उपाय लागू किए जाने चाहिए, जैसे वायु, जल, और भूमि प्रदूषण। इसमें शामिल हैं: कचरे का सही प्रबंधन, औद्योगिक उत्सर्जन को नियंत्रित करना, और स्वच्छ प्रौद्योगिकियों को अपनाना।
6. **प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग**: प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण और जिम्मेदार उपयोग सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है। इसका मतलब है कि हमें इन संसाधनों का उपयोग इस तरह से करना चाहिए कि वे समाप्त न हों और पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।

4.8सतत विकास के उदाहरण

1. **पवन ऊर्जा**: पवन टरबाइन का उपयोग करके ऊर्जा उत्पादन, जो वायु की गति को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करता है। यह एक स्वच्छ और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है जो ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है।

2. **सौर ऊर्जा**: सूर्य की ऊर्जा को इलेक्ट्रिक पैनलों के माध्यम से विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करना। यह ऊर्जा का एक नवीकरणीय स्रोत है जो पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव डालता है।
3. **फसल चक्र**: खेती की एक तकनीक जिसमें विभिन्न फसलों को बदल-बदल कर उगाया जाता है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता बनी रहती है और कीटों और बीमारियों का नियंत्रण होता है।
4. **टिकाऊ निर्माण**: निर्माण प्रक्रियाओं में ऐसे सामग्री और तकनीकें अपनाना जो पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव डालें और ऊर्जा की खपत को कम करें।
5. **कुशल जल पुनर्चक्रण**: जल पुनर्चक्रण की विधियाँ जो पानी के पुन: उपयोग को सक्षम बनाती हैं और जल संसाधनों की बर्बादी को रोकती हैं।
6. **हरित क्षेत्र**: ऐसे पार्क और वन क्षेत्र जो शहरों में शुद्ध वायु और जैव विविधता को बनाए रखते हैं और स्थानीय जलवायु को नियंत्रित करते हैं।
7. **सतत वानिकी**: वनों के प्रबंधन की विधियाँ जो वृक्षारोपण, संरक्षण और पुनर्वास को शामिल करती हैं, जिससे वन क्षेत्रों की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित होती है।

4.9पर्यावरण संकट क्या है?

पर्यावरण संकट उस स्थिति को संदर्भित करता है जब किसी पर्यावरण प्रणाली के महत्वपूर्ण कार्य विफल हो जाते हैं, जिससे जीवन के लिए आवश्यक पर्यावरणीय सेवाओं में बाधा उत्पन्न होती है।

1. **संसाधन निष्कर्षण की दर**: जब प्राकृतिक संसाधनों का निष्कर्षण उस दर से अधिक होता है जिस दर से वे प्राकृतिक रूप से पुनः उत्पन्न होते हैं, तो यह एक पर्यावरण संकट का संकेत हो सकता है। इसका परिणाम भूमि क्षरण, जलवायु परिवर्तन, और पारिस्थितिक तंत्रों के विघटन के रूप में देखा जा सकता है।
2. **अपशिष्ट का उत्पादन**: जब अपशिष्ट उत्पादन की दर पर्यावरण की अवशोषण क्षमता से अधिक हो जाती है, तो यह प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों की कमी का कारण बन सकती है। इससे जल, वायु, और भूमि प्रदूषण बढ़ता है, जो मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिक तंत्रों के लिए हानिकारक हो सकता है।

पर्यावरण संकट के कारण

1. **जनसंख्या विस्फोट**: जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर पर्यावरण पर कई नकारात्मक प्रभाव डालती है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है, प्राकृतिक संसाधनों की मांग में भी वृद्धि होती है, जबकि इन संसाधनों की आपूर्ति सीमित होती है। इसके परिणामस्वरूप, संसाधनों का अत्यधिक उपयोग और दुरुपयोग होता है। अधिक जनसंख्या का मतलब अधिक खपत, अधिक प्रदूषण और अधिक कचरा होता है, जो पर्यावरणीय तंत्रों पर दबाव डालता है।

2. **आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि**: आर्थिक विकास और वृद्धि के परिणामस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की खपत और उत्पादन में वृद्धि होती है। यह उत्पादन और उपभोग का स्तर इतना बढ़ जाता है कि अपशिष्ट और प्रदूषण की मात्रा भी अत्यधिक बढ़ जाती है। इन अपशिष्टों और प्रदूषण के कारण, पर्यावरण की अवशोषण क्षमता से परे दबाव पड़ता है, जिससे विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों का संतुलन बिगड़ जाता है।
3. **तीव्र औद्योगीकरण**: तेजी से औद्योगीकरण के चलते वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास हुआ है। औद्योगिक गतिविधियों की बढ़ती मात्रा के कारण जल निकायों में विषाक्त पदार्थों और औद्योगिक कचरे का संचय होता है, जिससे पानी की गुणवत्ता में कमी आती है और जल प्रदूषण बढ़ता है। औद्योगिक गतिविधियाँ पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं, जैसे कि वायु और जल प्रदूषण में वृद्धि।
4. **शहरीकरण**: ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या के बड़े पैमाने पर प्रवास के कारण शहरीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई है। इसके परिणामस्वरूप, स्लम क्षेत्रों का विकास और मौजूदा अवसंरचनात्मक गतिविधियों पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। शहरीकरण के चलते न केवल भूमि उपयोग बदलता है, बल्कि जल, ऊर्जा, और कचरे की व्यवस्थापन की समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।
5. **वनों की कटाई**: वनों की कटाई से तात्पर्य है पेड़ों को काटना और जंगलों को साफ करना। यह प्रक्रिया पर्यावरण पर कई नकारात्मक प्रभाव डालती है, जैसे कि बायोडायवर्सिटी में कमी, जलवायु परिवर्तन, और मृदा का क्षय। वनों की कटाई से कार्बन सिंक का ह्रास होता है, जिससे ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता बढ़ जाती है।
6. **कीटनाशकों, रसायनों और उर्वरकों का बढ़ता उपयोग**: जहरीले कीटनाशकों, रसायनों, और उर्वरकों का बढ़ता उपयोग किसानों और श्रमिकों के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। इन रसायनों के अत्यधिक उपयोग से फसलों में रासायनिक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है, जो न केवल फसलों की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, बल्कि मानव स्वास्थ्य और पर्यावरणीय तंत्रों पर भी विपरीत प्रभाव डालता है। इन रसायनों के कारण मिट्टी और जल स्रोत भी प्रदूषित हो जाते हैं।

4.10संधारणीय और गैर-संधारणीय गतिविधियाँ

संधारणीय विकास की अवधारणा सिर्फ़ पर्यावरण के बारे में नहीं है, बल्कि अर्थव्यवस्था और हमारे समाज के बारे में भी है। संधारणीयता एक अवधारणा है, जो विकास के ज़रिए पर्यावरण पर मानव जाति के प्रभाव से संबंधित है। आज की पर्यावरणीय समस्याएँ मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों के असंधारणीय उपभोग और अपशिष्ट उत्पादों के कुप्रबंधन का परिणाम हैं। संधारणीयता पर्यावरण संरक्षण, सतत आर्थिक विकास और सामाजिक समानता के बारे में है। संधारणीय विकास सभी के लिए जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने पर केंद्रित है। यह अलग-अलग लोगों को अलग-अलग चीज़ें भी प्रदान करता है। संवेदनशील पर्यावरणविदों से लेकर उदार विपणक तक इस अवधारणा की व्याख्या की गई है और उनकी ज़रूरतों के हिसाब से

इसका इस्तेमाल किया गया है। यह लोकतंत्र और न्याय की अवधारणा की तरह है, जिसका कभी विरोध नहीं किया जाता है, लेकिन वैचारिक रूप से विरोधी समूहों के हिसाब से व्याख्या की जाती है। हालाँकि, आधारभूत सहमति जो अपने अर्थ में निर्विवाद है, उसे संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है कि संधारणीय गतिविधियाँ वे हैं जो:

1. निरंतर चक्रों में सामग्रियों का उपयोग करती हैं।
2. ऊर्जा के विश्वसनीय स्रोतों का लगातार उपयोग करें।
3. मानव व्यक्तित्व के सकारात्मक और न्यायपूर्ण पक्ष का उपयोग करें।
4. विकास को धीमा हुए बिना लंबे समय तक बनाए रखना चाहते हैं।

गतिविधियाँ तब अस्थिर होती हैं जब वे:

1. प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा उपयोग करती हैं।
2. उपभोग नवीनीकरण से तेज़ होता है।
3. जीवों को ज़रूरत से ज़्यादा मारती हैं जिससे प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं।
4. पर्यावरण का संचयी क्षरण होता है।

इस इकाई में, हमने ऐतिहासिक और वर्तमान संदर्भ में सतत विकास की अवधारणा को समझाया है। आइए अब इस इकाई की सामग्री को संक्षेप में प्रस्तुत करें

4.11 सारांश

यह परियोजना खंड जनसंख्या और सतत विकास के महत्वपूर्ण बिंदुओं को संक्षेपित करता है और परियोजना के अंतिम उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह खंड पूरे परियोजना के महत्वपूर्ण तत्वों को उजागर करता है।

जनसंख्या एवं सतत विकास: इस खंड में यह बताया गया है कि जनसंख्या और सतत विकास के बीच संबंध कितना महत्वपूर्ण है। जनसंख्या की वृद्धि और इसके प्रभाव को समझाना और यह देखना कि यह सामाजिक और आर्थिक संरचना को कैसे प्रभावित करता है, यह मुख्य बिंदु है। इसके साथ ही, सतत विकास के विभिन्न पहलुओं को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया है, जो एक समृद्ध समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रमुख पहलू: यहां जनसंख्या की वृद्धि और सतत विकास के प्रमुख पहलुओं को उजागर किया गया है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पर्यावरणीय प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में नीतियों और कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण योगदान शामिल है। ये क्षेत्र सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और समाज के समग्र विकास के लिए आवश्यक हैं।

वैश्विक चुनौतियाँ: सारांश में, वैश्विक स्तर पर जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों को कैसे नकारा जाए, यह बताया गया है। इन समस्याओं के प्रभाव और समाधान के संभावित तरीकों पर विचार किया गया है ताकि एक टिकाऊ और सुरक्षित पर्यावरण की दिशा में कदम बढ़ाया जा सके।

समाप्ति: इस खंड में, जनसंख्या और सतत विकास के साथ जुड़े सुरक्षित, सुसंगत और स्थायी समाधानों के प्रति एक संकल्प व्यक्त किया गया है। यह खंड पूरी परियोजना को समाप्ति तक

पहुँचाने के लिए एक मार्गदर्शन प्रदान करता है। सारांश रूप से, यह खंड परियोजना के महत्वपूर्ण संदेशों और मिशन को संक्षेपित करता है और उन्हें पूरा करने के लिए एक मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह स्पष्ट करता है कि हमारी प्राथमिकताएँ क्या होनी चाहिए और हम इन्हें कैसे हासिल कर सकते हैं।

4.12शब्दावली

1. सौर ऊर्जा (Solar Energy) - सूर्य की ऊर्जा को विद्युत या गर्मी के रूप में उपयोग में लाना।
2. पवन ऊर्जा (Wind Energy) - पवन (हवा) की ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करना।
3. वृक्षारोपण (Afforestation) - नए पेड़ों का रोपण करना और वन क्षेत्र का विस्तार करना।
4. विकासशील देश (Developing Country) - ऐसे देश जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया में हैं और जिनकी जीवन स्तर की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है।
5. संसाधन (Resources) - प्राकृतिक या कृत्रिम पदार्थ जो मानव उपयोग के लिए उपलब्ध हैं।

4..13कुछ उपयोगी पुस्तके

1. "सतत विकास: एक भारतीय दृष्टिकोण" लेखक: डॉ. शीलाजी रावत
2. "आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण: भारतीय परिप्रेक्ष्य" लेखक: डॉ. मोहनलाल यादव
3. "भारत में जनसंख्या नीति और विकास" लेखक: डॉ. रजनी पाटिल
4. "सतत विकास के सिद्धांत और भारतीय संदर्भ" लेखक: डॉ. विजय शर्मा

➢ बोध प्रश्न

1. "सतत विकास" और "संपोषित विकास" के बीच अंतर स्पष्ट करें। भारतीय संदर्भ में दोनों अवधारणाओं का महत्व क्या है?
2. सतत विकास के लिए आवश्यक तकनीकी और विधिक उपायों पर चर्चा करें। भारतीय सरकार और विभिन्न संगठनों ने इन उपायों को लागू करने के लिए क्या प्रयास किए हैं?
3. भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्यावरणीय प्रबंधन और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए हाल ही में भारत सरकार द्वारा क्या कदम उठाए जा सकते हैं?